महाराजा छत्रसाल बुँदेला

समकालीन ऐतिहासिक सामग्री पर आधारित

डॉ. भगवानदास गुप्त

डॉ. यदुनाथ सरकार के 'दो शब्द'
एवं
डॉ. रघुबीर सिंह की 'भूमिका' सहित

1958

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं. प्रा. लि.

आगरा

लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत

प्रथम संस्करण सितम्बर १९५८
मूल्य : १२ ५०

प्रकाशक टीटागढ़ पेपर मिल्स क० लि० के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक के लिये कागज का प्रबन्ध किया।

राजे मोहन अग्रवाल मैनेजिंग डाइरेक्टर शिवलाल एन्ड क० प्रा० लि०
आगरा द्वारा प्रकाशित तथा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
१० दरियागंज दिल्ली द्वारा मुद्रित

दो शब्द

डा० भगवानदास गुप्त कृत छत्रसाल बुंदेला की यह जीवनी ऐतिहासिक शोध से परिपूर्ण एक विश्वसनीय कृति है और मध्यकालीन भारतीय इतिहास के इस काल विशेष के लिए तो एक निश्चयात्मक प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में इसकी गणना होती रहेगी। ग्रंथकर्ता ने इतिहास-लेखन के सही सिद्धांतो का अनुसरण किया है, विभिन्न भाषाओ में उपलब्ध मूल आधार सामग्री तक वह पहुचा है और साथ ही उसने बडी ही सूक्ष्मता के साथ स्थानीय जाच पडताल भी की है जिसके फलस्वरूप उसने अत्यत महत्त्व की बहुत-कुछ प्राथमिक आधार-सामग्री को ढूढ निकाला है। यो पन्ना राजघराने के पुराने लेख-सग्रह में से अपने पुत्रो के नाम लिखे गए छत्रसाल के पत्र उसने उपलब्ध किये है और प्रणनामी सम्प्रदाय के सयत्न सुरक्षित गुह्य धर्म-ग्रन्थो को भी वह प्राप्त कर सका है। जिस धैर्य और दृढता के साथ उसने बुंदेलखंड के सैकडों छोटे-छोटे स्थानो को खोज निकाला है, हमारे मध्यकालीन इतिहास पर शोध करने वाले अन्य लोगों के लिए तो वह एक अनुकरणीय उदाहरण बना रहेगा।

अपने विषय को प्रस्तुत करने में डा० गुप्त न तो कहीं अप्रासगिक बातो को लेकर बहके है और न कहीं निस्सार शब्द-विस्तार ही किया है। अपने शब्द चिवरणों में उन्होंने उचित अनुपात एव आवश्यक समतोल का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा है।

१०, लेक टैरेस
कलकत्ता, २६
१ जून, १९५६ ई०

यदुनाथ सरकार
आनरेरी डी लिट
आनरेरी सदस्य, रायल ऐशियाटिक सोसायटी
ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयर्लेंड, कौरेस्पोंडिंग सदस्य
रायल हिस्टोरिकल सोसायटी, इग्लेंड

भूमिका

'शिवराज-भूषण' और 'शिवा-बावनी' का निर्भीक रचयिता वीर रस का अमर कवि भूषण 'छत्रसाल दशक' में कह उठा है —

"और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को ॥"

जिसे पढकर साधारण पाठक के साथ ही इतिहासकार का ध्यान भी छत्रसाल बुंदेला की ओर स्वत आकर्षित हो जाना स्वाभाविक ही है। कई एक पुरानी प्रतियो में भी पाठान्तर के रूप में ही क्यो न हो, "साहू" के स्थान पर "सिवा" पाठ भेद से तो पाठक के हृदय में छत्रसाल के प्रति और भी अधिक आदर और श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नही रहते। यही कारण था कि ईसा की १६वी शताब्दी के अंतिम युगो में जब उस समय भारत पर शासन कर रही प्रबल अंग्रेजी सत्ता के प्रति सर्वव्यापी उत्कट विरोध की तीव्र भावना भारतीयो के हृदयो में घर करने लगी थी और उसी के फलस्वरूप जब भारतीय स्वाधीनता के उपासको तथा अदम्य साहसी देशभक्तो ने मुगल सत्ता के अनवरत अडिग विरोधी राणा प्रताप और सफल विद्रोही नेता शिवाजी को अपना पूज्य अनुकरणीय आदर्श स्वीकार किया तब साथ ही कुछ का ध्यान अनायास औरंगजेब के दुर्दम्य प्रतिरोधी छत्रसाल बुंदेला की ओर भी गया एव यदा-कदा उसको भी श्रद्धाजलि समर्पित की जाने लगी।

अपने पिता साहसी चपतराय बुंदेला के चरण-चिह्नो पर चल कर छत्रसाल बुंदेला ने कोई साठ वर्षो के अनवरत सघर्ष और प्रयत्नो के फलस्वरूप पूर्वी बुंदेलखड में एक सुविस्तृत स्वाधीन राज्य की स्थापना की थी। छत्रसाल के राज-दरबार में भूषण का समुचित आदर-सम्मान हुआ था। छत्रसाल के दरबार में कई अन्य कवि भी रहते थे, जिनमें 'छत्र प्रकाश' का रचयिता लाल कवि प्रमुख था। छत्रसाल स्वय भी एक ऊचा कवि था। उसकी कविताओं के सग्रह पहिले 'छत्र-विलास' और बाद में 'छत्रसाल ग्रथावली' के नाम से प्रकाशित हुए है।

इधर कुछ साहित्यकार भी छत्रसाल बुंदेला की ओर आकर्षित हुए है। उपन्यासकार श्री बालचन्द शाह ने मराठी भाषा में 'छत्रसाल' नामक एक उपन्यास लिखा था। इधर सुविख्यात राजनीतिज्ञ साहित्यकार सरदार कावालम् माधव पणिक्कर ने भी मलयालम् भाषा में छत्रसाल विषयक एक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की थी। परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ पहिले तक छत्रसाल का कोई भी प्रामाणिक विस्तृत जीवन-वृत्त नही लिखा जा सका था। पागसन ने अपने अंग्रेजी इतिहास-ग्रथ 'ए हिस्ट्री आफ बुंदेलाज़' में छत्रसाल के इतिवृत्त के लिए तो मुख्यत लाल कवि कृत 'छत्र प्रकाश' का ही अंग्रेजी अनुवाद दिया है। 'ए हिस्ट्री आफ बगश नवाब्ज़ आफ फर्रुखाबाद' लिखते समय विलियम अर्विन ने तब प्राप्य फ़ारसी

और हिन्दी आधार-सामग्री के आधार पर छत्रसाल के पिछले १०-१५ वर्षों के जीवन का यथासंभव क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया था। परन्तु तब भी छत्रसाल के औरंगजेब-कालीन जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाल सकने वाली अत्यावश्यक प्राथमिक आधार-सामग्री सर्वथा अप्राप्य ही रही। पुन उस प्रादेशिक इतिहास विषयक आवश्यक स्थानीय आधार सामग्री या समुचित जानकारी भी तब नही मिल सकी थी। अतएव 'लेटर मुग़ल्ज़' और 'हिस्ट्री आफ औरंगजेब' में विलियम अर्विन तथा डाक्टर यदुनाथ सरकार द्वारा क्रमशः प्रस्तुत छत्रसाल के संक्षिप्त जीवन-वृत्त तब अपूर्ण और कुछ अंशो में अप्रामाणिक ही रहे।

छत्रसाल ने अपने प्रदेश में जिस विस्तृत राज्य की स्थापना की थी वह उसकी मृत्यु के साथ ही अनेक विभागो में बँट गया, तथापि छत्रसाल का भारतीय इतिहास में अपना विशेष महत्त्व है। प्रथम तो मुगल साम्राज्य के विरुद्ध समय-समय पर चलते रहने वाले विद्रोहो की परम्परा में छत्रसाल के विरोध तथा विद्रोहो का बहुत ही उल्लेखनीय स्थान है। औरंगजेब जैसे दृढ निश्चयी चतुर प्रबल सम्राट की दमनपूर्ण धर्मप्रधान कट्टर नीति से उत्तरी भारत में अवर्णनीय भय, विवशता एव निराशा विशेष रूपेण व्याप्त हो गये थे। तब छत्रसाल के विद्रोहो ने बुंदेलो के साथ ही अन्य जनसाधारण में भी एक नई आशा तथा उत्साह का संचार किया था। दूसरे औरंगजेब की मृत्यु के कुछ ही वर्षों बाद मुगल साम्राज्य का जो विशृंखलन प्रारंभ हुआ, छत्रसाल ने उसको विशेष गति ही नही दी परन्तु उस प्रदेश में सर्वथा नई शक्तियो का प्रवेश कराकर अनजाने ही उसने उसकी सारी दिशा को भी बहुत कुछ बदल दिया। छत्रसाल की प्रार्थना पर बुंदेलखंड पहुंच कर बाजीराव पेशवा ने मुहम्मद बंगश को उस प्रदेश से निकाल बाहर करने में उसकी पूरी-पूरी सहायता की जिससे मुगल साम्राज्य के सब ही विरोधियो को बहुत बल मिला। पुन इसी सफल सहायता के बदले में छत्रसाल ने अपने राज्य का एक तिहाई भाग पेशवा बाजीराव को दे दिया और यों इस प्रदेश में मराठो का एक स्थायी सुदृढ केन्द्र स्थापित हो गया जिसने आगे चल कर मालवा पर अधिकार जमाने तथा दिल्ली और अन्तर्वेद तक जा पहुँचने में उन्हें विशेष कठिनाई नही रह गई। किन्तु इन सारी विशेषताओ एव प्रवृत्तियों को ठीक तरह से समझने के लिए छत्रसाल की विस्तृत प्रामाणिक जीवनी नितान्त आवश्यक हो जाती है। यह बड़े ही हर्ष एव संतोष की बात है कि बुंदेलखण्ड के ही एक उत्साही सुविज्ञ सुपूत, डा० भगवान-दास गुप्त ने इस ग्रंथ की रचना कर भारतीय इतिहास साहित्य की एक बहुत बडी कमी को पूरा करने का अनुकरणीय सफल प्रयत्न किया है।

इन पिछले पच्चीस तीस वर्षों में ऐसी बहुत सी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक आधार-सामग्री प्रकाश में आई है जिससे छत्रसाल के समूचे जीवन पर बहुत अधिक नया प्रकाश पड़ता है। औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारियो के शासनकाल में नित्य प्रति फारसी में लिखे गये 'अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला' की प्राप्य प्रतियां, शाही दरबार या अन्य राज्यो के महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियो, अधिकारियो या कर्मचारियो को या उनके द्वारा

फारसी, हिन्दी या राजस्थानी में लिखे गये सरकारी या निजी कागज-पत्रो के सग्रहो, आदि से भी छत्रसाल के वारे में वहुत-कुछ नई जानकारी प्राप्त हुई है। मराठो से सम्पर्क स्थापित हो जाने के वाद मराठो द्वारा मराठी भाषा में लिखे गये कागज-पत्रो आदि में भी छत्रसाल सवधी कई एक महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलते है। इस प्रकार की सारी प्राप्य प्रामाणिक आधार-सामग्री से समुचित जानकारी प्राप्त कर डा० भगवानदास गुप्त ने उस सबका इस ग्रथ में पूरा-पूरा उपयोग किया है।

यही नही डा० भगवानदास गुप्त ने सारे बुंदेलखण्ड प्रदेश में बारबार घूम-घूम कर वहा के राजघरानो तथा अन्य अनेकानेक व्यक्तियो के निजी सग्रहो में सग्रहीत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक आधार-सामग्री को खोज कर प्रकाश में लाने का भी पर्याप्त प्रयत्न किया। ऐसे ही प्रयत्नो के फलस्वरूप उसे छत्रसाल के अनेकानेक निजी पत्र देखने को मिले, जिनका इस ग्रथ में यथास्थान उपयोग एव उल्लेख किया गया है। अपनी इन यात्राओ में लेखक ने छत्रसाल की जीवनी से सम्वद्ध प्राय सभी उल्लेखनीय स्थनो तक पहुच कर वहा की भौगोलिक स्थिति आदि को देखा है और वहा छत्रसाल सवधी प्रचलित स्थानीय दतकथाओ एव प्रवादो की भी जानकारी प्राप्त की है जिससे छत्रसाल सवधी कई एक गुत्थियो को सुलझाने में उसे विशेष कठिनाई नही पडी।

इस ग्रथ में प्रथम वार छत्रसाल बुंदेला का सपूर्ण क्रमवद्ध प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे उसकी औरगजेवकालीन जीवनी पर भी सर्वथा नया प्रकाश पडता है। उसकी तत्कालीन गतिविधियो विषयक अव तक प्रचलित एव प्राय मान्य कई एक भ्रातियो का अव निश्चित रूपेण निराकरण हो सकेगा, तथा इस प्रामाणिक इतिवृत्त के आधार पर छत्रसाल के चरित्र, पराक्रम और सफलताओ आदि का ठीक-ठीक मूल्याकन किया जा सकेगा। यहा यह मानना होगा कि अपने चरित्रनायक के चरित्र, सफलता और ऐतिहासिक महत्त्व, आदि विषयो पर लिखते समय डा० भगवानदास गुप्त ने समुचित सयम, अत्यावश्यक सतुलन और विहित सूझवूझ से काम लिया है। इस प्रकार डा० भगवानदास गुप्त ने ऐतिहासिक व्यक्तियो की जीवनी लिखने वालो के लिए एक समुचित आदर्श प्रस्तुत किया है, जिसका अनुसरण कर आगे अन्य उत्साही इतिहास-सशोधक भारतीय इतिहास के अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो की भी ऐसी ही प्रामाणिक जीवनियाँ लिख सकेंगे।

छत्रसाल की जीवनी भारतीय एव प्रादेशिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण परन्तु साथ ही विशिष्ट सीमित पहलू मात्र था, उससे समूचे प्रदेश के तत्कालीन इतिहास पर भी कोई सम्यक् प्रकाश नही पडता है। इस ग्रथ के लिए आवश्यक जानकारी और सामग्री एकत्र करने के लिए डा० भगवानदास गुप्त को अनेक वार इस समूचे प्रदेश की यात्रा करनी पडी थी और उसके सुदूर देहातो मे भी उसने अत्यावश्यक सम्पर्क स्थापित किया था। उसकी इस सारी जानकारी, निकटतम परिचय, घनिष्ठ सम्पर्क तथा सचित अनुभव का ठीक ठीक उपयोग तभी हो सकेगा यदि वह अव आगे अपने इस बुंदेलखड प्रदेश के क्रमवद्ध

प्रामाणिक प्रादेशिक इतिहास की रचना में ही अपनी सारी शक्तिया लगा देवे। ऐसे प्रादेशिक इतिहास ही राष्ट्रीय इतिहास के लिए एक वास्तविक ठोस नीव का काम देते हैं, एव बुंदेलखण्ड के उक्त प्रादेशिक इतिहास की रचना द्वारा वह विस्तृत प्रामाणिक राष्ट्रीय इतिहास को सपूर्ण वनाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दे सकेगा। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इस प्रस्तावित आयोजन में भी डा० भगवानदास गुप्त को इच्छित पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

"रघुवीर निवास"
सीतामऊ (मालवा)
नवम्बर ६, १९५७

—रघुवीरसिंह

अपनी बात

इस ग्रंथ के मूल प्रेरक मे पूज्य गुरु और ढाका तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रोफेसर कालिकारजन कानूनगो ही थे। उन्हीं के निर्देशन में यह ग्रथ लखनऊ विश्वविद्यालय को पी एच डी उपाधि की थीसिस के रूप में प्रस्तुत किया गया था। प्रोफेसर काननगो के गुरुभाई और मध्यप्रदेश के इतिहास के विशेषज्ञ महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह ने इस ग्रथ सबधी अधिकाश सामग्री तथा अपने विद्वान मौलवी काजी करामत उल्ला का सहयोग मुझे सुलभ कर मेरे कार्य को बहुत ही सुगम कर दिया था। इतना ही नहीं उन्होने अपनी श्री रघुबीर लायब्रेरी (सीतामऊ) में मुझे अध्ययन करने की केवल सुविधा ही नहीं दी अपितु स्वय बडे परिश्रम से वहां मेरे अध्ययन को सुचारु रूप से व्यवस्थित कर अपने सुझावो द्वारा उसे विशेष उपयोगी भी बनाया। वयोवृद्ध डा० यदुनाथ सरकार ने इस शोध में प्रारभ से ही दिलचस्पी लेकर मझे विशेष उत्साहित किया था। प्रसिद्ध मराठा इतिहासकार डा० सर देसाई और महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार भी अत्यत कृपापूर्वक समय-समय पर मेरी शकाओ का समाधान करते रहे हैं।

इस ग्रथ में प्रयुक्त छत्रसाल के पत्रो, उनको भेजे गए मुग़ल सम्राटो के फरमानो और अन्य कागज पत्रो को मुझे उपलब्ध कर ग्रथ का महत्व बढ़ा देने का श्रेय पन्ना के अधिपति और छत्रसाल के वशज श्री महाराजाधिराज श्री यादवेन्द्रसिह जी को है। उन्होंने तथा उनके व्यक्तिगत सचिव कुँवर चतुरपाल सिंह, श्री चूडाशमा और श्री म ल गोरे ने व्यक्तिगत असुविधाओ के बीच भी मुझे सदैव इच्छित सहायता देकर मेरे परिश्रम को सफल बनाया। प्रणामी धर्म ग्रन्थो का अध्ययन करने की सुविधाए देने के लिए मै पन्ना के धाम मदिर के अधिकारी श्री पन्नालाल शर्मा और श्री चेतनदत्त शर्मा का बहुत आभारी हू। एक अन्य धामी विद्वान् श्री धनप्रसाद पाडे से मुझे स्वामी प्र णनाथ और छत्रसाल संबधी दो चित्र प्राप्त हुए है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार बाबू वृन्दावन लाल वर्मा और मेरे मित्र श्री भगवानदास माहौर तो सदैव ही अपने सुझावो और सहानुभूति से मुझे प्रोत्साहित करते रहे है। मेरे सुहृद बधु श्री बाबूलाल सरावगी और श्री मोतीलाल गुप्त ने भी मानचित्रों के बनाने में भरपूर योग दिया है। मै इन सबका हृदय से कृतज्ञ हू।

११३, सत्रयाना स्ट्रीट,
झांसी
विजयादशमी, सवत् २०१५

भगवानदास गुप्त

विषय-सूची

— ० —

संकेत-परिचय

अकबरनामा—बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद।

अख०—अखबारात।

आईन०—आईन-इ-अकबरी, ब्लाकमन और जेरेट कृत अंग्रेजी अनुवाद का सर यदुनाथ सरकार द्वारा संशोधित संस्करण।

आर्क०—आर्कोलोजिकल सर्वे रिर्पोट्स।

आ० ना०—आलमगीर नामा।

इर्विन०—विलियम इर्विन कृत 'लेटर मुगल्स'।

ईश्वर०—ईश्वरदास कृत फतूहात-इ-आलमगीरी (सीतामऊ)।

ऐंटि०—इंडियन ऐंटिक्वेरी।

एपिग्राफिया०—ऐपिग्राफिया इंडिका।

औरंग०—सर यदुनाथ सरकार कृत हिस्ट्री आफ औरंगजेब।

कनिंघम—एन्सेंट ज्याग्रफी कनिंघम कृत।

कामवर०—मुहम्मद हादी कामवर कृत तजकिरा-उस-सलातीन-इ-चगताई (सीतामऊ)।

खुजिस्ता०—साहिबराय कृत खुजिस्ता कलाम (सीतामऊ)।

गजे०—गजेटियर।

गिब्स०—'इब्नबतूता' एच ए आर गिब्स कृत इब्नबतूता की यात्राओं के विवरण का अंग्रेजी अनुवाद।

गोरे०—गोरेलाल तिवारी का बुंदेलखंड का इतिहास।

छत्र०—'छत्रप्रकाश' लालकवि कृत।

छत्र० ग्र०—वियोगी हरि द्वारा संपादित छत्रसाल ग्रंथावली।

जय० अख०—'अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला', जयपुर राज्य के मुहाफिजखाने में प्राप्य। यहाँ इन अखबारों की उन हस्तलिखित नकलों का उपयोग किया गया है जो श्री रघुबीर लायब्रेरी, सीतामऊ में उपलब्ध है। विभिन्न मुग़ल सम्राटों के शासनकाल के अखबारों का निर्देश इस प्रकार किया गया है—

औरं०—औरंगजेब।

बहादुर०—बहादुरशाह।

जहाँदार०—जहाँदारशाह।

फर्रुख०—फर्रुखसियर।

(उदाहरणार्थ, औरंगजेब के राज्यकाल के २३वें वर्ष के अखबारों की पहिली जिल्द

भाग १; पृ० १०२ का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—जय० अख० और० २३ (१) पृ० १०२। रायल ऐशियाटिक सोसायटी, लदन के अखबारो का भी उल्लेख ऐसे ही किया गया है।

जं० हि० रि—जयपुर हिन्दी रिकार्ड्स। रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ में उपलब्ध हस्त-लिखित नकलें।

टाड०—एनल्ज ऐंड ऐंटिक्विटीज़ आफ राजस्थान टाड कृत।

दिघे०—डा दिघे कृत पेशवा बाजीराव फर्स्ट ऐंड मराठा एक्सपेंशन।

दीक्षित०—'भूषण विमर्ष' लेखक डा भागीरथ प्रसाद दीक्षित।

देसाई०—डा सर देसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज़'।

नाग० प्रचा० पत्रिका—नागरी प्रचारिणी पत्रिका।

पन्ना०—पन्ना पत्र सग्रह, पन्ना महाराज के सग्रहालय में उपलब्ध कागज़-पत्र।

पाग्सन०—पाग्सन कृत 'हिस्ट्री आफ दी बुंदेलाज़'।

पाद०—'पादशाहनामा' अब्दुल हमीद लाहौरी कृत।

पेशवा०—सेलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर।

बगाल०—जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल।

बर्नियर०—'ट्रैव्हल्स इन हिंदोस्तान', हेनरी ओल्लवरा का अग्रेजी अनुवाद।

बु० वै०—'बुंदेल वैभव', लेखक गौरीशकर द्विवेदी।

भीम ०—तारीख-दिलकश, भीमसेन कृत (सीतामऊ)।

मनुची०—'स्टोरिया डो मोगोर' मनुची कृत, इर्विन द्वारा अनुवादित एव सपादित।

मा० आ०—'मासिर-इ-आलमगीरी' सरकार कृत अग्रेजी अनुवाद।

मा० उ०—मासिर-उल-उमरा, समसामुद्दौला कृत।

मालवा०—'मालवा इन ट्रान्जीशन', लेखक डा रघुवीर सिंह

मेहराज०—'मेहराज चरित्र' बख्शी हसराज कृत, धाम मदिर, पन्ना में उपलब्ध हस्त लिखित प्रति।

रघुबीर०—'मराठाज़ इन मालवा' शीर्षक डा रघुवीर सिंह का लेख जो सर देसाई कमे मोरेशन व्होल्यूम (१९३८) में प्रकाशित हुआ था।

राजवाडे—'मराठ्यांचा इतिहासांची साधनें' विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे कृत।

रायल० अख०—रायल ऐशियाटिक सोसायटी लदन के सग्रहालय में प्राप्त अखबारो व नकलें जो सीतामऊ में उपलब्ध है।

वरीद०—मुहम्मद शफी तेहरानी उर्फ वरीद कृत मीरात-उल-वारिदात (सीतामऊ)

वृत्तांत०—'वृत्तात मुक्तावली', ब्रजभूषण कृत, श्री प्रणामी धर्म सभा, नौतनपुरी, जाम नगर से प्रकाशित।

वाटर्स०—वाटर्स कृत 'युआन च्वांगस ट्रैव्हल्स इन इंडिया।

वाड०—गणेश चिमाजी वाड कृत सेलेक्शन्स फ्राम दी सतारा राजाज़ ऐंड पेशवा डायरीज़ भाग २।

वीर काव्य—लेखक डा उदयनारायण तिवारी।

शिवदास०—मुनव्वर-इ-कलाम, शिवदास लखनवी कृत (सीतामऊ)।

श्याम०—मुशी श्यामलाल की तारीख-बुंदेलखड।

शुक्ल०—रामचन्द्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास।

साचौ०—डा एडवर्ड साचौ द्वारा सपादित 'अलबरूनीज़ इडिया'।

सियार०—सियार-उल-मुताखेरीन गुलाम हुसैन कृत, (अग्रेजी अनुवाद)।

सीतामऊ—श्री रघुबीर लायब्रेरी सीतामऊ।

स्मिथ०—डा विन्सेण्ट स्मिथ कृत हिस्ट्री आफ एन्सेंट इडिया।

---

१ भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

बुंदेलखंड भारत का हृदय प्रदेश है। यह उत्तर में यमुना और दक्षिण में मध्य भारत के जबलपुर और सागर जिलों के बीच स्थित है। इसकी पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी सीमा सिन्ध नदी निर्धारित करती है, तथा पूर्वी सीमा टोंस नदी और मिर्जापुर की विन्ध्य श्रेणियों से निश्चित होती है।[1] मुगल शासन के अन्तर्गत बुंदेलखंड का अधिकांश भाग इलाहाबाद के सूबे में था। कुछ दूसरे भाग जैसे कालपी, एरछ और चंदेरी आदि आगरा और मालवा सूबों में थे।[2] बुंदेलखंड में बुंदेलों का प्रभुत्व स्थापित होने के पूर्व चंदेलों के शिलालेखों और विदेशी यात्रियों के विवरणों के अनुसार इस प्रदेश का नाम जुझौति या जैजाकभुक्ति था।[3]

---

१ कुछ साधारण हेरफेर करने के बाद भी बुंदेलखंड की यही सीमायें अधिक मान्य हैं। कनिंघम की सूचना के अनुसार बुंदेलखंड की पश्चिमी सीमा बेतवा नदी तक थी, जबकि दीवान मजबूतसिंह काली सिन्ध (मालवा) तक इस प्रदेश की सीमायें मानते थे। पर बुंदेलखंड की पश्चिमी सीमा सिन्ध नदी तक ही होना अधिक उचित जान पड़ता है। दतिया के पश्चिमी बुंदेला राज्य की सीमायें भी इस नदी तक ही थीं। (कनिंघम पृ० ४८२, ऐंटि० मई १९०८ पृ० १३०, बंगाल १९०२ पृ० १००, इर्विन २, पृ० २१६, श्याम १, पृ० १)

परंपरागत लोकश्रुतियों के अनुसार बुंदेलखंड की सीमाएँ उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में चंबल और पूर्व में टोंस नदियाँ निर्धारित करती हैं। निम्नलिखित पद बुंदेलखंड में बहुत ही जनप्रिय है —

इत जमुना उत नर्मदा, इत चंबल उत टौंस।
छत्रसाल सों लरन की, रही न काहू हौंस॥

ये सीमायें बुंदेलों के राज्य की वास्तविक राजनैतिक सीमायें न होकर, केवल उनके सैनिक प्रभाव क्षेत्र की ही द्योतक थीं।

२ आईन० (अंग्रेजी) २, पृ० १७७, १९५, १९८, १९९, २१०-२१४।

३. एपिग्राफिया० १, पृ० २१८, २२१; आर्के० जि० १०, पृ० ९८ और जि० २१, पृ० १७३, १७४; ऐंटि० मई १९०८, पृ० १२८, स्मिथ० पृ० ३९०-९४।

चीनी यात्री हुएनसांग ने इस प्रदेश का नाम 'चि-चि-टो' (जिझौति) और अल-

बुंदेलो के उत्कर्ष से पहिले देश के इस भाग पर चँदेलो का प्रभुत्व रहा था। किंतु वारहवी शताब्दी के अतिम चतुर्थांश में चँदेलो की शक्ति वहुत ही क्षीण हो गई थी। परमाल या परिमर्दिदेव चँदेल के शासन काल (११६६-१२०३ ई०) मे पहिले पृथ्वीराज चौहान और उमके पश्चात कुतुवुद्दीन ऐवक के आक्रमणो के कारण चँदेली राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। राजा परिमर्दिदेव के पश्चात् चँदेल राजा साधारण जागीरदारो की भाँति यत्र तत्र छोटे-छोटे राज्यो के ही अधिपति रह गये थे और यह सारा प्रदेश कई छोटे स्वतत्र राज्यो में विभक्त हो गया था। दक्षिण और दक्षिण पश्चिम में गोडो के छोटे-छोटे राज्य थे। महोवा और उमके आसपास के उत्तरी तथा पूर्वी भागो पर भार शासन कर रहे थे, तथा ओरछा के निकटवर्ती प्रदेश पर खँगोरो का आधिपत्य था, जिनकी राजधानी झाँसी मे कोई ३० मील पूर्व में स्थित गढ कुडार थी।[४]

२ बुंदेलो का उत्कर्ष—वीरसिह देव तक

बुंदेले अपने आपको काशी के गहरवार राजा वीरभद्र के पुत्र पचम के वशज मानते है। वीरभद्र के दो रानियाँ थी। पचम छोटी रानी के पुत्र थे। वीरभद्र के ज्येष्ठ रानी से चार पुत्र और भी थे, पर उनका प्रेम पचम पर ही अधिक था। इसलिए पचम के ज्येष्ठ न होने पर भी वीरभद्र ने उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और अन्य पुत्रो को जागीरें दे दी। वीरभद्र की मृत्यु होते ही उनके चार पुत्रो ने मिलकर पचम को निकाल दिया और राज्य को आपस में बाँट लिया। परन्तु पचम ने थोडे ही समय में शक्ति-सग्रह कर पुन अपना खोया राज्य प्राप्त कर लिया।[५] पचम के पश्चात् उनका पुत्र वीर गद्दी पर वैठा। वीर ने अपने राज्य की सीमाये दक्षिण पश्चिम की ओर और अधिक बढा कर महौनी (जिला जालौन) को अपनी राजधानी वनाया। कहा जाता है कि उमने एक सत्तार खाँ नामक सेनापति को पराजित किया और कालिंजर तथा कालपी को भी अपने राज्य में मिला लिया।[६]

वरुनी ने 'जाजाहोती' दिया है। इब्नवतूता ने भी इस प्रदेश की यात्रा की थी। वह इसकी राजधानी 'कजर्रा' या खजुराहो का उल्लेख करता है।

वाटर्स० २, पृ० २५१, साचौ० १, पृ० २०२, गिव्स, पृ० २२६।

४ स्मिथ० पृ० ३६४, वगाल० १, १८८१, पृ० २२, ४४, ओरछा गजे० पृ० ६, १४।

५ यह सपूर्ण विवरण छत्र० पृ० ४-८ पर आधारित है। गोरेलाल के अनुसार पचम के पिता का नाम कर्णपाल था और उनके तीन पुत्र थे, जिनमें से हेमकर्ण या पचम मझले थे।

गोरे० पृ० ११६, वंगाल० १६०२ पृ० १०३, ओरछा गजे० पृ० ११-१२।

अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि बुंदेलों[7] ने इस प्रदेश में जो बाद में बुंदेलखंड के नाम से प्रसिद्ध हुआ, लगभग तेरहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही प्रवेश किया। शहाबुद्दीन गोरी और उसके सेनापतियों की विजयों ने उत्तरी भारत के राजपूत राजाओं की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया था और यह संभव है कि इसी समय में काशी के गहरवार राजपूतों की एक शाखा ने जो कालान्तर में बुंदेलों के नाम से प्रसिद्ध हुई, बुंदेलखंड में प्रवेश किया हो। इस समय महोबे के चँदेलों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी, इस कारण भी बुंदेलों को इस प्रदेश में घुसने में अधिक सुगमता हुई।

बुंदेलखंड में पहुँचने के कुछ समय बाद तेरहवीं सदी के अंतिम युग में वीर बुंदेला के तृतीय वंशज सोहनपाल ने खँगार राजा को छल से मार कर उसकी राजधानी गढ़ कुडार और उसके आसपास के इलाके पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया, जिससे बुंदेलों के पैर इस प्रदेश में और अधिक जम गये।[8] सोहनपाल के उत्तराधिकारी गढ़ कुडार के निकटवर्ती भागों पर १५३१ ई० तक गढ़ कुडार से ही शासन करते रहे। इसी वंश के एक राजा रुद्रप्रताप ने अप्रैल १५३१ ई० में नई बुंदेला राजधानी ओरछा की नींव डाली।[9] भारत पर बाबर के आक्रमणों और लोदी साम्राज्य के पतन से उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति डाँवाडोल हो रही थी, जिससे लाभ उठाकर रुद्रप्रताप ने निकट के अन्य प्रदेशों को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। इन्हीं राजा रुद्रप्रताप के बारह पुत्रों से बुंदेलखंड

---

७ बुंदेला शब्द की व्युत्पत्ति के लिए इस अध्याय के अन्त में परिशिष्ट देखें।

८ गढ कुडार के बुंदेलों के हाथ में आने का ठीक समय निश्चित नहीं किया जा सकता। दीवान सज्जनसिंह के मतानुसार १२८८ ई० (संवत् १३४५) में यह घटना घटी। इर्विन के अनुसार गढ़ कुडार की विजय १२९२ ई० में हुई। स्मिथ अनुमान से इस घटना का समय १३३०-४० ई० के बीच में निश्चित करते हैं। परन्तु यह बात युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होती। ओरछा गजेटियर में कुडार विजय का वर्ष संवत् १३१४ (१२५७ ई०) दिया गया है, जबकि कहीं कहीं सोहनपाल द्वारा गढ कुडार की विजय संवत् १३१३ (१२५६ ई०) में होने के उल्लेख पाये जाते हैं। विशेष विश्वसनीय सूचना के अभाव में यह प्रतीत होता है कि सोहनपाल ने तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही कभी गढ कुडार पर अधिकार किया होगा।

बंगाल० १९०२, पृ० १०५, १०६, बंगाल० १८८१, पृ० ४४-४५, इर्विन० ७, पृ० २१७, ओरछा गजे०, पृ० १५।

सोहनपाल ने किस कौशल से गढ कुडार पर अधिकार किया इसके लिए बंगाल० १९०२, पृ० १०५, १०६ देखें।

९ ओरछा की नींव बैसाख सुदी १३, १५८८ वि० (रविवार अप्रैल २९, १५३१) में डाली गई थी।

के राजवश अपनी उत्पत्ति मानते हैं।[१०] रुद्रप्रताप और उनके उत्तराधिकारी भारतीचद ने अपने राज्य की सीमाओ को यमुना के दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम में और भी अधिक बढाया। उनके इस अधिकृत क्षेत्र का नाम बुंदेलखड शायद इसी समय से पडा।[११]

रुद्रप्रताप की मृत्यु १५३१ ई० में एक चीते से गाय की रक्षा करते हो गई।[१२] उनके अनन्तर उनके प्रथम दो पुत्र भारतीचद (१५३१-५४ ई०) और मधुकर शाह (१५५४-९२ ई०) क्रमश गद्दी पर बैठे। उन्होंने ओरछे के राज्य को अधिकाधिक शक्तिशाली बनाया और उसकी सीमाओ का विस्तार किया। मधुकरशाह के ही समय में प्रथमबार बुंदेलो के मुगलो से सघर्ष हुए। मधुकरशाह ने ग्वालियर और सिरोज के पास के प्रदेशो पर छुटपुट आक्रमणो एव अपने साम्राज्यविरोधी कार्यों द्वारा सम्राट् अकबर को रुष्ट कर दिया। कई बार शाही सेनायें मधुकरशाह के विरुद्ध भेजी गई और मधुकरशाह को विवश होकर बारबार मुगल अधीनता स्वीकार करनी पडी।[१३] मधुकरशाह की मृत्यु सन् १५९२ ई० के लगभग हो गई। उनका ज्येष्ठ पुत्र रामशाह अब ओरछा का अधिपति हुआ। पर वह निर्बल शासक सिद्ध हुआ और १६०७ ई० में सम्राट् जहाँगीर ने उसे गद्दी से हटाकर ओरछे का राज्य अपने कृपापात्र एव रामशाह के अनुज वीरसिंह देव को सौंप दिया।[१४] रामशाह को चँदेरी और बानपुर की जागीरें देकर सतुष्ट कर दिया गया। वीरसिंह देव ने राज्य का कुशलता से सचालन किया और सम्राट् की कृपा से लाभ उठा कर ओरछा राज्य की सीमाओं को भी बहुत बढा लिया। जहाँगीर की मृत्यु (अक्तूबर, २८, १६२७ ई०) से कुछ ही महीने पहिले वीरसिंह देव की मृत्यु हो गई।

३ जुझारसिंह का विद्रोह

वीरसिंह देव के पश्चात् उनका ज्येष्ठ पुत्र जुझारसिंह गद्दी पर बैठा। अपने शासन-काल के प्रारम्भ मे ही शाहजहाँ किसी कारणवश जुझारसिंह से अप्रसन्न हो गया और

---

१० छत्र० पृ० ११। इर्विन और मजबूतसिंह रुद्रप्रताप के केवल ९ पुत्रो का ही उल्लेख करते हैं।

बगाल० १९०२, पृ० १०७, इर्विन० २, पृ० २१८, ओरछा गजे० पृ० १७।

११ बगाल० १९०२, पृ० १०८।

१२ छत्र० पृ० १२।

१३ अकबरनामा (अग्रेजी) जि० ३, पृ० २९४, २९५, ३२४-२६, ३७९, ८०३, ९२३, ९२८।

१४ वीरसिंह देव ने अबुलफजल को मार कर सम्राट जहाँगीर की कृपा प्राप्त की थी।

सम्राट् के क्रोध से बचने के लिए जुझारसिंह आगरे से भागकर ओरछा चला आया।[१५] महावत खाँ, खाँजहाँ लोदी और अब्दुल्ला खाँ के सेनापतित्व में तीन शाही सेनाओं ने जुझारसिंह के राज्य पर उत्तर, उत्तर पश्चिम और दक्षिण से आक्रमण किया। मुगलों की विपुलवाहिनी के सम्मुख जुझारसिंह कब तक ठहर सकता था? इधर जब अब्दुल्ला खाँ ने एरच पर जनवरी १६२९ ई० में अधिकार कर लिया, तब तो जुझारसिंह का रहा सहा साहस भी जाता रहा। उसके विरोध का अंत हो गया और महावत खाँ के द्वारा उसने सम्राट् शाहजहाँ से मार्च १६२९ में क्षमा प्राप्त कर ली। तब शाही आज्ञानुसार जुझारसिंह अपनी बुंदेला सेना के साथ महावत खाँ की सेना में सम्मिलित होकर दक्षिण चला गया और वहाँ कुछ समय तक रहने के बाद अपने पुत्र विक्रमाजीत को वही छोडकर वह १०४४ हिजरी (२६ जून १६३४-१५ जून १६३५) मे ओरछा वापिस लौट आया।[१६]

दक्षिण से लौटने के कुछ ही समय पश्चात् जुझारसिंह ने चौरागढ[१७] के किले पर आक्रमण किया और वहाँ के गोड राजा भीमनारायण (प्रेम नारायण) को मार कर उस पर अपना अधिकार कर लिया। भीमनारायण के पुत्र से जुझारसिंह के इस निकृष्ट कार्य के समाचार सुनकर सम्राट् शाहजहाँ का क्रोध भडक उठना स्वाभाविक ही था। परन्तु चौरागढ का राज्य भीमनारायण के पुत्र को तुरत ही लौटा देने का आदेश न देकर शाहजहाँ ने जुझारसिंह से केवल उस लूट का अपना भाग माँगा। जुझारसिंह वह देने को सहमत न हुआ वरन उसने युद्ध की तैयारियाँ आरंभ कर दी और अपने पुत्र विक्रमाजीत को दक्षिण में आदेश भेजा कि वह किसी भी उपाय द्वारा शीघ्रातिशीघ्र मुगल सेना से वापिस लौट आवे। विक्रमाजीत उस समय मुगलों के साथ बालाघाट में था। वह उनके बीच से किसी प्रकार निकल भागा। मुगल टुकडियो ने उसका पीछा किया और आष्टा[१८] के पास हुई एक छोटी सी मुठभेड मे उसे घायल भी कर दिया। परन्तु विक्रमाजीत अज्ञात पहाडी मार्गो

---

१५. पाद० (१ अ, पृ० २४०) के अनुसार "नरसिंह देव (वीरसिंह देव) ने जो धनराशि और सम्पत्ति बिना परिश्रम और कष्ट के संचित की थी उससे उसके अयोग्य उत्तराधिकारी जुझारसिंह का मस्तिष्क असतुलित हो गया और शाहजहाँ के सत्तारूढ होने पर उसने आगरा छोड दिया और ओरछा चला आया।"

१६ पाद० १(अ), पृ० २४०-४२, २४६-४८; औरंग० १, पृ० १७, इर्विन० २, पृ० २२०।

१७ चौरागढ—जिला नरसिंहपुर मध्य प्रदेश में गाडरवारा स्टेशन से १० मील दक्षिण पूर्व की ओर।

१८ आष्टा—भेलसा से ७५ मील दक्षिण पश्चिम।

से निकलकर अत में धामोनी में अपने पिता के पास आ पहुँचा।[१९] जुझारसिंह की विद्रोही भावनाए अब पूर्णतया सुस्पष्ट हो गई थी। दक्षिण की ओर जाने वाला राजपथ जुझारसिंह के राज्य के किनारे होकर जाता था। वह उसके इस विद्रोह के कारण अब सुरक्षित नही रहा था। इसलिए सम्राट् के आदेशानुसार खाँजहाँ, फिरोज जग और खान-इ-दौरान के अधीन तीन बडी सेनाओ ने तीन विभिन्न दिशाओ से बुंदेलखड में घुस कर भांडेर[२०] में सम्मिलित पडाव डाला। जुझारसिंह को एक बार फिर कहलाया गया कि वह अपने पास से एक जिला और ३० लाख रुपया सम्राट् को भेंट कर क्षमा प्राप्त कर ले। पर जुझारसिंह अडिग रहा। तब शाहज़ादे औरगज़ेब को इन तीन सेनाओ का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया और यह सयुक्त सेना अब ओरछे की ओर तेज़ी से बढने लगी।[२१]

मुगल सेना के इस वेगपूर्ण आक्रमण को रोकना जुझारसिंह के लिए सभव न था। मुगलो ने अक्तूबर ४, १६३५ ई० को बुंदेलो की राजधानी ओरछा पर अधिकार कर चँदेरी के देवीसिह बुंदेला को वहाँ का राजा घोपित कर दिया। अपने परिवार के साथ जुझारसिंह ने पहिले धामोनी और बाद में चौरागढ के किले में शरण ली। शाही सेनाए बराबर जुझार का पीछा कर रही थी। धामोनी के किले पर अधिकार जमा कर मुगल सेनाए शीघ्रता से चौरागढ की ओर बढी। चौरागढ में भी अपने को सुरक्षित न समझ कर, जुझारसिंह ने चाँदा और देवगढ के प्रदेश से होकर दक्षिण की ओर निकल जाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसका पीछा करती हुई मुगल सेना की एक टुकडी वहाँ एकाएक बिल्कुल उसके पास जा पहुँची। अब बच निकलना असभव था। हताश होकर अपनी स्त्रियो का मान सुरक्षित रखने के लिए बुंदेलो ने उन्हें तलवार और कटार भोककर मार डालना चाहा, परन्तु शाही सैनिक तभी उन पर टूट पडे और उन्होने अधिकांश बुंदेलो को मार कर स्त्रियो को बदी बना लिया। जुझारसिंह और विक्रमाजीत जगलो में भाग गये, जहाँ गोडो ने उन्हे मार डाला। उनके सिर काटकर शाहजहाँ के पास भेज दिये गये। अन्य विद्रोहियो के सन्मुख शाही प्रतिशोध का भयानक उदाहरण उपस्थित करने के लिए सम्राट् के आदेशानुसार ये कटे हुए सिर सीहोर नगर के दरवाजो पर टांग दिये गये।[२२]

जुझारसिंह के परिवार की स्त्रियो और उसके पुत्र दुर्गभान तथा पौत्र दुर्जनसाल को शाहजहां के सामने लाया गया। उन्हें देख कर सम्राट् की धर्मान्धता भडक उठी। राजकुमारो को मुसलमान बना लिया गया। वीरसिंह देव की विधवा रानी पार्वती के गहरे घाव

---

१९ पाद० १(ब) पृ० ६५, ६६, औरग० १, पृ० १९। धामोनी सागर से २४ मील उत्तर में है।

२० भांडेर—झांसी से २५ मील उत्तर-पूर्व।

२१ पाद० १(ब) पृ० ९७-९९, औरग० १, पृ० २२।

२२ पाद० १(ब) पृ० १०७-११७; औरग० १, पृ० २२-२६।

लगने से उसकी मृत्यु हो गई। पर अन्य स्त्रियो को धर्म परिवर्तन के पश्चात् मुग़ल हरम में अपमानजनक जीवन व्यतीत करने को भेज दिया गया। जुझार के दो पुत्रो ने अपने सेवक श्याम दौवा सहित गोलकुडा में शरण ली थी। इनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम उदयभान था। दूसरा अभी बालक ही था। गोलकुडा के सुल्तान ने इन सब को बदी बनाकर शाहजहां के दरबार में भेज दिया। उदयभान और श्याम दौवा ने इस्लाम अपनाना स्वीकार नही किया और उन्हे क़त्ल कर दिया गया।[२३]

जुझारसिंह के इस विद्रोह को दबाने में चंदेरी के देवीसिंह, दतिया के भगवानराय और पहाडसिंह आदि बुंदेलो ने मुगलो को सक्रिय योग दिया था। देवीसिंह वीरसिंह देव के पदच्युत बडे भाई रामशाह का पौत्र था और भगवानराय तथा पहाडसिंह जुझारसिंह के ही भाई थे। इस समय बुंदेलो की आपसी फूट, पारस्परिक स्पर्धा, ईर्ष्या और द्वेष इतने बढ गये थे कि इन सारे निकटस्थ कौटुम्बिक सबधो को भी भुलाकर वे एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो उठे थे। देवीसिंह ने अत में अपने प्रपितामह के राज्य ओरछा पर पुन अपनी सत्ता स्थापित की और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ओरछे के किले में स्थित एक मदिर को मुगलो द्वारा गिराये जाते देख कर भी वह चुप रहा। मुगल झडो के नीचे युद्ध करके सिसो-दिया और राठौर, कछवाहा और हाडा जैसे कट्टर राजपूतो ने भी परोक्षरूपेण जुझारसिंह के दमन में योग दिया था।[२४] राजपूतो का जाति-धर्म सबधी अपना स्वाभिमान और शत्रुओ को भी विमुग्ध करने वाली वह प्रसिद्ध आश्चर्यजनक वीरता भी जैसे उनकी राज-नीतिक स्वतत्रता के साथ ही एकबारगी लोप हो गई थी।

जुझारसिंह की मृत्यु के बाद ओरछा का राज्य लगभग दो वर्ष तक देवीसिंह के अधिकार में रहा। परन्तु स्थानीय जनता तथा जुझारसिंह के अन्य बुंदेला अनुयाइयो के सक्रिय विरोध के कारण विवश होकर अत में देवीसिंह ओरछा छोड कर वापिस चंदेरी लौट गया। तब जुझारसिंह के राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया और वहाँ के शासन के लिये शाही कर्मचारी नियुक्त कर दिये गये।

४ चम्पतराय—छत्रसाल के पिता

ओरछा पर मुगल अधिकार के विरुद्ध बुंदेलो का नेतृत्व अब चपतराय कर रहे थे। उनके पिता भागवनराय ओरछा के संस्थापक राजा रुद्रप्रताप के तीसरे पुत्र उदयाजीत के पौत्र थे। रुद्रप्रताप की मृत्यु (१५३१ ई०) के पश्चात् उनकी दूसरी रानी मेहरबान कुंवर अपने पुत्र उदयाजीत को लेकर ओरछा से कटेरा चली आयी थी। कटेरा के पास

---

२३ पाद० १ (ब) पृ० ११५, १२३, १२९, औरंग० १, पृ० २७।

२४. पाद० १ (ब) पृ० ९६, ९७, ९९, १००, १२१; औरंग० १, पृ० २९।

उदयाजीत ने महेवा नामक एक गाव बसाया था।[२५] उनके वशज लगभग तीन पीढी तक यही महत्वहीन साधारण जीवन व्यतीत करते रहे। शाहजहाँ के शासन काल में अपने मुगल विरोधी कार्यों द्वारा इस वश के चपतराय ने प्रथम बार प्रसिद्धि प्राप्त की।

चपतराय का जन्म महेवा से लगभग ४ मील दक्षिण में मोर पहाडिया नामक ग्राम मे हुआ था। उनके बचपन के सबध में कोई भी विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध नही है। युवावस्था को प्राप्त होने पर चपतराय ने वीरसिंह देव की सेवा स्वीकार करली और उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र जुझारसिंह के प्रति भी वे वैसे ही स्वामिभक्त बने रहे। जुझारसिंह के विद्रोह में भी चपतराय ने उसका साथ दिया था।[२६] किंतु मुगलो से बच निकलने के जुझारसिंह के अतिम प्रयत्न मे वे सभवत उसके साथ नही थे और इसी कारण बाद में मुगलो के दात खट्टे करने को वे जीवित रह सके।

जब ओरछा राज्य को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया, तब चपतराय ने जुझारसिंह के एक छोटे पुत्र पृथ्वीराज का पक्ष लेकर विद्रोह कर दिया। ओरछा के आसपास के प्रदेश पर उनके छुटपुट आक्रमण होने लगे। मुगल फौजदार अब्दुल्ला खाँ फिरोज़जग और बाकी खाँ ने इन आक्रमणो को रोकने के लिए सेनायें एकत्र की और झाँसी तथा ओरछा के बीच किसी स्थान पर अप्रैल १८, १६४० को आक्रमण कर दिया। बुँदेले इस अप्रत्याशित आक्रमण का मुकाबला न कर सके और उन्हें करारी हार खानी पडी। पृथ्वीराज बदी हो गया और उसे ग्वालियर के किले में भेज दिया गया।[२७] शायद इसके कुछ समय पश्चात् ही बाकी खाँ ने पुन बुंदेलो पर खैल्हार[२८] में वह आक्रमण किया होगा, जिसमें चपतराय के ज्येष्ठ पुत्र सारवाहन के मारे जाने का उल्लेख छत्र प्रकाश मे मिलता है।[२९]

चपतराय इन पराजयों और आपत्तियो मे किंचित भी विचलित न हुए और उन्होने

---

२५ छत्र० पृ० १३-१५, इर्विन० २, पृ० २१६।

कटेरा ओरछा से २० मील पूर्व में है और महेवा कटेरा से लगभग ३ मील दक्षिण में है।

२६ पाद० २, पृ० ३०४, पन्ना० ६० और ६२, मा० उ० २, पृ० ५१०।

अपने एक पत्र (पन्ना० ६२) में छत्रसाल अपने पिता चपतराय के ओरछा से जागीर पाने का उल्लेख करते हैं। छत्रसाल ने बाद में यह जागीर इसी पत्र के अनुसार ओरछा राज्य को लौटा दी थी।

वीरसिंह देव चरित्र (पृ० ४१) में जो व्यक्ति अबुलफज़ल का कटा सिर लेकर शाहज़ादा सलीम के पास गया था, उसका नाम चपतराय बडगूजर दिया गया है।

२७ पाद० २, पृ० १६३, इर्विन० २, पृ० २२२।

२८ खैल्हार—झाँसी से ७ मील दक्षिण।

२९ छत्र० पृ० १६-२२।

अपने विद्रोही कार्यों को यथावत जारी रखा। मुग़लों से सीधा युद्ध न करके उन्होंने अब मुग़ल थानों पर अचानक छापामारी करके उनके आवागमन तथा रसद प्राप्त करने के मार्गों को अवरुद्ध कर शाही प्रदेशों की लूटपाट आरंभ कर दी। उनके आतंक से किसानों ने भूमि जोतना बंद कर दी, और वे गांव छोड़ कर भाग गये, जिससे मुग़लों को रसद प्राप्त करने में कठिनाई होने लगी। चंपतराय की शक्ति बढ़ने के साथ ही उनका कार्य क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। ग्वालियर और सूबा मालवा की सीमाओं तक अब उनके छापे पड़ने लगे। अब्दुल्ला खाँ, बहादुर खाँ आदि मुग़ल सेनानायक भी चंपतराय के विद्रोह का दमन करने में असमर्थ रहे। तब सम्राट् शाहजहाँ ने कूटनीति का सहारा लेकर, बुंदेलों में फूट डालने के उद्देश्य से जुझारसिंह के ही छोटे भाई पहाड़सिंह को ३००० का मनसबदार बना कर जून ४, १६४२ ई० को ओरछा का शासक नियुक्त किया। परन्तु चंपतराय मुगल सम्राट् की यह चाल भाप गये। उनका उद्देश्य तो केवल ओरछा को मुगल शासन से मुक्त कर जुझारसिंह के किसी संबंधी अथवा वंशज को ही वहां के राजसिंहासन पर आसीन करना था। पहाड़सिंह के राज्यारोहण से यह उद्देश्य पूर्ण हो गया था। इसलिए पहाड़सिंह का विरोध करना अनुचित मान कर चंपतराय ने विद्रोह समाप्त कर दिया। वे ओरछा के नये शासक से इस्लामाबाद (जतारा) में मिले और उसकी सेवा स्वीकार कर उनके साथ ओरछा चले आये।[३०]

चंपतराय कुछ काल तक पहाड़सिंह के पास ओरछा में ही रहे। पर उनके यह मैत्री-पूर्ण संबंध अधिक समय तक स्थिर न रह सके। मुग़लों के सफल विरोध से चंपतराय ने जो प्रसिद्धि और जनप्रियता उपार्जित की थी, उससे पहाड़सिंह मन ही मन उनसे द्वेष रखता था। उसे यह भी भय था कि कहीं चंपतराय के किसी मुग़लविरोधी कार्य से सम्राट् शाहजहाँ उससे भी अप्रसन्न न हो जाय। चंपतराय इतने जनप्रिय हो गये थे कि शक्ति के प्रयोग से उनका दमन करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था। इसलिए चंपतराय का अंत करने के लिए एक बार विषाक्त भोजन और दूसरी बार एक हत्यारे का प्रबन्ध किया गया। किन्तु चंपतराय और उनके सतर्क अनुयाइयों की तत्परता से ये दोनों ही वार खाली गये।[३१]

---

३० पाद० २, पृ० २२१, ३०३, ३०४; छत्र० पृ० २८-३४; इर्विन० २, पृ० २२३। जतारा मऊरानीपुर (जिला झाँसी) से लगभग १६ मील दक्षिण में टीकमगढ़ जाने वाले मार्ग पर है। इस्लामशाह सूर के राज्य काल में इसका नाम इस्लामाबाद रख दिया गया था। (ओरछा गजे पृ० १८)।

३१ एक बार एक उत्सव के अवसर पर चंपतराय अपने प्रधान साथियों सहित पहाड़सिंह से मिलने आये। जब वे भोजन करने बैठे तो पहाड़सिंह ने कौशल से चंपतराय को विष मिला हुआ भोजन परोसवा दिया। पहाड़सिंह के अभिप्राय को ताड़कर चंपतराय के अभिन्न मित्र भीम बुंदेला ने अपनी थाली चंपतराय की थाली से बदल ली। वह विषाक्त

चपतराय को पहाडसिंह के गर्हित उद्देश्यो के वारे में अव कोई सदेह नही रह गया था। फिर भी पहाडसिंह का खुले रूप से विरोध करना उन्हें उचित नही जान पडा। पहाडसिंह को मुगलो की सहायता प्राप्त थी ही और फिर इससे बुंदेलो की क्षणिक एकता भी नष्ट हो जाती तथा उनमें फिर वैमनस्य वढ जाता। अस्तु चपतराय ने शाही सेना में सम्मिलित होने का निश्चय किया और वे शाहजादे दाराशिकोह की सेवा में नियुक्त हो गये। उन्होने दाराशिकोह की सेना के साथ कधार के तीसरे आक्रमण (अप्रेल-सितबर १६५३) में भी भाग लिया।[३२] पहिले के दोनो अभियानो की भाति यह भी असफल हुआ, पर शायद चपतराय की वीरता से सम्राट् शाहजहाँ प्रसन्न हो गया और फलस्वरूप कौंच[३३] की तीन लाख की जागीर उन्हे दे दी गई। इसके कुछ ही समय पश्चात् किसी कारणवश दाराशिकोह चपतराय पर अप्रसन्न हो गया और कौच की जागीर उनसे छीनकर पहाडसिंह को दे दी गई। चपतराय दारा से असतुष्ट होकर अपनी पैतृक जागीर महेवा चले आये और उन्होने पुन आसपास के प्रदेशो मे लूटपाट आरभ कर दी।[३४]

चपतराय के सौभाग्य से इसी समय शाहजहाँ के पुत्रो मे उत्तराधिकार के लिये युद्ध प्रारभ हो गया और शाहजादे दाराशिकोह द्वारा किये गये अपने प्रति अन्याय का प्रतिशाध लेने का अवसर चपतराय को मिला। धर्मत के युद्ध (१५ अप्रैल १६५८) में जसवतसिंह राठौर की पराजय के वाद ही दतिया के शुभकरण बुंदेला के साथ चपतराय औरगजेव से मिले और उन्हे एक घोडे तथा खिलअत से पुरस्कृत किया गया।[३५] औरगजेव और मुराद की सम्मिलित सेना को चवल नदी के एक अरक्षित छिछले भाग से पार करने की राह दिखा कर चपतराय ने ही दारा के लिए विपम सकट उपस्थित कर दिया था।[३६] शामूगढ के युद्ध (२६ मई १६५८ ई०) में भी शाहजादे मुहम्मद आज़म की सेना में सम्मिलित होकर चपतराय औरगज़ेव की ओर से लडे थे। विजय के पश्चात् चपतराय को एक हाथी और मनसव प्रदान किया और वाद में उन्हें खलीलुल्लाह के साथ लाहौर भेज दिया

भोजन कर चपतराय को कुछ भी वताये विना ही भीम बुंदेला अपने निवास स्थान पर लौट आया। वहा उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रयत्न में विफल होकर पहाडसिंह ने चपतराय की हत्या करने के लिए एक मनुष्य को नियुक्त किया। पर यह प्रयत्न भी सफल न हो सका और हत्यारा चपतराय के ही एक वाण द्वारा मारा गया। (छत्र० पृ० ३५-३७)

३२ पाद० २, पृ० ३०४, छत्र० पृ० ३७।

३३ कौंच—झांसी से ५३ मील उत्तर पूर्व।

३४ छत्र० पृ० ३६, ४०।

३५ आ० ना० पृ० ७८, मा० उ० २, पृ० ५१०, ५११।

३६ वर्नियर० पृ० ४३, छत्र ० पृ० ४५, ४६, मनुची० १, पृ० २६६, २७०, भीम० १, पृ० २६, औरग० १-२, पृ० ३७३-७४ पाद टिप्पणी।

गया।[३७] किंतु कुछ समय पश्चात् किसी कारण से अथवा अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों से ही प्रेरित होकर चंपतराय फिर स्वदेश लौट आये और उन्होंने पुन विद्रोह का झंडा खड़ा कर मालवा की ओर जाने वाले मार्गों पर लूट-खसोट आरंभ कर दी।[३८]

औरंगज़ेब तब दाराशिकोह और शुजा का दमन करने में व्यस्त था। अत वह चंपतराय के विद्रोह की ओर विशेष ध्यान न दे सका। फिर भी उसने ओरछा के इंद्रमणि तथा महासिंह भादौरिया के साथ शुभकरण बुंदेला को चंपतराय के विरुद्ध भेजा। उन्हें कुछ साधारण सी सफलता प्राप्त हुई, पर उससे चंपतराय तनिक भी विचलित नहीं हुए।[३९] उधर जब अपने विरोधी भाइयों से छुटकारा पाकर औरंगज़ेब ने अपनी स्थिति सुदृढ कर ली, तब अपने राज्य काल के चौथे वर्ष (२० अप्रैल १६६१-९ अप्रैल १६६२) में उसने मालवा तथा बुंदेलखंड के राजाओं और जागीरदारों की सहायता से चंपतराय के विद्रोह को दबाने के लिये चंदेरी के देवीसिंह बुंदेला को नियुक्त किया।[४०] चंपतराय की स्थिति अब बहुत संकटमय हो गयी थी। उनके अपने ही स्वजनों ने उनके विरुद्ध तलवार उठा ली थी। मुगलों और बुंदेलों की सम्मिलित शक्ति का अधिक समय तक सामना करना चंपतराय के लिये संभव न था। अत उन्होंने अपने पुत्र रतनशाह और भाई सुजानसिंह के द्वारा संधि प्रस्ताव भेजे। पर उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसी बीच में ओरछे की सेनाओं ने सुजानसिंह को वेदपुर के किले में घेर लिया। बंदी होने की अपेक्षा मृत्यु श्रेयस्कर समझ सुजानसिंह ने आत्महत्या कर ली। उनकी पत्नियां भी उनके साथ सती हो गई और वेदपुर के किले पर शत्रुओं का अधिकार हो गया।[४१]

चंपतराय अब सहरा[४२] की ओर बढ़े। सहरा के राजा इंद्रमणि धँधेरा के प्रति चंपतराय ने कुछ उपकार किये थे।[४३] इसलिए चंपतराय ने उनके यहां सहरा में शरण लेने

---

३७. आ० ना० पृ० ९२, १६३, २१७, मा० उ० २, पृ० ५११; छत्र० पृ० ४६, ४७।

छत्र० (पृ० ४७, ४८) के अतिरंजित वर्णन के अनुसार चंपतराय को १२००० का मनसब तथा एरच, साहिजादपुर, कौंच और कनार आदि के परगने जागीर में मिले थे।

३८. आ० ना० पृ० ३०१; मा० उ० २, पृ० ५११; छत्र० पृ० ४९-५०।

३९ आ० ना० पृ० ३०१, ६३१; मा० उ० २, पृ० ५११, छत्र० पृ० ५१, ५२।

४० आ० ना० पृ० ६३२, मा० उ० २, पृ० ५११, छत्र० पृ० ५२।

४१ छत्र० पृ० ५४-५७।

४२ सहरा—मालवा सूबा के सारंगपुर जिले में था।

४३ आ० ना० पृ० ६३२, छत्र० पृ० ५८। छत्र० के अनुसार चंपतराय ने एक बार इंद्रमणि को शाही बंदीघर से मुक्त कराकर पुन सहरा का राज्य दिलाया था। डा यदुनाथ के विचार से इंद्रमणि को छुटाने में चंपतराय का कुछ हाथ होने की बात सही नहीं

की सोची। इद्रमणि धँधेरा किसी सैनिक चढाई में अन्यत्र व्यस्त था। इद्रमणि की अनुपस्थिति मे उसके नायव साहवराय धँधेरा ने कुछ हिचकिचाहट के बाद चपतराय को सहरा मे शरण दी। तव चपतराय को ज्वर हो आया था, जिससे वह निष्क्रिय पडे रहे। इसी बीच में ओरछा का राजा सुजानसिंह[४४] चपतराय का पीछा करता हुआ अपनी सेना सहित सहरा के समीप आ पहुचा और वहा उसने धँधेरो से चपतराय को सौंप देने की माग की।[४५] एक प्रारभिक युद्ध में धँधेरे बुरी तरह पराजित हो चुके थे, जिससे उनमें अव और विरोध का साहस न था। मुगलो तथा सुजानसिंह से पीछा छुडाने के लिए उन्होने चपतराय को ही मार डालने की योजना वनाई। इस समय चपतराय कुछ धँधेरे सैनिको के सरक्षण में मोरनगाँव की ओर जा रहे थे। उनके साथ केवल उनकी रानी लालकुँवर थी। वृद्धावस्था से जर्जरित और ज्वर से क्षीण चपतराय सर्वथा शिथिल हो चुके थे और उन्हे एक चारपाई पर ले जाया जा रहा था। निर्दिष्ट सकेत पाते ही धँधेरे सैनिक चपतराय पर टूट पडे। पति की रक्षा के लिए लालकुवर ने वेग से उनकी ओर अपना घोडा वढाया। परतु एक सैनिक ने उनके घोडे की लगाम पकड कर उसे रोक दिया। तव लालकुवर ने अपना उदर विदार कर अपनी इहलीला समाप्त कर दी। वस्तुस्थित समझने में चपतराय को अव देरी नही लगी। उन्होने भी अपने पेट में कटार भोक कर आत्महत्या कर ली।[४६] धँधेरो ने

जान पडती। १६५७ ई० में जब औरगजेब दारा से युद्ध करने उत्तर की ओर जा रहा था, तभी उसने इद्रमणि को कैद से मुक्त कर दिया था। (इर्विन० २, पृ० २२५, २२६, पाद टिप्पणी)

४४ पहाडसिंह की मृत्यु के पश्चात सुजानसिंह १६५३ ई० में ओरछा का राजा हुआ था।

४५ आ० ना० पृ० ६३२-३३, छत्र० पृ० ५७।

४६ छत्र० पृ० ६२-६५, औरग० ३, पृ० ३०, इर्विन० २, पृ० २२७।

इर्विन ने चपतराय की मृत्यु का वर्णन छत्र० के आधार पर ही लिखा है, किंतु सभवत वह छत्र० की पक्तियो को ठीक से समझ नहीं सके जिससे उनका यह वर्णन छत्र० में दिये गये विवरण से वहुत भिन्न हो गया है। इर्विन इस घटना का वर्णन इस प्रकार करते है —

"वे वुदेला अधिपति (चपतराय) पर एकवारगी ही टूट पडे और उन्हें मार डाला। ठकुरानी अपने घोडे से कूदी और अपने पति की ओर दौडीं। उन्होने एक घुडसवार की वाग थाम ली, पर उसने मुडकर उनके पेट में कटार भोक दी। इस प्रकार पति और पत्नी एक साथ ही मृत्यु को प्राप्त हुए।"

तुलना के लिए छत्र० की पक्तिया उदधृत की जाती है —

> ऐसो समय लख्यो ठकुरानी। पतिव्रत माझ चलायो पानी ॥
> चढ़ि तुरग पति के ढिग जाही। धरी वाग एक दौर सिपाही ॥

चपतराय का सिर काट कर औरगजेब की सेवा में भेज दिया, जहा वह नवबर ७, १६६१ ई० को दरबार में उपस्थित किया गया।[४७]

बाग छुवन पाई नहीं, चढ्यो मग्न की चाउ।
कटरा काढ्यो पेट में, दये घाउ पर घाउ॥
दै दै घाउ मरी ठकुरानी। चपतिराइ दगा तव जानी॥
यह ससार तुच्छ निरधारयो। मारि कटारिन उदर विदारयो॥
(छत्र० पृ० ६५)

४७ आ० ना० पृ० ६३३; मा० उ० २, पृ० ५११।

परिशिष्ट

बुँदेला शब्द की व्युत्पत्ति

छत्र प्रकाश के अनुसार जब पचम को उनके भाइयो ने गद्दी से उतार दिया, तब वह विन्ध्यवासिनी देवी के मदिर में जाकर घोर तपस्या करने लगे। सात दिनो के पश्चात् निराश होकर उन्होने देवी को अपना ही सिर चढा देने का निश्चय किया। पर बलि पूर्ण होने के पूर्व ही देवी ने प्रगट होकर उनको वरदान दिया कि उन्हे अपना खोया हुआ राज्य पुन प्राप्त हो जावेगा। किंतु पचम के सिर पर तलवार का हलका सा घाव लग गया था, जिससे बूँद-बूँद कर रक्त निकल रहा था। इन्ही रक्त की 'बूँदो' से पचम और उनके वशज बुंदेलो के नाम से प्रसिद्ध हुए।[४८]

इस सबध में ओरछा गजेटियर में जो विवरण दिया हुआ है, वह भी समान रूप से अविश्वसनीय है। इसके अनुसार पचम ने विन्ध्यवासिनी देवी के सम्मुख पाच मनुष्यो के सिरो की बलि देकर राज्य प्राप्ति का वरदान पाया था और फिर विन्ध्यवासिनी देवी का मदिर विन्ध्य पर्वत श्रेणियो में स्थित होने के कारण अपने नाम में विन्ध्येला जोड लिया था। यह विन्ध्येला शब्द बाद में विकृत होकर बुंदेला हो गया।[४९]

हादी कतुल अकालीम के लेखक की सूचनानुसार बुंदेला एक बाँदी और हरदेव नामक गहरवार राजपूत के वशज है। बादी से उत्पन्न होने के कारण ही उनका नाम बुंदेला पडा।[५०] इलियट को यह कथन ठीक प्रतीत हुआ किन्तु प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथ इस मत से सहमत नही है। उनका अनुमान है कि शायद बुंदेले गढ कुंडार के खगार राजा की कन्या और एक गहरवार राजपूत की सतान है।[५१] यह मत भी बुंदेला शब्द की व्युत्पत्ति पर कोई विशेष प्रकाश नही डालता। टाड का कथन है कि जर्मादा नामक गहरवार ने विन्ध्यवासिनी देवी के सम्मुख एक महायज्ञ कर अपने वशजो को बुंदेला कह कर प्रसिद्ध किया।[५२] मासिर-उल-उमरा के अनुसार भी काशीराज नामक बुंदेलो का एक पूर्वज विन्ध्यवासिनी देवी का परम भक्त था, इसलिए उसे बुंदेला कहा जाता था।[५३]

---

४८ छत्र० पृ० ६-८, बगाल० १६०२, पृ० १०४।

४९ ओरछा गजे० पृ० १२।

५० हादी कतुल अकालीम पृ० १६७।

५१ इलियट० (बीम्स कृत) १, पृ० ४५ बगाल० १८८१, पृ० ४४ ४६।

५२ टाड० १, पृ० ११६।

५३ मा० उ० २, पृ० ३१७।

उपर्युक्त विभिन्न धारणाओं के विश्लेषण से यही प्रतीत होता है कि बुंदेला शब्द की उत्पत्ति विन्ध्येला शब्द से हुई। विन्ध्येला का सबध इस प्रदेश में बिखरी विन्ध्याचल की श्रेणियों और मिर्जापुर के पास स्थित विन्ध्यवासिनी देवी के मदिर से जोडा जा सकता है। 'विन्ध्यवासिनी' बुंदेलो की इष्टदेवी है। इसलिए सभव है कि पचम ने अपने राज्य की पुन प्राप्ति को विन्ध्यवासिनी देवी की कृपा समझ कर कृतज्ञतावश अपने नाम के साथ विन्ध्येला जोड लिया हो और यही विन्ध्येला कालान्तर में बुंदेला में परिवर्तित हो गया हो। एक अन्य सुझाव यह भी हो सकता है कि शायद पचम का प्रभुत्व विन्ध्यवासिनी देवी के मदिर के निकटवर्ती प्रदेश में होने के कारण वह विन्ध्येला नाम से विख्यात हो गये हो। पचम के एक पूर्वज का नाम विन्ध्यराज था।[१४] इससे भी उपर्युक्त दृष्टिकोण को ही समर्थन मिलता है।

छत्रसाल का प्रारम्भिक जीवन : २ :

१ जन्म और बचपन

चपतराय के सारवाहन, अगदराय, रतनशाह, छत्रसाल और गोपाल पाच पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र सारवाहन की मृत्यु चपतराय के जीवनकाल में ही बाकी खां से एक युद्ध में हो गई थी।[1] उसकी मृत्यु के उपरान्त ही छत्रसाल का जन्म शुक्रवार, मई ४, १६४६ ई० को ककर-कचनए[2] ग्राम में हुआ था।[3] छत्र प्रकाश में वर्णित घटनाओ के अतिरिक्त

---

१ छत्र० पृ० १७, २०-२२।

२ ककर-कचनए—झांसी से लगभग २७ मील पूर्व। इस ग्राम में छत्रसाल के जन्म का उल्लेख जनश्रुतियो पर ही आधारित है।

३ बुंदेलखड में प्रचलित छत्रसाल की जन्म तिथि शुक्रवार ज्येष्ठ सुदी ३, सवत १७०६ को ही यहा मान्य किया गया है, जिसका उल्लेख निम्नलिखित पदो में मिलता है —

(१) सवत सत्रह सै अरु छै, सुभ ज्येष्ठ सुदी तिथि तीजि वखानी।
दिन शुक्रवार है शिव के नक्षत्र में, पुत्र जन्यो राय चपतरानी ॥

(२) सवत सत्रह सै छै अधिक, वरस विलवां साल।
जेठ मास सुदि तीज तिथि, उपजे नृप छत्रसाल ॥

प्रथम पद की रचना छत्रसाल की छतरी के वर्तमान महत घनीराम जी के पितामह श्री श्याम जी ने की है। यह छतरी नौगांव (मध्य प्रदेश) से ५ मील दक्षिण धुवेला ताल (मऊ सहानिया) में स्थित है। उसके निर्माण के समय से ही महन्त धनीराम के पूर्वज उसकी देखभाल करते रहे हैं।

गोरे लाल (पृ० १६३-६४) और श्यामलाल (भाग २, पृ० १६) ने भी उपर्युक्त तिथि मान्य समझी है।

अन्यत्र छत्रसाल की निम्नलिखित जन्म तिथिया दी गई है —

१ ज्येष्ठ सुदी ३ सवत १७०७ (मई, २३, १६५०) पन्ना गजे० पृ० ७।

२ मई २६, १६५० (ज्येष्ठ सुदी ६, स १७०७)—देसाई० २, पृ० १०५।

किन विश्वसनीय ऐतिहासिक आधारो पर ये तिथिया दी गई है, वह ज्ञात न होने से, वे विशेष विचारणीय नहीं हैं। उनकी तुलना में जनश्रुति के आधार पर मान्य उपर्युक्त जन्मतिथि ही ठीक प्रतीत होती है।



पन्ना राज्य के सस्थापक महाराजा छत्रसाल बुंदेला

(महाराजा पन्ना के सौजन्य से)

उनके वाल्यकाल संबंधी और कोई विश्वसनीय जानकारी प्राप्त नही है। चपतराय के विद्रोही जीवन मे उनके पुत्रो की उचित रूप से शिक्षा-दीक्षा संभव ही न थी। फिर भी छत्रसाल ने अस्त्र संचालन में वचपन ही में निपुणता प्राप्त कर ली थी। धनुष-वाण, तलवार और वदूक तथा गुर्ज का प्रयोग वे भली भाति कर सकते थे। मल्लयुद्ध और घुड़सवारी से भी उन्हे प्रेम था। चौगान उनके प्रिय खेलो में से था। वचपन में छत्रसाल अपने मामा के पास भी कुछ समय तक रहे थे, जहा उन्होंने शस्त्र विद्या के साथ-साथ थोडी शिक्षा भी प्राप्त की थी।[4] छत्रसाल के राजनीतिक गुरु छत्रपति शिवाजी ही थे। उनसे छत्रसाल ने कुछ जादू टोना भी सीखा था।[5] आरम्भ से ही छत्रसाल में धर्म के प्रति विशेष अनुराग था। एक वार वे महेवा[6] के चेतन गोपाल के मदिर में भावनाओ के उद्रेक से वेसुध से हो गये थे।[7] उनकी यह धार्मिक श्रद्धा जीवन भर ज्यो की त्यो वनी रही।

चपतराय जब अपनी जीवन रक्षा के हेतु सहरा की ओर भाग रहे थे, तव छत्रसाल भी उनके साथ थे। सहरा के स्थानापन्न नायक साहिवराय धंधेरे ने चपतराय के इस तरफ आने का समाचार सुनकर अपने सैनिको की एक टुकडी उन्हे वचाकर अपने सरक्षण में सहरा लाने के लिये भेजी। इन सैनिको को शत्रु पक्ष का समझ कर छत्रसाल अपनी माता सहित रुग्ण पिता की रक्षा के लिए मरने मारने को कटिवद्ध हो गये। परन्तु वाद में धंधेरे सैनिको का परिचय पाकर छत्रसाल और उनकी माता का भ्रम दूर हो गया और वे उनके सरक्षण में चपतराय सहित सहरा की ओर चल पडे।[8]

सहरा पहुचने के कुछ समय पश्चात् जब चपतराय अधिक सुरक्षा के लिये मोरनगाव जाने लगे तव छत्रसाल उनके आदेशानुसार अपने वहनोई ज्ञानशाह के गाव को चल दिये। ज्ञानशाह के गाव को पहुचते-पहुचते छत्रसाल को तीव्र ज्वर हो आया। इसी दशा में वे वहिन के पास पहुचे। पर विपत्तिग्रस्त भाई पर वहिन को भी करुणा न आई और उसने छत्रसाल से भेंट तक नही की। दुखित हृदय छत्रसाल उलटे पैरो अपने डेरे लौट आये। रात्रि में जब ज्ञानशाह लौटे तव उन्होने छत्रसाल के लिए भोजन की सामग्री भेजी और वहुत रात्रि वीते छत्रसाल ने भोजन किया। वहिन के इस कटु व्यवहार से व्यथित होकर छत्रसाल संभवत शीघ्र ही पुन सहरा चले आये, क्योंकि छत्र प्रकाश के अनुसार अपने

---

४ छत्र० पृ० ५६, ६६, ६७; पन्ना० ५०।

५. पन्ना० ७५।

६ महेवा—कस्बा कचनए से लगभग ५ मील दक्षिण पूर्व। यह महेवा उस महेवा से भिन्न है जो छत्रसाल ने मौगाव से लगभग ६ मील दक्षिण में बसाया था।

७ छत्र० पृ० २५, २६।

८ छत्र० पृ० ६०।

माता पिता की मृत्यु के समाचार उन्हे सहरा में ही प्राप्त हुए थे।[९]

माता पिता के अंतिम सस्कारो से निवृत्त होकर छत्रसाल ने देवगढ में जाकर अपने बडे भाई अगद को यह समाचार सुनाये। दोनो ही प्रतिशोध पर उतारू हो गये। परन्तु उचित सहायता और शक्ति के अभाव में मुगलो या अपने ही आपसी शत्रुओ से लोहा लेने की क्षमता तब उनमें न थी। अत वे अब अपनी स्थिति सुदृढ करने के लिए तत्पर हुए। छत्रसाल ने दैलवाडे जाकर एक व्यक्ति के पास से अपनी माता के आभूषणो को प्राप्त किया। कुछ ही समय पश्चात छत्रसाल का विवाह पवार वश की एक कन्या देवकुवर से हो गया। छत्रसाल ने अपने वश के पुरोहित भान से भी कुछ सहायता प्राप्त करने की आशा से भेंट की। पर भान भी लक्ष्मी की कृपा से वचित यजमान से कोई सपर्क नही रखना चाहता था।[१०] छत्रसाल और अगद ने इस प्रकार यह स्पष्टतया देख लिया कि मुगल साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने वाले चपतराय के पुत्रो को बुंदेलखड में कही से भी कोई सहायता न मिलेगी। जुझारसिंह, पृथ्वीराज और चपतराय के दुखद अत से सभी स्थानीय राजा और सामत आतकित हो उठे थे और मुगलो के क्रोध को आमत्रित करने का साहस अब उनमें नही रह गया था। सब ओर से निराश होकर अत में छत्रसाल ने मुगल सेना में ही नौकरी करने का निश्चय किया।

२ जयसिंह की सेना में—शिवाजी से भेंट

छत्रसाल और अगद अब अपने चाचा जामशाह को साथ लेकर मिर्जा राजा जयसिंह से मिले।[११] जयसिंह उस समय (१६६५ ई०) शिवाजी के विरुद्ध ससैन्य दक्षिण की ओर प्रस्थान कर रहे थे।[१२] जयसिंह ने उन्हे अपनी सेना में नियुक्त कर लिया और किसी

---

९ छत्र० पृ० ६३, ६८। छत्रसाल के एक पत्र (पन्ना० ५३) के अनुसार चपतराय की मृत्यु के समय वे अपने मामा के यहा रह रहे थे। पुन छत्र० (पृ० ६४) के अनुसार जब चपतराय मोरनगांव की ओर कूच करने वाले थे तब शत्रुओ को धोखा देने के लिए उनकी रानी लालकुंवर ने अपने पिता के यहा के एक सेवक से प्रार्थना की थी कि वह चपतराय का वेष धारण कर ले। अत अनुमान यही होता है कि छत्रसाल के मामा और सहरा का कुछ सबध अवश्य रहा होगा। सभव है कि सहरा का अधिपति (सभवत इन्द्रमणि) छत्रसाल के मातृपक्ष का कोई निकट सम्बन्धी हो।

१० छत्र० पृ० ६६-७१।

११ छत्र० पृ० ७१, ७२, हफ्त अजुमन पृ० ३२, जय० अख० (सरकार) २, पृ० ८३। जामशाह की अधिक जानकारी के लिये ग.रे० पृ० १८९, ३१७ और छत्र० पृ० १०२ देखें।

१२ मिर्जा राजा जयसिंह की दक्षिण में यह नियुक्ति सितम्बर ३०, १६६४ ई०

युद्ध अथवा घेरे में वीरता तथा साहस का प्रदर्शन करने पर सम्राट से कोई मनसब भी दिला देने का वचन दिया। अंगद, छत्रसाल और जामशाह ने पुरंधर के घेरे (मई १६६५) में बड़ी ही वीरता दिखाई और जयसिंह की सिफारिश पर उन्हें क्रमशः ८ सदी ज़ात ६०० सवार, ढाई सदी ज़ात १०० सवार तथा ४ सदी ज़ात ३०० सवार के मनसब प्रदान किये गये।[13] उन्होंने बीजापुर के आक्रमण (दिसम्बर १६६५-फरवरी १६६६) में भी भाग लिया। तत्पश्चात् जब दिलेर खाँ देवगढ़ की ओर बढ़ रहा था, तब छत्रसाल को एक सैनिक टुकड़ी के साथ उसकी सहायता के लिये भेजा गया।[14] पर देवगढ़ के राजा कोकसिंह ने बिना ही युद्ध किये अधीनता स्वीकार कर ली।[15]

छत्रसाल मुग़लों से सन्तुष्ट न थे। वे अनुभव करते थे कि उनकी सेवाओं को यथेष्ट

की हुई थी। मिर्ज़ा राजा के जनवरी ६, १६६५ ई० को नर्मदा पार करने से पहिले ही सम्भवतः छत्रसाल और अंगद ने उनसे भेंट की है। (शिवाजी० पृ० १०५) अतः अक्तूबर १६६४ के पश्चात और जनवरी ६, १६६५ ई० से पहिले ही यह भेंट हुई होगी। छत्रसाल उस समय लगभग १६ वर्ष के थे।

१३ जय० अख० (सरकार) २, पृ० ८३ (सीतामऊ)। यदुनाथ सरकार के अनुसार अंगद को हज़ारी और छत्रसाल को ३ सदी के मनसब मिले थे। (औरंग० ५, पृ० ३६३)

हफ्त अंजुमन (पृ० ३२) के अनुसार जयसिंह ने उनके लिये निम्नलिखित मनसबों की प्रार्थना की थी—

अंगद	जामशाह	छत्रसाल
हज़ारी ज़ात	३ सदी	३ सदी
५०० सवार	३०० सवार	१५० सवार

किंतु सम्राट ने उसमें उपर्युक्त हेर फेर कर दिये थे।

१४ छत्र० (पृ० ७२) के अनुसार छत्रसाल को बहादुर खाँ की सहायता के लिए भेजा गया था, जो कि सही नहीं मालूम पड़ता। देवगढ़ पर किये गये इस समय दोनों ही आक्रमणों (१६६७ और १६६९) में मुग़ल सेना का सेनापति दिलेर खाँ था। इसलिए वस्तुतः छत्रसाल को दिलेर खाँ की सहायतार्थ ही भेजा गया था। (औरंग० ५, पृ ३६२ भी देखें।)

छत्र० (पृ० ७२) में जयसिंह द्वारा ही छत्रसाल को भेजे जाने का उल्लेख है। लेकिन जयसिंह की मृत्यु अगस्त २८, १६६७ ई में हो गई थी। इसलिए छत्रसाल ने सम्भवतः १६६७ से पहिले ही अभियान में भाग लिया था।

१५ आ० ना० पृ० १०२०-३०, म० आ० पृ० ३६, औरंग० ५ पृ० ४०३, ४०४।

छत्र० (पृ० ७२-७६) और छत्रसाल के एक पत्र (पत्रा० ५४) के अनुसार देवगढ़ के राजा ने घोर युद्ध के पश्चात अधीनता स्वीकार की थी और छत्रसाल की वीरता से ही

रूप से पुरस्कृत नही किया गया था।[१६] शाही सेना में शीघ्र पदोन्नति की सभावना भी कम थी। पुन छत्रसाल के हृदय में पिता की मृत्यु के प्रतिशोध की अग्नि भी अभी ठडी नही पडी थी। इधर शिवाजी की मुगलो के विरुद्ध अभूतपूर्व सफलताओं से उत्तरी भारत तक के हिन्दू अनुप्राणित हो उठे थे। छत्रसाल भी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित और आकर्षित हुए बिना न रह सके। मुगलो की ओर से शिवाजी के विरुद्ध युद्ध करना उन्हे लज्जाजनक जान पडा और महाराष्ट्र मे शिवाजी के उच्च उद्देश्यो के लिए अपना रक्त बहाना उन्हे मुगलो के आदेश पर अपनी तलवार हिन्दू रक्त से रजित करने की अपेक्षा कही अधिक उचित एव सम्माननीय प्रतीत हुआ। इसलिए एक दिन शिकार पर जाने का बहाना करके छत्रसाल मुगल सेना से निकल भागे और अपनी पत्नी सहित शिवाजी से भेंट करने दक्षिण की ओर चल पडे। जगली तथा पहाडी दुर्गम मार्गों से होते हुए वे भीमा नदी तक आ पहुँचे और उसे पार कर उन्होने शिवाजी से भेंट की।[१७]

छत्रसाल कुछ समय तक शिवाजी के पास पूना में रहे।[१८] इस समय में उन्होने वहाँ शिवाजी के युद्ध-कौशल, उनकी कूटनीति और शासन सगठन के सम्बन्ध में वह सारी प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त कर ली, जिसका उपयोग बाद में उन्होने सफलतापूर्वक बुंदेलखड में किया। छत्रसाल की प्रबल आकाक्षा शिवाजी के पास रहकर मराठो के स्वतन्त्रता सग्राम में योग देने की थी। परन्तु शिवाजी इससे सहमत नही हुए। वे सारे भारत में हिन्दू पद-पादशाही स्थापित करने के स्वप्न देख रहे थे, अत महत्त्वाकाक्षी छत्रसाल को अपने यहाँ रहने देकर स्वराज्य के प्रयत्नो को दक्षिण तक ही सीमित रखना उन्हे अभीष्ट नही था। इसीलिए उन्होने छत्रसाल को बुंदेलखड लौटकर मुगलो के विरुद्ध वहाँ भी स्वतन्त्रता

मुग़लों को यह विजय प्राप्त हो सकी थी। ये विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण हैं एव फारसी ग्रथों की तुलना में विश्वसनीय नहीं माने जा सकते।

१६ भीम० १, पृ० १३२, छत्र० पृ० ७७।

१७ छत्र० पृ० ७८, ७९, मा० उ० २, पृ० ५११। छत्र० के अनुसार यह भेंट शिवाजी के आगरे से भाग निकलने (अगस्त १९, १६६६) और राजगढ पहुँचने (दिसम्बर १६६६) के पश्चात हुई थी। सर देसाई का भी यही मत है। (देसाई० १, पृ० २६८)

छत्रसाल जयसिंह के पास सन् १६६७ ई के प्रारम्भिक महीनो तक ही रहे होंगे, तदनन्तर वे दिलेर खाँ के देवगढ पर आक्रमण (२५ अप्रैल-१७ सितम्बर १६६७) में भाग लेने के लिए गये थे। उसके बाद ही वे शिवाजी से मिले होंगे। अत शिवाजी और छत्रसाल की भेंट सन् १६६७ ई के अन्तिम महीनो में होना सभव जान पडती है।

१८ छत्रसाल ने शिवाजी के पास कुछ समय तक रहने का उल्लेख जगतराज को लिखे अपने एक पत्र (पन्ना० ५७) में किया है। छत्रसाल के इस पत्र मे उपर्युक्त प्रधान घटनावली का मोटे तौर पर समर्थन ही होता है।

संग्राम संगठित कर स्वयं उसका नेतृत्व करने की मंत्रणा दी।[19] परन्तु इतिहासकार भीमसेन इसका दूसरा ही कारण बताता है। उसके अनुसार शिवाजी उत्तरी भारत के लोगों पर विश्वास नहीं करते थे और इसीलिए उन्होंने छत्रसाल को अपने देश लौटा दिया।[20] भीमसेन का यह कथन तर्क-संगत नहीं है। शिवाजी द्वारा छत्रसाल को वापिस बुंदेलखंड में भेजने के सही उद्देश्य के सम्बन्ध में यदुनाथ सरकार का सुझाव सबसे अधिक ठीक और युक्तियुक्त प्रतीत होता है। उनके मत में इसका कारण यह था कि शिवाजी "मुगल सेनाओं का ध्यान बँटाकर" अपने अधिकृत प्रदेश पर उनका दबाव कम करना चाहते थे।[21] इस प्रकार दक्षिण में स्वतन्त्रता की प्रज्वलित मशाल से एक चिनगारी बुंदेलखंड लायी गयी और उससे नर्मदा के उत्तर में विद्रोह की वह अग्नि धधक उठी जो औरंगजेब के साथ ही उसके सारे उत्तराधिकारियों के लिए एक दुरूह समस्या बनी रही।

३. स्वतन्त्रता-संघर्ष की ओर

शिवाजी द्वारा प्रेरित हो छत्रसाल पुनः उत्तरी भारत को लौट पड़े और राह में वह शुभकरण बुंदेला से मिले।[22] इस भेंट में छत्रसाल का उद्देश्य मुगलों से अपने भावी संघर्ष के समय में शुभकरण के दृष्टिकोण को समझकर संभवतः उनकी सहायता और सहानुभूति प्राप्त करना ही रहा होगा। परन्तु शुभकरण ने छत्रसाल के स्वतन्त्रता संग्राम में सहयोग देना अस्वीकार कर दिया। उसने छत्रसाल से अपनी व्यर्थ की योजनाएँ छोड़ देने का आग्रह किया और मुगल सेना में उनको एक उचित मनसब दिलवाने का भी आश्वासन दिया। फिर भी शुभकरण छत्रसाल को उनके निश्चय से विचलित न कर सका।[23]

उस समय छत्रसाल का भविष्य अन्धकारमय ही था। उनके पास न साधन थे, न सहयोगी और न सैनिक ही। बुंदेलखंड में एक चप्पा भूमि भी ऐसी न थी जिसे वे अपनी कह सकते। तभी एक अप्रत्याशित घटना ने बुंदेलखंड का वातावरण ही छत्रसाल के पक्ष

---

१९. छत्र० पृ० ७९-८०।

२०. भीम० १, पृ० १३२। भीमसेन का उपर्युक्त कथन उसके संरक्षक दतिया के राव दलपतराय के हितों द्वारा प्रेरित हुआ मान लेना अनुचित न होगा। दलपतराय और उसके पिता शुभकरण का झुकाव कभी भी चम्पतराय और उनके पुत्रों की ओर नहीं रहा। चम्पतराय और छत्रसाल के मुगल विरोधी कार्यों में वे हमेशा शामिल हो रहते थे।

२१. औरंग० ५, पृ० ३९३।

२२. छत्र० पृ० ८०। शुभकरण उस समय दक्षिण में ही था। (मा० उ० २, पृ० ३१८)।

२३. छत्र० पृ० ८०, ८१।

में परिवर्तित कर दिया। औरगज़ेब प्रारम्भ ही से कट्टर मुसलमान था और राज्यारूढ होने के कुछ वर्षों के बाद से ही उसकी नीति अधिकाधिक धर्मांधतापूर्ण हिन्दू-विरोधी होती गयी। अप्रैल ९, १६६९ ई को उसने एक आदेश जारी कर हिंदुओ के मन्दिरो आदि को तोड-फोडकर नष्ट कर देने का हुक्म दिया। तदनुसार ग्वालियर में फिदाई खाँ ने ओरछा के प्रसिद्ध मन्दिरो को गिराने के उद्देश्य से अठारह सौ घुडसवारो की सेना एकत्र की।[२४] ओरछा का राजा सुजानसिंह तब मुगल सेना के साथ दक्षिण में था। बुंदेलो ने धुर्मगद के नेतृत्व में सगठित होकर फिदाई खाँ का धूमघाट[२५] पर मुकाबला किया और उसे परास्त कर पीछे खदेड दिया।[२६] जब सुजानसिंह ने दक्षिण मे यह समाचार सुने तो वह अपने राज्य के भविष्य के लिए चिन्तित हो उठा। सभवत तब उसे छत्रसाल के पिता चपतराय के प्रति अपने निन्दनीय वर्ताव का भी स्मरण हो आया होगा। इसलिए उसने जब यह सुना कि छत्रसाल बुंदेलखड में स्वतत्रता युद्ध आरम्भ करने जा रहे है, तो उसने छत्रसाल से सहानुभति दिखाकर उन्हे अपने पक्ष में कर लेना ही उचित समझा। अत दूत भेजकर छत्रसाल को बुलाया गया और सुजानसिंह अत्यन्त आदरपूर्वक उनसे मिला। पहले की कौटु-

---

२४ छत्र० पृ० ८२। मा० आ० (पृ० ६५) के अनुसार मई ८ और अगस्त ४, १६७० के बीच में ही कभी फिदाई खाँ को ग्वालियर भेजा गया था। इसलिए यह घटना उसी वर्ष की होगी। इसको देखते हुए ओरछा के राजा सुजानसिंह की मृत्यु की जो वर्ष मा० उ० (२, पृ० २९३) में दी गई है, वह ठीक नहीं जान पडती। मा० उ० के अनुसार सुजानसिंह की मृत्यु औरगजेब के शासन-काल के ग्यारहवें वर्ष (१६६८ ई०) में हुई थी। किन्तु ओरछा गजे० (पृ० ३२) और गोरेलाल के ग्रन्थ (पृ० १५३) में उनकी मृत्यु १६७२ ई० में होने का उल्लेख है, जबकि ठाकुर मजबूतसिंह (बगाल० १९०२, पृ० ११७) उनकी मृत्यु १६७० ई० मे हुई मानते है। छत्र० के अनुसार फिदाई खाँ के आक्रमण (१६७० ई०) के पश्चात ही छत्रसाल सुजानसिंह से मिले थे, इसलिए मा० उ० में दी गई सुजानसिंह की मृत्यु की वर्ष (१६६८ ई०) गलत जान पडती है। उसकी मृत्यु १६७० और १६७२ ई० के बीच में ही कभी हुई होगी।

२५ धूमघाट—डबरा से करीब ६ मील सिंध नदी के तट पर। डबरा झासी से लगभग ३२ मील उत्तर की ओर है।

२६ छत्र० पृ० ८२, ८३।

छत्रसाल अपने एक पत्र (पन्ना० ५९) में फिदाई खां के विरुद्ध इस युद्ध में बुंदेलो का नेतृत्व स्वय करने का उल्लेख करते हैं, जो सही प्रतीत नहीं होता। छत्रसाल तब दक्षिण में होने के कारण बुंदेलखड के इस युद्ध में कैसे भाग ले सकते थे? छत्र० में भी उनके इस युद्ध में भाग लेने का कोई उल्लेख नहीं है।

म्बिक विषमताओ को भुलाकर आपसी सहायता के प्रण किये गये और सुजानसिंह ने छत्रसाल को उनके देशभक्तिपूर्ण कार्यों में भरसक योग देने का वचन दिया।[२७]

तदनन्तर छत्रसाल औरगाबाद में अपने चचेरे भाई बलदाऊ (बल दिवान) से मिले और उनके सन्मुख भी अपनी भावी योजनाओ को रखा। बलदाऊ पहिले तो झिझके, पर जब गोटियाँ डालकर उठाने पर छत्रसाल के पक्ष में गोट खुली, तो वे भी छत्रसाल के साथ सम्मिलित होने को तुरन्त तत्पर हो गये। अब छत्रसाल ने नर्मदा पार की और बुंदेलो को एकता के सूत्र में पिरोकर मुगल दासता से देश को मुक्त कराने का दृढ निश्चय कर वे सन् १६७१ ई० में बुंदेलखड आ पहुँचे। छत्रसाल की आयु इस समय लगभग २१ वर्ष की थी और उनके साथ केवल पाँच घुडसवार और पच्चीस पैदल सैनिक थे।[२८]

तब तक बलदाऊ बागौंदा[२९] आ पहुँचे थे। छत्रसाल ने वहा आकर उनसे भेंट की और फिर अपने भाई रतनशाह की सहायता प्राप्त करने बीजौरी[३०] चल पडे। परन्तु रतनशाह ने भी शुभकरण की ही तरह छत्रसाल की योजनाओ को मूर्खतापूर्ण तथा विवेकहीन बताकर उन्हे सहायता देना अस्वीकार कर दिया। छत्रसाल ने अट्ठारह दिन तक बीजौरी में रह कर रतनशाह का निश्चय बदलने के विफल प्रयास किये, और तदनन्तर वे बलदाऊ के पास लौट आये।[३१] दोनो तब ओडेर[३२] की ओर बढे, जहा एक बाकी खाँ[३३] भी उनके साथ हो गया। छत्रसाल को अब इस छोटी सी सम्मिलित सैनिक टुकडी का

---

२७ छत्र० पृ० ८३-८६, पन्ना० ६०।

छत्रसाल के इस पत्र (पन्ना० ६०) के अनुसार छत्रसाल और सुजानसिंह की यह भेंट ओरछा में हुई थी किन्तु छत्रसाल का यह कथन ठीक नहीं है। छत्र० (पृ० ८७) के अनुसार सुजानसिंह के साथ यह भेंट होने के बाद छत्रसाल बलदाऊ से औरगाबाद में मिले थे। उन्होंने अभी नर्मदा पार कर बुंदेलखड की ओर प्रस्थान ही नहीं किया था।

२८ छत्र० पृ० ८७-८९। इन ३० योद्धाओ में उच्च एव निम्न सभी वर्गों के लोग थे, जैसे कुँवर नारायणदास, गोविन्दराय, दलसुख मिश्र, सुन्दरमणि पँवार, खरगे बारी, पबल ढीमर, और फजे मियाँ आदि। आरम्भ से ही छत्रसाल ने अपने अनुयायियो का चुनाव धर्म और जाति के आधार पर नहीं अपितु उनकी योग्यता और स्वय के प्रति भक्ति के आधार पर ही किया।

२९ एक बागौटा नामक गाँव छतरपुर से २ मील दक्षिण में है।

३० बीजौरी—छतरपुर से ५० मील दक्षिण।

३१ छत्र० पृ० ८९-९३, पन्ना० ६१।

३२ ओडेर—सिरोज से २० मील उत्तर पूर्व।

३३ पन्ना० ६१। छत्र० (पृ० ९३)। में बाकी खाँ को बुंदेला कहा गया है। पर यदुनाथ सरकार उसे कोई लुटेरा अफगान सरदार मानते है। (औरग० ५, पृ० ३९५)।

नायक चुना गया। आस-पास के प्रदेशो को लूटकर तथा चौथ वसूल कर अपनी शक्ति बढाना ही अभी छत्रसाल का उद्देश्य था। इस लूट में छत्रसाल का भाग ५५ अश और बलदाऊ का ४५ अश निर्धारित किया गया।[३४]

छत्रसाल के अनुयायियो में अभी तक केवल ३० घुडसवार और ३०० पैदल सैनिक ही थे। परन्तु फिदाई खाँ के ओरछे पर आक्रमण और औरगजेब की मन्दिरो को नष्ट करने की नीति ने हिन्दुओ की धार्मिक भावनाओ पर चोट की थी, जिससे बुंदेलखड का जन-साधारण अब छत्रसाल को हिन्दू धर्म का रक्षक और स्वतन्त्रता का पोषक समझने लगा था। लोग अभी चपतराय को भूले नही थे। उनकी हार्दिक कामना थी कि कोई वीर बुंदेला फिर चपतराय के शौर्यपूर्ण कार्यों को दुहरा कर उनके धर्म की रक्षा के लिए मुगलो से लोहा ले। इसलिए छत्रसाल को अपने मुगल-विरोधी सघर्ष में बुंदेलखड की जनता का अपूर्व समर्थन प्राप्त हो गया। जो लोग मुगलो का सक्रिय विरोध करने को तत्पर थे, वे सहर्ष छत्रसाल की सेना मे सम्मिलित होने लगे। चपतराय के पुराने साथी भी उनके पुत्र से आ मिले।[३५] छत्र-साल का विरोध करने में असमर्थ छोटे-छोटे सामत और जागीरदार और तलवार से अपनी भाग्य रेखायें बदलने को समुत्सुक साहसी वीर भी अब छत्रसाल के झडे के नीचे एकत्र हो गये। इस प्रकार शीघ्र ही छत्रसाल की शक्ति इतनी बढ गई कि वे अपने पूर्वजो के रक्त से सिंचित भूमि पर मुगल सत्ता को खुली चुनौती देने का साहस कर सके।

प्रारम्भिक संघर्ष

१. प्राथमिक चरण (१६७१-७३)

छत्रसाल ने बुंदेलखंड में स्वतन्त्रता संग्राम सन् १६७१ ई० के लगभग आरम्भ किया और एक वर्ष के ही अल्प समय में मऊ[1] के आस पास उन्होंने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।[2] फिर अपने पिता चपतराय की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए छत्रसाल ने धँधेरो पर आक्रमण किया। धँधेरे अत्यन्त वीरतापूर्वक लडे परन्तु छत्रसाल की सेना के सामने अधिक समय तक न टिक सके। वे पराजित हुए और भागकर उन्होंने पास की गढी में शरण ली। बुंदेलो ने गढी का घेरा डाल दिया। अन्त में निरुपाय होकर धँधेरो ने आत्म-समर्पण कर दिया और छत्रसाल को मित्रता के सूत्र में बाँधने के लिए उन्होंने अपनी एक कन्या का विवाह भी उनसे कर दिया।[3]

छत्रसाल अब सिरोज (मालवा) की ओर बढे। उनके इस आक्रमण के समाचार पहले ही वहाँ पहुँच चुके थे और सिरोज के फौजदार मुहम्मद हाशिम और आनदराय बका

१ मऊ—मऊ सहानियाँ, नौगाँव से ४ मील दक्षिण।

२. छत्र० पृ० ८९; पन्ना० ६९। छत्रसाल के इस पत्र के अनुसार मऊ के इन निकटवर्ती भागों की आय १२ लाख (सभवत दाम) थी, जो अविश्वसनीय है। छत्रसाल के वे सभी पत्र, जिनमें उनके इन प्रारम्भिक सघर्षों का उल्लेख है, घटनाओ के ५०-६० वर्ष बाद उनके पुत्र जगतराज के आग्रह पर उसी को लिखे गये है। तब छत्रसाल की स्मृति इन घटनाओ के सबध में क्षीण हो चली थी जिससे इन पत्रो में दी गई संवत वर्षों में और घटनाओ के क्रमिक वर्णन में भूलें हो जाना स्वाभाविक ही है। इसलिए इस अध्याय में घटनाओ का क्रम छत्र प्रकाश के अनुसार ही रखा गया है। कहीं कहीं समकालीन मुग़ल अखबारो और फारसी के ग्रथो की सूचना के आधार पर उसमें आवश्यक परिवर्तन भी किये गये है।

३. छत्र० पृ० ९५। इस समय धँधेरो का मुख्य स्थान सहरा ही था, जहाँ चपतराय ने शरण ली थी। यहीं धँधेरों ने उनके साथ विश्वासघात किया था। अत यह आक्रमण सहरा पर ही किया गया होगा।

गोरेलाल (पृ० १८३) के अनुसार कुँवरसेन के नेतृत्व में धँधेरों ने छत्रसाल का सामना किया था। उसी के भाई हिरदेशाह की कन्या दानकुँवर का विवाह छत्रसाल के साथ किया गया था।

ने बुंदेलों का सामना करने की पूरी तैयारियाँ कर ली थी। इधर केशरीसिंह धंधेरा भी अपनी सैन्य सहित छत्रसाल के साथ हो गया।[४] बुंदेले अब सिरोज के निकट आ पहुँचे। हाशिम और आनन्दराय ने बाहर निकल कर उनका सामना किया। युद्ध में हाशिम के लगभग ५० सैनिक मारे गये। बुंदेलो के वेगपूर्ण आक्रमण को मुसलमान न सभाल सके और पराजित होकर उन्हे सिरोज के भीतर शरण लेनी पड़ी।[५] सिरोज के घेरे में व्यर्थ समय नष्ट न कर छत्रसाल निकटवर्त्ती गाँवो की लूट-पाट करते हुए ओड़ेर[६] की ओर बढ़े। ओड़ेर में जैत पटेल नामक एक स्थानीय धनिक को बुंदेलो ने पकड़कर बंदी बना लिया और उससे एक मोटी रकम ऐंठ कर ही उसे मुक्त किया।[७] छत्रसाल ने लौटते समय पिपरहट को भी लूटा और वे तब धौरासागर[८] में आकर रुके। यहाँ एक दामाजी राय नामक जागीरदार कुछ घोड़ो सहित उनकी सेना में सम्मिलित हो गया। तदनन्तर अपनी सेना को विश्राम देने और रसद आदि का प्रबन्ध करने के लिए छत्रसाल चित्रकट चले आये।[९]

कुछ समय बाद छत्रसाल ने फिर लूट-पाट आरम्भ कर दी। उनके भय से आस-पास के मुगल अधिकारी आतंकित हो उठे थे। धामोनी[१०] के फौजदार खालिक ने प्रत्येक गाँव में थाने बैठा दिये और छत्रसाल के सभावित आक्रमण का सामना करने के लिए वह आवश्यक सेना एकत्र करने लगा। परन्तु छत्रसाल ने धामोनी पर सीधा आक्रमण नही किया। वे पथरिया[११] और धामोनी के निकटवर्ती प्रदेश को लूटकर सिदगवां के पहाड़ी इलाके की ओर बढ़े। वहाँ खालिक की सेना से उनकी मुठभेड़ हो गई, जिसमें शायद छत्रसाल पराजित हुए और उन्हे विवश होकर मऊ वापिस लौट आना पड़ा।[१२]

---

४ छत्र० पृ० ९५। कहा जाता है कि केशरीसिंह को कुँवरसेन धंधेरे ने छत्रसाल की सहायतार्थ भेजा था (गोरे० पृ० १८३)।

५ वही।

६ ओड़ेर—सिरोज से २० मील उत्तर-पूर्व।

७ पन्ना० ६७। किंतु छत्र० (पृ० ९६) के अनुसार छत्रसाल ने जैत पटेल पर तरस खाकर बिना डांड लिये ही उसे छोड़ दिया था। छत्रसाल के उपर्युक्त पत्र में दिया गया उल्लेख ही यहाँ अधिक सही माना गया है।

८ धौरासागर—एक धौरीसागर नामक ग्राम तहसील महरौनी (जिला झांसी) में परगना मंडौरा में है।

९ छत्र० पृ० ९६।

१० धामोनी—सागर से २४ मील उत्तर।

११ पथरिया—सागर से ३० मील पूर्व।

१२ पन्ना० ६६। छत्र० (पृ० ९७) के अनुसार इस युद्ध में खालिक पराजित

इम पराजय से छत्रसाल निरुत्साहित नहीं हुए। उन्होंने पुन सैन्य सगठित कर घामोनी के पास चन्द्रापुर[१३] को लूटा और फिर कुछ समय पश्चात् मैहर[१४] पर आक्रमण कर वहाँ के बघेला राजा से चौथ और मुक्तिधन वसूल किया।[१५] इसके तुरन्त ही पश्चात् छत्रसाल ने फिर घामोनी के निकटवर्ती प्रदेशों पर आक्रमण आरभ कर दिये। तब सन् १६७२ ई० में ही कभी धामोनी के फौजदार खालिक से उनकी दूसरी मुठभेड़ रानगिर[१६] में हुई। इस युद्ध में खालिक बुरी तरह पराजित हुआ। उसके निशान, नगाडे, और तोपें बुंदेलो ने छीन ली किन्तु बचे-खुचे सैनिको सहित खालिक किसी प्रकार वहाँ से बच निकला। इस युद्ध में छत्रसाल भी घायल हुए। विजित प्रदेश मे थाने स्थापित कर वे फिर अपने सैनिक अड्डे मऊ को वापिस लौट आये।[१७]

कुछ समय सेना को विश्राम देने के पश्चात् छत्रसाल फिर धामोनी की ओर बढे। वासा[१८] के समीप वहाँ का जागीरदार केशवराय दागी बुंदेलो का सामना करने आ डटा। केशवराय अपने असाधारण शौर्य और साहस के लिए दूर-दूर तक विख्यात था। उसने छत्रसाल को इस युद्ध का निपटारा आपस में युद्ध द्वारा करने को ललकारा। छत्रसाल इस चुनौती को कैसे अस्वीकार कर सकते थे? दोनों में भयकर युद्ध हुआ। अन्त में छत्रसाल के वाण से आहत होकर केशवराय भूमि पर आ गिरा और छत्रसाल ने तब उसका सिर काट

हुआ था। परन्तु छत्रसाल के पत्र में दिया गया उनकी अपनी हार का उल्लेख अधिक सही प्रतीत होता है।

१३ चन्द्रापुर—धामोनी से १३ मील दक्षिण पश्चिम।

१४ मैहर—पन्ना से ४७ मील पश्चिम-दक्षिण।

१५ मैहर का बघेला शासक तब बालक ही था और उसकी माँ शासन की देख-भाल करती थी। माधवसिंह गूजर बघेला सेना का सेनापति था। बुंदेलो ने मैहर का दुर्ग जीतकर माधवसिंह को बन्दी बना लिया। तब बघेलो ने निरुपाय होकर मुक्तिधन देकर माधवसिंह को मुक्त कराया और बुंदेलो को ३००० वार्षिक नजराना देते रहने का वचन दिया। (गोरे० पृ० १८४)।

१६ रानगिर—सागर से १६ मील दक्षिण पूर्व।

१७ पन्ना० ६६; छत्र० पृ० ६७। लाल कवि का यह कथन कि खालिक ने बन्दी होने पर ३० हजार रुपया देने का वचन देकर मुक्ति पाई, उचित नहीं जान पडता। छत्र-साल के पत्र (पन्ना० ६६) में खालिक के बच निकलने का स्पष्ट उल्लेख है। इसी पत्र के अनुसार खालिक की सेना ६५००० थी और २०-२२ हजार मुसलमान तथा १५००० बुंदेले इस युद्ध में काम आये थे। स्पष्ट ही ये सारी संख्यायें बहुत ही बढा-चढ कर लिखी गई हैं।

१८ वासा—सागर से लगभग १६ मील दक्षिण पश्चिम।

लिया ।[१९] अब बुंदेले पूरे वेग से दागी सैनिको पर टूट पडे और अधिकाश को तलवार के घाट उतार दिया। इस युद्ध मे छत्रसाल के भी गहरे घाव लगे जिससे उन्हे कोई दो माह तक वासा में विश्राम करना पडा । अब वासा के गावो पर भी उनका आधिपत्य सुदृढ हो गया ।[२०]

छत्रसाल दुर्धर्ष योद्धा थे और शत्रु का रक्त बहाने में किंचिन्मात्र भी विचलित न होते थे। पर पराजित शत्रु के प्रति क्षत्रियोचित उदारता दिखाना और उसकी वीरता एव शौर्य का सम्मान करना भी वे पूरी तरह जानते थे । केशवराय की बासा वाली जागीर उन्होंने उसके पुत्र को लौटा दी और साथ ही उसे कुछ और जागीर तथा खिताब भी देकर सतुष्ट कर दिया ।[२१]

छत्रसाल अब पठारी को लूटते हुए अपने मित्र बाकी खाँ के अधिकृत इलाके में पहुँचे, जहा उन्होंने कुछ दिनो तक विश्राम किया। यही जब वह एक दिन शिकार खेलने गये, तब जासूसो ने सैयद बहादुर नामक एक शाही फौजदार को इसकी पूर्व सूचना दे दी । सैयद बहादुर ने छत्रसाल को चारो ओर से घेर लिया। पर इसी बीच में छत्रसाल के सैनिको को किसी प्रकार उनकी विपत्ति की सूचना मिल गई और उन्होंने वहा तेजी से पहुँचकर सैयद बहादुर को हराकर भगा दिया । इसके कुछ दिनो बाद ही छत्रसाल ने सागर पर अधिकार कर लिया और सात तोपो सहित अपने सैनिको को वहा नियुक्त कर वे मऊ लौट आये ।[२२]

---

१९ पन्ना० १९, ४३, छत्र० पृ० ९७, ९८।

पन्ना० ४३ के अनुसार केशवराय दागी से यह युद्ध सवत् १७३२ अथवा १६७५ ई में हुआ था। परन्तु यह सन् सवत् ठीक नहीं है। छत्र० में केशवराय दागी से इस युद्ध के बाद ही रणदूला या रुहुल्ला खाँ से छत्रसाल के युद्ध का वर्णन है। मा० आ० (पृ० ७९) के अनुसार रुहुल्ला खाँ को अप्रैल १६७३ में बुदेलखड भेजा गया था इसलिए केशवराय से यह युद्ध १६७३ के पहले ही कभी होना चाहिए।

छत्र० के अनुसार केशवराय की मृत्यु साग के प्रहार से हुई थी। यहा छत्रसाल के पत्रों के वर्णन को ही ठीक समझा गया है क्योकि उपर्युक्त दोनो पत्रो में जो लगभग ६ वर्ष के अन्तर से लिखे गये है केशवराय का बाण लगने से ही नीचे गिरने का उल्लेख है।

२० पन्ना० १९, ४३।

२१ वही। केशवराय के इस पुत्र का नाम विक्रमाजीत था। (गोरे० पृ० १८६)। उसे क्या खिताब दिया गया इसकी सूचना उपलब्ध नहीं है। पन्ना० ४३ में वासा जागीर की आय ३० लाख की लिखी है। इन्हें तत्कालीन मुग़ल शासन प्रथा के अनुसार दाम भी मान लिया जावे फिर भी यह सख्या विश्वसनीय नहीं जान पडती।

२२ वही, छत्र० पृ० ९९-१००।

२ रुहुल्ला खाँ का बुँदेलखंड भेजा जाना (१६७३-७५)

छत्रसाल के इन निरन्तर आक्रमणो से धामोनी के निकटवर्ती प्रदेश से मुगल सत्ता लगभग उठ सी गई और वहा चारो ओर अराजकता फैल गई। धामोनी का फौजदार खालिक घवडा उठा। उसने वहादुर खाँ[२३] के पास दूत भेजकर तुरन्त ही सहायता भेजने की प्रार्थना की। वहादुर खाँ इस समय सभवत सम्राट् की सेवा में ही था। जव औरगजेव को यह सारी स्थिति ज्ञात हुई तो उसने रुहुल्ला खाँ को अप्रैल १६७३ में धामोनी का फ़ौजदार नियुक्त कर उसे छत्रसाल और उनके भाइयो का शीघ्र दमन करने के आदेश दिये। रुहुल्ला खाँ के साथ अन्य २२ सरदार भी भेजे गये तथा ओरछा, दतिया एव चँदेरी के राजाओ और बुँदेलखड के अन्य जमीदारो को उसकी भरपूर सहायता करने के हुक्म जारी किये गये।[२४]

रुहुल्ला खाँ ने बुँदेलखड पहुँचते ही एक वडी सेना एकत्र कर गढाकोटा[२५] की ओर कूच कर दिया।[२६] छत्रसाल इस समय गढाकोटा में ही डेरा डाले हुए थे। सायकाल में युद्ध प्रारम्भ हुआ और रात्रि तक चलता रहा। बुँदेलो ने अद्भुत शौर्य दिखाया। उनके तीव्र आक्रमणो से वाध्य होकर मुग़ल सैनिको को पीछे हटना पडा और अन्त में विवश होकर रुहुल्ला खाँ गहरी क्षति उठाकर वापिस लौट गया।[२७]

इन प्रारम्भिक सफलताओ से उत्साहित होकर छत्रसाल ने अव अपना कार्यक्षेत्र

---

२३. मार्च-अप्रैल १६७३ में एरच के फौजदार मिर्जा जान मिनू की मृत्यु हो जाने पर वहां का मरातिव वहादुर खाँ अथवा खाँ जहाँ वहादुर को दिया गया था (मा० आ० पृ० ७६ और पृ० ४, ११, ३८, ८८ आदि भी देखें।)

२४. छत्र० पृ० १०४; मा० आ० पृ० ७६। छत्र-प्रकाश में रुहुल्ला खाँ के स्थान पर रणदूला खाँ का नाम दिया गया है। नामो में यह फेर-फार भूल से हो गई होगी। (औरग० ५ पृ० ३०६ पाद टिप्पणी)

२५ गढाकोटा—सागर से लगभग २८ मील पूर्व।

२६. छत्र० (पृ० १०५) और पन्ना० ४५ में दी गई सैन्य सख्याएँ (क्रमश ३०००० और ६५०००) वहुत ही अतिशयोक्तिपूर्ण एव सर्वथा अविश्वसनीय हैं।

२७ छत्र० पृ० १०४-१०६; पन्ना० ४५। छत्र० में रुहुल्ला खाँ के इस आक्रमण का वर्णन मुनव्वर खाँ से हुए युद्ध के पश्चात् दिया गया है। मा० आ० (पृ० ७६) के अनुसार रुहुल्ला खाँ की नियुक्ति मार्च-अप्रैल १६७३ में हुई थी जवकि मुनव्वर खाँ को राठ महोवा आदि की फौजदारी नवम्बर २८, १६७७ और अप्रैल १५, १६७८ के वीच में दी गयी थी (मा० आ० पृ० १०१)। इसलिए रुहुल्ला खाँ सवधी घटनायें स्पष्टतया मुनव्वर खाँ की नियुक्ति के पूर्व ही हुई होगी। अस्तु छत्र० में दिया गया घटना-क्रम वदलना अनिवार्य हो गया।

भी उनसे आ मिले। छत्रसाल के अन्य सहयोगी, जामशाह, पृथ्वीराज, अमर दीवान, कटेरा[४१] और शाहगढ़[४२] के जमींदार आदि सभी उनके साथ हो गये। इस प्रकार लाल कवि के अनुसार बुंदेलखंड के कोई सत्तर छोटे-बड़े जागीरदार और सरदार अब छत्रसाल से सहयोग करने लगे।[४३] पर ओरछा, दतिया और चंदेरी के बुंदेला राजाओं का छत्रसाल के प्रति रुख अब भी किंचित मात्र नहीं बदला था। समय-समय पर वे छत्रसाल के विरुद्ध मुग़लों को सैनिक सहायता देते ही रहे। ओरछा के राजा जसवन्तसिंह ने तो सितम्बर १६७८ में छत्रसाल के विरुद्ध एक सैनिक अभियान का नेतृत्व भी स्वयं किया।[४४]

इधर इन सफलताओं ने छत्रसाल को और भी अधिक दूरदर्शी बना दिया था। वे जानते थे कि अपनी सीमित शक्ति के बल पर मुगल सम्राट् की विपुल साधन सपन्न सेना से अधिक समय तक लोहा लेना उनके लिए सर्वथा असंभव है। अपने आन्तरिक शत्रुओं का भी उन्हें भय था। इसलिए कुछ समय के लिए इन युद्धों से विराम पाकर अपनी शक्ति को पुन संगठित करने का अवसर प्राप्त करने के उद्देश्य से सन् १६७९ ई० के प्रारम्भिक महीनों में ही कभी छत्रसाल ने शाहज़ादा मुअज़्ज़म को एक प्रार्थनापत्र भेजकर अपने साम्राज्य-विरोधी कार्यों के लिए सम्राट् से क्षमा याचना की और शाही सेना में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। छत्रसाल की यह प्रार्थना औरंगज़ेब की सेवा में पहुँचाने का मुअज़्ज़म ने वचन दिया और छत्रसाल को एक ख़िलअत भेजी।[४५] लेकिन बहुत करके शाहज़ादा मुअज़्ज़म ने उस समय छत्रसाल के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया।

राजपूताना में तब चल रहे मुगल-राजपूत युद्ध के समय औरंगज़ेब ने तहाव्वर खाँ को छत्रसाल का दमन करने के लिए बुंदेलखंड में नियुक्त किया था।[४६] वहाँ पहुँचते ही तहाव्वर खाँ ने सैन्य एकत्र कर सावर[४७] पर आक्रमण कर दिया। इस समय सावर में छत्रसाल के विवाह की तैयारियाँ हो रही थी। किन्तु बुंदेलो ने तहाव्वर खाँ का डट

---

४१ कटेरा—ओरछा से २० मील पूर्व।

४२ शाहगढ—छतरपुर से ५० मील दक्षिण पश्चिम।

४३ छत्र० पृ० १०१-१०३।

४४ मा० आ० पृ० १०५, मा० उ० २ पृ० २६४।

४५ पन्ना० १०१ (मुअज़्ज़म का छत्रसाल को पत्र मई ६, १६७९) मुअज़्ज़म इस समय दक्षिण में था। मा० आ० पृ० १०१-१०५।

४६ तहाव्वर खाँ की यह नियुक्ति नवम्बर २६, १६७९ और अक्तूबर २४, १६८० के अख़बारों के अनुसार सम्भवत १६७९ ई के प्रारम्भिक महीनों में हुई थी। (जय० जर० और० २३ (१) पृ० १२८ और २४ (१) पृ० ७७।

४७ सावर—नक्शों में नहीं मिलता। हमीरपुर से १६ मील दक्षिण में एक 'सयार' नामक ग्राम अवश्य है।

कर सामना किया और उनके भयकर आक्रमणो ने तहाव्वर खाँ को पीछे हटने पर विवश कर दिया।[४८]

तहाव्वर खाँ और छत्रसाल के बीच दूसरा युद्ध रामनगर में हुआ।[४९] मुसलमान बुंदेलों को कुछ विशेष क्षति न पहुँचा सके। बुंदेले उनका साधारण सा प्रतिरोध कर वीरगढ़[५०] की ओर बच कर निकल गये। वीरगढ की घाटी में मुगल चौकी के सैनिको ने बुंदेलो को रोकने के विफल प्रयत्न किये। बुंदेले घाटी से निकल कर पटना[५१] पर जा टूटे और उसे जला डाला। तहाव्वर खाँ ससैन्य तेजी से बुंदेलो का पीछा करता चला आ रहा था। खुले युद्ध में उसे पराजित करना सभव न समझ कर छत्रसाल ने अपने सैनिको को आस-पास के घने जगलो और पहाडियो में छपा दिया। एक दिन जब छत्रसाल एक पहाडी पर चढ़कर वहाँ के एक चौरहे की छवि निहार रहे थे तभी इसकी सूचना पाकर तहाव्वर खाँ ने उस पहाडी को आ घेरा। मुसलमान सैनिक पहाडी पर चढने लगे और छत्रसाल के तीर भी उन्हें नही रोक सके। किन्तु इधर बुंदेलो को मुसलमानो के इस आक्रमण की सूचना मिल गई थी, और वे लच्छे रावत तथा वागराज परिहार के नेतृत्व में पूरी तत्परता के साथ छत्रसाल की रक्षा को आ पहुँचे। उन्होंने मुसलमानो को पहाडी के ऊपर न चढने देने के लिए अपने प्राणो की बाजी लगा दी। हरीकृष्ण मिश्र, नदन छिपी और कृपाराम जैसे वीर नायको ने छत्रसाल के लिए अपने जीवन उत्सर्ग कर दिये। पर उनका बलिदान व्यर्थ नही गया। मुसलमानो के उस पहाडी पर चढने के सभी प्रयत्न विफल हुए और उधर अवसर मिलते ही छत्रसाल वहाँ से बच निकले।[५२]

तहाव्वर खाँ ने हमीरपुर के समीप छत्रसाल की सेना पर एक और आक्रमण किया, किंतु उसे फिर मुह की खाकर अपनी बची-खुची सेना लेकर पीछे भागना पडा।[५३]

नवम्बर १६७६ के लगभग छत्रसाल और उनके भाइयो ने एरच और उसके इर्द-गिर्द के गाँवो को लूटा और घरो में आग लगा दी जिससे त्रस्त होकर वहाँ के मुसलमान गाँवों से बाहर भाग गये। इसी प्रकार उन्होंने पनवारी[५४] को भी लूटा। उस समय एरच और

---

४८. छत्र० पृ० १०६।

४६. पन्ना० ४७। कालिंजर से दो मील दक्षिण में एक रामनगर है।

५०. वीरगढ़—कालिंजर से १३ मील दक्षिण-पूर्व।

५१. पटना—एक पटना वीरगढ़ से ३ मील दक्षिण पूर्व में है और दूसरा वीरगढ से ३ मील दक्षिण में है।

५२. पन्ना० ४७; छत्र० पृ० ११०-११२।

५३ पन्ना० ४८। तहाव्वर खाँ को मार्च १६७६ में अजमेर का फौजदार नियुक्त कर दिया गया था। (मा० आ० पृ० १०७)।

५४ पनवारी महोबा से २५ मील उत्तर-पश्चिम में है और एरच पनवारी से

पनवारी को परगनो की सुरक्षा का भार शुभकरण[५५] बुंदेले के पुत्रो के एक प्रतिनिधि पर था। पर उसने छत्रसाल के इन आक्रमणो को रोकने का दिखावा तक नही किया और अपनी निजी सुरक्षा करने में ही लगा रहा। इसी समय छत्रसाल ने धामोनी के गाँवो को भी लूटा। स्थानीय फौजदार सदरुद्दीन उन्हे रोकने में असफल रहा, जिसके फलस्वरूप औरगज़ेब ने उसका मनसब कम कर दिया।[५६]

४ मुग़ल अधीनता और पुन युद्धारम्भ

बुंदेलखड के मुगल फौजदारो और अन्य शाही कर्मचारियो की छत्रसाल के विरुद्ध लगातार असफलताओ से औरगज़ेब बहुत ही क्षुब्ध और क्रोधित हो उठा। इलाहाबाद का सूबेदार हिम्मत खाँ उस समय राजस्थान में शाहज़ादे अकबर के साथ था।[५७] औरगज़ेब ने उसे छत्रसाल का दमन करने के लिए अपनी सूबेदारी पर वापिस आने का आदेश भेजा। इन्दरखी[५८] के जमीदार पहाडसिंह गौड और ग्वालियर के सूबेदार अमानुल्ला खाँ को भी 'चपत के पुत्रों' के विद्रोह को शीघ्र ही कुचलने के हुक्म भेजे गये।[५९]

इन सारे मुगल सेनापतियो की इस सम्मिलित शक्ति का विरोध करने में अपनी असमर्थता को स्पष्टतया अनुभव कर छत्रसाल चिन्तित हो उठे। और तब कुछ काल के लिए मुगल अधीनता स्वीकार करने मे ही उन्होने अपनी कुशल समझी। तहाव्वर खाँ इस समय राजपूताने के पास मांडल में नियुक्त था।[६०] वहाँ सदेश भेजकर छत्रसाल ने उसके द्वारा सम्राट से क्षमा याचना की। तहाव्वर खाँ के साथ वे स्वय भी फगवाल में शाही डेरो में सम्राट औरगज़ेब के सम्मुख, दिसम्बर १३, १६७९ को उपस्थित हुए और एक मुहर नज़र की।[६१]

---

३४ मील उत्तर पश्चिम में है।

५५ दतिया के राजा शुभकरण का देहान्त औरगज़ेब के शासनकाल के २१वें वर्ष में अक्तूबर २६, १६७८ से पहिले ही हो चुका था। (मा० उ० २, पृ० ३१९)।

५६ अख० १७, १८, १९ नवम्बर, १६७९, जय० अख० और० २३ (१) पृ० १०२, १०४, ११४।

५७ मा० आ०, पृ० ११२।

५८ इन्दरखी—ग्वालियर से ४३ मील पूर्व।

५९ अख० १७, १९ और २६ नवम्बर, १६७९, जय० अख० और० २३ (१) पृ० १०२, ११३, १२८।

६० मा० आ०, पृ० ११२।

६१ जय० अख० और० २३ (१) पृ० १८५। फगवाल या भगवाल अजमेर और मांडल के बीच में स्थित कोई स्थान रहा होगा। औरगज़ेब अजमेर से ३० नवम्बर

परन्तु वहाँ से वापिस बुंदेलखड लौटते ही छत्रसाल ने फिर कालपी के पास लूट-पाट आरम्भ कर दी। तब अब्दुस समद नामक एक शाही अधिकारी ने, जो वही कहीं नियुक्त था, एक सेना लेकर शादीपुर [62] के निकट बुंदेलो का सामना किया और उन्हे पराजित कर भगा दिया। छत्रसाल का भाई अगद आहत हुआ और वह अपनी बची-खुची सेना के साथ युद्धक्षेत्र से भाग निकला। अब्दुस समद की इस सफलता से प्रसन्न होकर सम्राट ने उसके मनसब में १०० जात, और १०० सवारो की वृद्धि कर दी।[63]

परन्तु इस पराजय का छत्रसाल पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा और विभिन्न मुगल थानो पर उनके आक्रमण यथावत ही जारी रहे। तब फरवरी २६, १६८० को सिरोज के आस-पास के परगनो के फ़ौजदार रणदूल्हा खाँ, नरवर के फौजदार हिफजुल्ला खाँ और पहाडसिंह गौड को 'चपत के पुत्रों' का शीघ्र दमन करने के शाही आदेश दिये गये।[64] संभवत इन्ही आदेशो की सूचना पाकर छत्रसाल फिर कुछ समय के लिए निश्चेष्ट से हो गये। अगद ने भी खाँजहाँबहादुर की सेना में शामिल होने की इच्छा प्रकट की।[65] पर एक महीना भी न बीत पाया था कि छत्रसाल ने फिर अपने आक्रमण आरम्भ कर दिये। शेख अनवर नामक एक शाही पदाधिकारी ने खैरागढ [66] के निकट बुंदेलो से टक्कर ली जिसमें वह बुरी तरह पराजित हुआ और भागने का प्रयत्न करते समय बुंदेलो के हाथ बन्दी हो गया। शेख अनवर ने तब छत्रसाल को दो लाख रुपये देकर अपनी मुक्ति प्राप्त की। खैरागढ और निकटवर्ती परगनो पर भी छत्रसाल का अधिकार हो गया।[67]

१६७९ को रवाना होकर मांडल दिसम्बर में किसी समय पहुँचा था। मांडल में उसका मुकाम ३ जनवरी १६८० तक रहा। (मा० आ०, पृ० ११२, ११४)। फगवाल या भगवाल नामक स्थान नक्शे में नहीं दिया गया है।

६२. शादीपुर—परगना सुमेरपुर तहसील और जिला हमीरपुर।

६३. अख० २२ फरवरी, १६८०, जय० अख० औरं० २३ (२) पृ० ७।

६४ जय० अख० औरं० २३ (२) पृ० ३५।

६५. अख० ६ मार्च, १६८०, जय० अख०, औरं० २३ (२) पृ० ६६।

६६. खैरागढ़—जबलपुर से लगभग १३० मील दक्षिण में स्थित खैरागढ़ छत्रसाल के कार्यक्षेत्र से बहुत दूर था। यहाँ निर्दिष्ट खैरागढ़ शायद सूबा मालवा की गागरौन नामक सरकार का खैराबाद हो सकता है। (आईन० २, पृ० २२०)। जुलाई २६, १६९९ के अखबार के अनुसार गागरौन का परगना कोई सन् १६७९ ई० से बुंदेलो के अधिकार में था। (औरग० ५, पृ० ३९८ भी देखें।)

६७ पन्ना० ७६; छत्र० पृ० ११८-१२०। छत्रसाल के इस पत्र (पन्ना० ७६) के अनुसार यह युद्ध संवत् १७५९ या सन् १७०२ ई. में हुआ था जो विश्वसनीय नहीं है। इसी प्रकार शाहकुलीन से युद्ध की वर्ष भी छत्रसाल ने गलत दी है। उनके पत्र (पन्ना० ७९)

औरगजेव ने अप्रैल, १४ १६८० ई० को धामोनी के फौजदार सदरुद्दीन को छत्रसाल का विद्रोह दवाने के आदेश भेजे।[६८] सदरुद्दीन ने छत्रसाल के पास दूत भेजकर उन्हे तत्काल ही अपने मुग़ल विरोधी कार्य त्याग कर मुग़ल अधीनता स्वीकार कर लेने का सुझाव भेजा और ऐसा न करने पर उनके सारे अविकृत क्षेत्र पर भयकर आक्रमण करने की धमकी भी दी। लेकिन छत्रसाल ने इन धमकियो की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया और प्रत्युत्तर में स्वय मीर सदरुद्दीन से भी चौथ की माँग की। सदरुद्दीन ने अब क्रुद्ध होकर स्थानीय अन्य मुगल फौजदारो के सैनिक एकत्र कर एक वडी सेना तैयार की। इस सेना सहित वह तेजी से चुपचाप चिल्गा नौरगावाद [६९] की ओर वढा और अचानक छत्रसाल पर जा टूटा। इस आक्रमण से बुंदेले पहिले तो घवडा गये, किन्तु शीघ्र ही उन्होने सुव्यवस्थित होकर शत्रु का सामना किया। राममणि दौवा ने मुगल सेना के हरावल पर वेग से आक्रमण किया। नारायण-दास, अजीत राय, वालकृष्ण, गगाराम चौवे और मेघराज परिहार ने वीरतापूर्वक युद्ध कर मुगलो को विचलित कर दिया। छत्रसाल भी इस युद्ध में घायल हुए। सदरुद्दीन के कई प्रमुख सेनानायक मारे गये। इनमें एक वारगीदास भी था। सदरुद्दीन स्वय वदी हो गया। और चौय देने पर ही उसे छुटकारा मिल सका। इसी पराजय के कारण ही सभवत सदरुद्दीन को धामोनी की फौजदारी से हटाकर अफ़ासियाव ख़ाँ को वहाँ नियुक्त कर दिया गया।[७०]

इस युद्ध के वाद छत्रसाल चित्रकूट लौट आये। यहाँ हमीद ख़ाँ नामक एक अन्य मुग़ल सेनापति ने उन पर हमला किया। पर उसे पराजित होकर भाग जाना पडा।[७१] छत्रसाल ने अव कालपी और एरच के अन्तर्गत परगनो को लूटा और कोटरा [७२] पर घेरा डाल दिया।

के अनुसार शाहकुलीन के साय उनका युद्ध सवत् १७६१या सन् १७०४ई० में हुआ था,जवकि अखवारो में शाहकुलीन को जनवरी १६८४ ई०में ही वापिस वुला लेने का उल्लेख है। छत्र० में अनवर ख़ाँ के साय युद्ध का वर्णन सदरुद्दीन के युद्ध के पूर्व किया गया है। छत्र० में वर्णित सभी युद्ध लगभग १६७१ और १६८४ ई०के वीच में हुए थे और शाहकुलीन के युद्ध का वर्णन इन सवके वाद में किया गया है। इसलिए यहाँ छत्र० में दिया गया युद्धो का क्रम ही अपनाया गया है।

६८ जय० अख०, और० २३ (३) पृ० २०४।

६९ नौरगा नामक एक गाँव महोवा से ३५ मील उत्तर पश्चिम में और राठ से ७ मील है।

७० पन्ना० ७७, छत्र० पृ० १२१-१२७, अख० ४ सितम्वर १६८०, जय० अख० और० २३ (५) पृ० २१७, मा० आ० पृ० १२७।

७१ छत्र० पृ० १२८।

७२ कोटरा—एरच से १४ मील पूर्व।

कोटरा के फ़ौजदार सैयद लतीफ ने डटकर बुंदेलो का सामना किया, किन्तु अन्त में उसने विवश होकर बुंदेलो को एक वडी रकम देकर उनसे अपना पीछा छुडाया।[७३] आस-पास के कुछ जमीदारो ने भी मिलकर छत्रसाल का मुकावला करने के प्रयत्न किये। पर उन्हें भी वाध्य होकर अन्त में छत्रसाल की अवीनता स्वीकार करनी पडी। इन सफलताओ से छत्रसाल का साहस द्विगुणित हो गया। उन्होने तव भेलसा[७४] के प्रदेशो पर भी आक्रमण किया। अब्दुस समद उस समय शायद वहाँ का फौजदार था। वह बुंदेलो का प्रतिरोध करने आगे वढा परन्तु उसकी सेना अविक समय तक बुंदेलो के सन्मुख न ठहर सकी और उसके पैर उखड गये। तव बुंदेले फिर निकटवर्ती गांवो में लूट पाट करते हुए लौट आये।[७५]

शाही इलाको पर छत्रसाल के लगातार आक्रमणो से वहलोल खाँ नामक एक अन्य मुग़ल सेनापति का क्रोध भडक उठा और वह नौ हजार सैनिको की सेना के साथ धामोनी से मडिया दुह[७६] की ओर वढा। मडिया दुह की गढी में बुंदेलो की टुकडी का नायक जगत-सिंह बुंदेला था। जव मुसलमान मडियादुह से लगभग ८ मील पर थे, तव जगतसिंह के नेतृत्व में बुंदेलो ने उन पर अचानक छापा मारकर लगभग ४० सैनिको को मृत्यु के घाट उतार दिया। पर वहलोल खाँ आगे वढता ही गया। जगतसिंह और उसके सैनिको ने जमकर मुगल सेना का सामना किया। वहलोल खाँ सात दिन तक घेरा डाले पडा रहा। फिर भी उसे तनिक भी सफलता नही मिली और अन्त में उसने घेरा उठा लिया। परन्तु वह बुंदेलो को यो आसानी से छोडने वाला न था। उसने अव राजगढ[७७] पर आक्रमण कर उसका घेरा डाला। राजगढ पर हुए इस आक्रमण के समाचार सुनकर छत्रसाल तुरत ही एक सेना

---

७३ छत्रसाल के एक पत्र (पन्ना० ७७) के अनुसार लतीफ ने चार महीने तक युद्ध किया और अन्त में वह मारा गया। पर छत्र० (पृ० १२८) के अनुसार उसने सिर्फ दो माह युद्ध किया और अन्त में रुपया देकर बुंदेलों को लौटा दिया। दोनो ही उल्लेखों में लतीफ के विरोध के समय को बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया है। छत्र० में लतीफ की मृत्यु का कोई उल्लेख नहीं है। इस युद्ध के पश्चात् बुंदेलो को रुपया देकर उसके शेर अफग़न को मुक्त कराने का विवरण छत्र० (पृ० १४६) में मिलता है, अत इस समय सैयद लतीफ की मृत्यु का जो उल्लेख छत्रसाल ने किया है, वह ठीक नहीं जान पडता।

७४. भेलसा—भोपाल से ३० मील उत्तर-पूर्व।

७५. पन्ना० ७५, ७६; छत्र० पृ० १२८-१३७।

७६. मडियादुह—नक्शे में नहीं दिया गया है। एक मनियागढ़ राजगढ से लगभग २ मील दक्षिण में है। मडियादुह के घेरे के वाद वहलोल खाँ ने राजगढ पर आक्रमण किया था, इसलिए सभव हो सकता है कि मडियादुह वास्तव में मनियागढ़ ही हो।

७७. राजगढ—पन्ना से १४ मील पश्चिम।

लेकर घिरे हुए बुंदेलों की सहायतार्थ आ पहुँचे। बुंदेलो ने वहलोल खाँ की सेना को आगे और पीछे में घेर लिया था। वहलोल खाँ अब वहाँ अधिक समय तक न ठहर सका। उसके हरावल का सेनापति मारा गया और उसके अपने हाथी को लेकर उसका महाव्रत भी भाग निकला। तब भी वहलोल खाँ ने तीन दिन तक बुंदेलो का सामना किया। चौथे दिन वह अपनी बची-खुची सेना लेकर धामोनी लौट गया। इस युद्ध में बहलोल को कई घाव लगे थे जिनके कारण शीघ्र ही धामोनी में उसकी मृत्यु हो गई।[७८] बहलोल खाँ से इस युद्ध के पश्चात् ही नवम्बर १६८० के अन्त में छत्रसाल ने खिमलासा[७९] और गिरघल्ला[८०] को लूटा।[८१]

५ कुछ समय के लिए फिर शाही सेना में

धामोनी का नया फौजदार अफ़ासियाब खाँ भी छत्रसाल के विरुद्ध कोई महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त नही कर सका। इसलिए फरवरी १६८१ के लगभग उसे वापस दरबार में बुला लिया गया और धामोनी की फौजदारी अब इखलास खाँ को दे दी गयी। अपनी चतुराई और सैन्य शक्ति के प्रदर्शन द्वारा इखलास खाँ ने कुछ समय के लिए ही क्यो न हो, छत्रसाल को मुग़ल अधीनता स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। अगस्त १६८१ में छत्रसाल फिर दक्षिण में मुगल सेना में सम्मिलित हो गये थे और उन्हे खोला नामक धामोनी का एक परगना भी ६०० पैदल और ५०० सवार रखने की शर्त पर दिया गया था।[८२]

किन्तु कुछ समय बाद छत्रसाल ने फिर बुंदेलखड में लौटते ही मुगलो से शत्रुता ठान ली। जसो[८३] और सुहावल[८४] को लूटकर उन्होने वहाँ आग लगा दी। कुटरो को भी लूटने के पश्चात् छत्रसाल ने मार्च १६८२ के अन्त में परगना महोबा पर आक्रमण किया। मौधा[८५] को बुंदेलो की दया पर छोडकर वहाँ के आमिल ने भयातुर होकर महोबा के किले

---

७८. छत्र० पृ० १३८-१४०, पन्ना० ७६।

७९ खिमलासा—ललितपुर से ३२ मील दक्षिण।

८०. गिरघल्ला—एक गरहोला (गढोला) खिमलासा से १२ मील दक्षिण में है। गिरघल्ला नामक कोई स्थान मानचित्र में नहीं मिलता।

८१ अख० १५ दिसम्बर १६८०, जय० अख० और० २४ (१), पृ० १५३।

८२ अख० २० अगस्त १६८१, रायल० अख० और० २०, २४-२५, पृ० १२१, मा० आ० पृ० १२७।

८३ जसो—पन्ना से २५ मील पूर्व।

८४ सुहावल—जसो से १७ मील उत्तर पूर्व।

८५ मौधा—महोबा से १२ मील उत्तर-पश्चिम

में शरण ली। छत्रसाल मौधा को लूटकर सिहुँडा[८६] की ओर वढे। इस समय सिहुँडा दिलेर खाँ के प्रतिनिधि मुराद खाँ के अधिकार में था। मुराद खाँ ने अपने अधीन प्रदेश की लूट-पाट रोकने के लिए बुंदेलो का सामना किया, परन्तु वह मारा गया और बुंदेलो ने सिहुँडा तथा समीप के गाँवो की मनमानी लूट की।[८७]

कुछ ही दिनो वाद छत्रसाल ने फिर धामोनी के आस-पास आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। वहाँ के फौजदार इखलास खाँ ने बुंदेलो से गढाकोटा[८८] में युद्ध किया। इस युद्ध में इखलासखाँ मारा गया और गढाकोटा के किले पर छत्रसाल का अधिकार हो गया। इस किले को अपना मुख्य केन्द्र बनाकर वे अव अक्सर धामोनी के प्रदेशो पर आक्रमण करने लगे।[८९]

इखलास खाँ की मृत्यु होने पर शमशेर खाँ को धामोनी का फौजदार नियुक्त किया गया। किन्तु शमशेर खाँ सितम्वर १६८२ में ही धामोनी पहुँच सका। इस बीच में धामोनी पर छत्रसाल के आक्रमण वरावर होते रहे। जून १६८२ के आरम्भ में छत्रसाल ने धामोनी के इलाको पर वडे वेग से आक्रमण किया। नये फौजदार शमशेर खाँ की अनुपस्थिति मे वहाँ के वाकियानवीस मुहम्मद काज़िम ने बुंदेलो का सफलतापूर्वक सामना किया और एक युद्ध में उसने बुंदेलो को पराजित कर पीछे खदेड दिया। छत्रसाल युद्ध में आहत हुए और उन्हे पीछे लौटने को वाध्य होना पडा।[९०]

धामोनी के वाकियानवीस काज़िम द्वारा पराजित होने पर भी धामोनी पर छत्रसाल के आक्रमण यथावत ही चलते रहे। रानगढ[९१], नरसिंहगढ[९२] आदि पर भी बुंदेलो का अधिकार हो गया और वे अव धामोनी के निकट के प्रदेश को भी त्रस्त करने लगे। धामोनी के किले को जीतने के लिए छत्रसाल अव अधिक प्रयत्नशील हो उठे थे। पर मुहम्मद काज़िम ने भी साहस न छोडा। वह बुंदेलों का सामना करने के लिए तैयारियाँ करता रहा

---

८६ सिहुँडा—वादा से १२ मील दक्षिण।

८७ अख० १२ अप्रैल १६८२, जय० अख० औरं० २५, पृ० २३५; पन्ना० ७६, छत्र० पृ० १४१-१४३।

८८ गढ़ाकोटा—सागर से २८ मील पूर्व।

८९ अख० १० जुलाई १६८२ और २८ जनवरी १६८३; जय० अख० औरं० २५ पृ० ४४९ और २६ (२) पृ० १७३।

९०. अख० १० जुलाई, २, ८, १२ सितम्वर और २० जून १६८२, जय० अख० औरं० २५. पृ० ४००, ४४९ तथा २६ (१), पृ० ३२, ३३, ५५, ६५।

९१ रानगढ़—वादा से १८ मील दक्षिण।

९२. नरसिंहगढ—संभवत नरसिंहपुर जो रानगढ़ से लगभग १० मील दक्षिण में है।

और आवश्यक अस्त्र तथा युद्ध सामग्री खरीदने के लिए उसने चार हजार रुपये में अपने निजी आभूषण तर्कखवक रख दिये। इस प्रकार काज़िम ने अपनी शक्ति बढाकर बुंदेलो को धामोनी नगर मे घुसने नही दिया और किले पर अधिकार करने के उनके कई प्रयत्नो को भी विफल कर दिया। इन छुटपुट युद्धो में काज़िम के कोई १५० सैनिक काम आये।[९३]

इसी समय लगभग जुलाई १६८२ में छत्रसाल ने कालिंजर[९४] के समीप के गाँवो और कस्बो पर आक्रमण किया। कालिंजर का किलेदार मुहम्मद अफज़ल बुंदेलो को निकालने के लिए अपनी सेना सहित आगे बढा। युद्ध में बुंदेलो के तीन नायक काम आये। मुहम्मद अफज़ल के भी दो सरदार मारे गये। अन्त में बुंदेलो को अपने प्रदेश से निकाल कर अफज़ल ने वहाँ शाति स्थापित की। उसकी इस सफलता से प्रसन्न होकर सम्राट ने अगस्त ५, १६८२ को उसके मनसब में १०० घुडसवार और बढा दिये।[९५] अब अगस्त ६, १६८२ के दिन कमालत खाँ को एरच और पनवारी का फौजदार बनाकर अजमेर से बुंदेलखड भेजा गया और उसे छत्रसाल एव उनके भाइयो का दमन कठोरता से करने के आदेश दिये गये।[९६] इसी बीच मे छत्रसाल ने पित्तिहगढ[९७] (परगना नसरतगढ) के जमीदार कल्याण गौतम के साथ मिलकर गुना[९८] पर अधिकार कर लिया। फिर उन्होने दमोह[९९] के किले का घेरा डाला। इस आक्रमण मे चपतराय के भतीजे जगतसिह को घाव लगे। घोर युद्ध के पश्चात् दमोह के किले पर बुंदेलो का अधिकार हो गया और छत्रसाल ने अपने एक विश्वसनीय अनुचर को वहाँ का किलेदार नियुक्त कर दिया। जब औरगजेब को ये समाचार ज्ञात हुए तो उसने धामोनी के तब ही नियुक्त फौजदार शमशेर खाँ को आदेश भेजे कि वह जल्दी ही अपना नया पद सभाल कर विद्रोहियो को कुचलने के लिए प्रयत्नशील हो। शमशेर खाँ अब तेजी से १५०० घुडसवार और २००० पैदल सेना लेकर ग्वालियर सिरोज होता हुआ धामोनी आ पहुँचा।[१००]

---

९३ अख० १० जुलाई १६८२, जय० अख० और० २५, पृ० ४४६।

९४ कालिंजर—बादा से ३३ मील दक्षिण।

९५ जय० अख० और० २५, पृ० ५१५।

९६ वही, पृ० ५५४।

९७ पित्तिहगढ—सभवत पथरगढ जो गुना से २५ मील दक्षिण पूर्व और धामोनी से ६ मील पूर्व में है।

९८ गुना—धामोनी से २० मील उत्तर पश्चिम।

९९ दमोह—सागर से ४६ मील पूर्व। दमोह का किला एक बार पहले भी बुंदेलो के हाथ में आ गया था और तब इख़लास खाँ ने बुंदेलो को निकाल कर पुन अपना अधिकार स्थापित किया था। (जय० अख० और० २६ (१), पृ० ३२, ३३)।

१०० अख० ७ और ८ सितम्बर १६८२, जय० अख० और० २६ (१),

इन लगातार युद्धो में छत्रसाल की भी कम सैनिक क्षति नही हुई थी। उन्हे फिर से सैन्य सगठित करने के लिए शाति की आवश्यकता अनुभव होने लगी। अत छत्रसाल ने एक वार फिर मुग़ल अधीनता स्वीकार कर ली और दक्षिण जाकर वे खाँ जहाँ के अधीन शाही सेना में सम्मिलित हो गये। अक्तूबर ३०, १६८२ को वे शाही दरवार में उपस्थित हुए और उन्होंने सम्राट को अठारह अशर्फियाँ नजर की। दूसरे दिन उनके पहिले वाले २५० सवार के मनसव में २० सवार और वढा दिये गये। इस वार छत्रसाल दो माह से भी अधिक दक्षिण में खाँ जहाँ की सेना में रहे। उनके मनसव में दो वार और वृद्धि हुई। पहिले उनका मनसव ५ सदी जात और ४०० सवार का कर दिया गया, और फिर उनकी प्रार्थना पर दिसम्बर १७, १६८२ को उसमे ५० सवार और वढा दिये गये।[१०१]

इधर बुंदेलखड में छत्रसाल की अनुपस्थिति से अवसर पाकर धामोनी का फौजदार शमशेर खाँ निकटवर्ती प्रदेशो को बुंदेलो के चगुल से मुक्त करने के लिए और भी अधिक प्रयत्नशील हो उठा। वह ससैन्य गढाकोटा की ओर वढा और घोर युद्ध के पश्चात् उसने बुंदेलो को वहाँ से निकाल कर उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इस युद्ध में शमशेर खाँ के १०० घुडसवार काम आये। शमशेर खाँ ने तव गढाकोटा के आस पास के गाँवो से भी बुंदेलो को निकाल वाहर कर उनमें अपने थाने वैठाये। अव उसने छतरगढ के किले पर आक्रमण किया। इस किले को छत्रसाल ने वनवाया था। छतरगढ के घेरे में २०० बुंदेले मारे गये और ६० मुग़ल सैनिक खेत रहे। अन्त मे छतरगढ के किले पर भी शमशेर खाँ का अधिकार हो गया और बुंदेलो के उत्पात लगभग वन्द से हो गये।[१०२]

परन्तु उपर्युक्त घटनाओ के कुछ समय पश्चात् ही छत्रसाल दक्षिण मे वापस लौटकर बुंदेलखड पहुँच गये जिससे बुंदेलो में फिर नया उत्साह भर गया और अव दुगने जोश से उनके आक्रमण शाही प्रदेशो पर होने लगे। छत्रसाल के नेतृत्व में उन्होने जलालपुर[१०३]

पृ० ३२, ३३, ५५।

१०१ जय० अख० औरं० २६ (१) पृ० २१८, २२१ और ३६२।

इन और इनके पहिले के कुछ अखवारो से यह स्पष्ट है कि १६७० और १७०७ क बीच के वर्षो में छत्रसाल कई वार शाही सेना में सम्मिलित हुए थे। समकालीन अखवारो से प्राप्त इस विश्वसनीय जानकारी के आधार पर यदुनाथ सरकार का यह कथन कि "छत्रसाल बुंदेला ने १६७० और १७०४ के वीच में कभी सम्राट औरगजेव की सेवा स्वीकार नहीं की" मान्य नहीं रह गया है। औरंग० ५, पृ० ३६१ पाद टिप्पणी।

१०२. अख० २८ जनवरी और ८ फरवरी १६८३; जय० अख० औरं० २६ (२) पृ० १७३ और २०१।

छतरगढ सभवत नौगाँव से १२ मील दक्षिण पूर्व में स्थित छतरपुर ही रहा होगा।

१०३ जलालपुर—वादा से २५ मील उत्तर पूर्व।

मौधा, मर्टौंघ[१०४] आदि को लूट डाला। तब शेर अफग़न[१०५] नामक एक स्थानीय मुग़ल फौजदार ने मर्टौंघ के निकट छत्रसाल को युद्ध में हराकर पीछे खदेड दिया। शेर अफगन ने अब छत्रसाल के मुख्य सैनिक अड्डे मऊ पर भी चढाई की। किन्तु यहाँ छत्रसाल को पराजित करना उतना सुगम न था। छत्रसाल ने शेर अफगन के साथ वहाँ भयकर युद्ध किया और उसकी सेना को तहस-नहस कर उसे बन्दी कर लिया। तब सैयद लतीफ नामक एक अन्य मुग़ल फौजदार ने चौथ और मुक्तिधन देकर उसे मुक्ति दिलायी।[१०६]

अब दिसम्बर १६८३ के लगभग राठ और एरच का फौजदार शाहकुलीन खाँ छत्रसाल का दमन करने को कटिबद्ध हुआ। वह एक बडी सेना सहित मऊ की ओर बढा। उसकी सेना के हरावली दस्ते की कमान एक नद नामक नायक के हाथ में थी। प्रारम्भिक छोटी-छोटी मुठभेडो में छत्रसाल की बडी क्षति हुई और उनके कोई ५०० सैनिक मारे गये। खुले मैदान में युद्ध करना घातक समझकर अब छत्रसाल ने छिपकर धोखे से शत्रु पर अचानक आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। इस प्रकार सात दिन तक युद्ध चलता रहा। एक दिन आधी रात को छत्रसाल ने अपने सैनिको के मोर्चे आसपास की पहाडियो के महत्वपूर्ण स्थानो पर जमा दिये। दूसरे दिन सवेरे शाहकुलीन के सैनिक जब इन पहाडियो पर चढने लगे और वे लगभग आधी चढाई पार कर चुके, तब बुंदेलो ने उन पर गोलियो और तीरो की तेज बौछार की जिससे उनमें से बहुत से मारे गये और अनेको घायल हुए। नद भी घायल होकर गिर पडा। मुगल सेना में भगदड पड गई। भागती हुई शत्रु-सेना पर अब बुंदेलो ने आक्रमण कर उसे पूर्णरूप से विध्वस्त कर दिया। शाहकुलीन बंदी हो गया और बाद में धन मिलने पर ही उसे छोडा गया।[१०७] दक्षिण में औरगज़ेब को जब शाह-

---

१०४ मर्टौंघ—मौधा से १६ मील दक्षिण।

१०५ शेर अफग़न छत्र० (पृ० १४६) के अनुसार तब पडवारी (तहसील और परगना जिला जालौन) में नियुक्त था। शाहकुलीन को हटाकर जनवरी १३, १६८४ को शेर अफग़न को एरच और राठ का भी फौजदार नियुक्त किये जाने का उल्लेख इसी तारीख के अखबार में मिलता है। इस पद पर वह अप्रैल २६, १६८५ तक रहा। (जय० अख़० औरं० २७, पृ० ४६ औरं० २८ (२), पृ० ३२३)।

१०६ पन्ना० ७८, छत्र० पृ० १४६-१४६। जनवरी १३, १६८४ के अखबार में एक सैयद अब्दुल लतीफ का उल्लेख आया है जिसने शाहकुलीन के स्थान पर एरच और राठ का फौजदार बनाये जाने की प्रार्थना की थी। पर यह फौजदारी शेर अफगन को दे दी गयी थी। शेर अफगन को मुक्ति दिलाने वाला सैयद लतीफ यही अब्दुल लतीफ हो सकता है।

१०७ पन्ना० ७८, ७६, छत्र० पृ० १४६-५०। छत्रसाल के पत्र (पन्ना० ७८) के अनुसार शाहकुलीन ने सवा लाख रुपया देकर मुक्ति पाई थी, जबकि छत्र०

कुलीन की इस पराजय के समाचार विदित हुए तो उसने जनवरी १३, १६८४ को शाहकुलीन का मनसव कम कर उसे दरवार में वुला भेजा और शेर अफगान को एरच तथा राठ की फौजदारी सभालने के आदेश भेजे।[१०८]

६ विद्रोह का अन्तिम चरण और अन्तत शाही मनसव की प्राप्ति

जनवरी १६८४ से लेकर अप्रैल १६६६ के बीच के समय में छत्रसाल सवधी इने गिने उल्लेख ही मुगल दरवार के अखवारो में उपलव्ध हैं। इन वर्षों में औरगज़ेव का सारा ध्यान दक्षिण में गोलकुडा एव वीजापुर के राज्यो तथा मराठो की सत्ता का अत करने में लगा रहा और इसलिए छत्रसाल के दमन के लिये आवश्यक यत्नो में वहुत कुछ शिथिलता आ गई। छत्रसाल और उनके भाइयो ने मुग़ल सम्राट की दक्षिण में इस अत्याधिक व्यस्तता से लाभ उठाकर निकटवर्ती शाही परगनो को उद्ध्वस्त कर डाला। धामोनी के आसपास के गाँवों को वार-वार लूटा गया और राठ,[१०९] पनवारी,[११०] मुगावली[१११] मुस्किरा[११२] आदि छोटे छोटे कस्वो और जागीरो पर भी छत्रसाल ने अधिकार जमा लिया। स्थानीय मुग़ल फौजदार इतने आतकित हो गये थे कि अपने अतर्गत प्रदेशो को छत्रसाल के आक्रमणो से सुरक्षित रखने के लिये अव वे स्वय ही उन्हे चौथ देने लगे थे। छत्रसाल का कार्यक्षेत्र अव भेलसा और उज्जैन तक फैल गया था। उनके साधनो में भी अव तेजी से वृद्धि हो रही थी और लूट, चौथ तथा नजरानो द्वारा वहुत वडी धनराशि उनके कोषो में सचित हो गई थी।

सन् १६८५ के प्रारम्भिक महीनो में इन्दरखी का जमीदार पहाड़सिह गौड विद्रोही हो गया। वह उस समय शाहावाद[११३] का फौजदार था। पहाड़सिह गौड ने मालवा में लूटपाट आरम्भ कर दी और अक्तूवर १६८५ ई० में उज्जैन के निकट शाही सेनाओं से एक मुठभेड में वह मारा गया।[११४] तदनन्तर उसके पुत्र भगवतसिह और देवीसिह विद्रोही वने रहे और मुग़ल साम्राज्य के विरुद्ध युद्धों में वे छत्रसाल के सहयोगी वन

(पृ० १५०) में शाहकुलीन के चौथ के अतिरिक्त केवल आठ हजार की रकम देने का उल्लेख है।

१०८. जय० अख० और० २७, पृ० ४६।

१०६ राठ—महोवा से २८ मील उत्तर पश्चिम।

११० पनवारी—महोवा से २६ मील उत्तर पश्चिम।

१११. मुंगावली—ललितपुर से २८ मील दक्षिण पश्चिम।

११२. मुस्किरा—वादा से २६ मील उत्तर।

११३. शाहावाद—सिरोज से ६० मील उत्तर।

११४. मा० आ०, पृ० १६३; औरंग० ५, पृ० ३०३-३०८।

गये ।[११५] उनकी सयुक्त सेना ने कालपी के प्रदेश तक लूटपाट की । भेलसा और धामोनी का फौजदार पुरदिल खाँ शेर अफगन के स्थानान्तरित होने पर इस समय एरच का भी फौजदार था । वह पहाडसिंह गौड के लडको का सामना करने को आया । पर युद्ध मे उसे एक गोली लगने से उसकी मृत्यु हो गई । पहाडसिंह गौड के लडको और छत्रसाल ने मिलकर अब एरच के इलाको को भी लूट डाला । अक्तूबर १६८५ ई० मे पुरदिल खाँ के स्थान पर गैरत खाँ नियुक्त हुआ और विद्रोहियो को शीघ्र कुचलने का उसे आदेश दिया गया ।[११६] पहाडसिंह का एक पुत्र भगवतसिंह आतरी[११७] के पास मार्च १६८६ ई० में मुगलो से युद्ध करता मारा गया । किंतु उसका दूसरा पुत्र देवीसिंह विद्रोही बना तब भी छत्रसाल के साथ सहयोग करता रहा ।[११८]

अगली कुछ वर्षो मे छत्रसाल ने अपने अधिकार क्षेत्र में निकटवर्ती प्रदेशो को भी हस्तगत कर अपनी शक्ति और बढाली । उन्होने राठ, पनवारी, हमीरपुर, एरच और धामोनी पर बार-बार आक्रमण कर वहाँ के गाँवो और कस्बो को अपने बढते हुए राज्य मे मिला लिया । कालिंजर के किले पर भी उन्होंने अधिकार कर माधाता चौबे को वहाँ का किलेदार नियुक्त किया ।[११९] जुलाई १६८८ ई० के लगभग धामोनी के फौजदार दिलावर खाँ ने छत्रसाल के विरुद्ध चढाई की और एक युद्ध में उन्हे पराजित भी किया ।[१२०] परन्तु इस विजय का कोई विशेष स्थायी परिणाम नही हुआ ।

अगस्त १६८८ ई० और १६९६ के बीच के वर्षों में ही कभी छत्रसाल द्वारा धामोनी के किले पर आक्रमण किये जाने के विवरण छत्रसाल के पत्रो में मिलते हैं । धामोनी पर अपने प्रथम आक्रमण में छत्रसाल विशेष कुछ नही कर सके, प्रत्युत अपने बहुत से सैनिको की क्षति उठाकर उन्हे वापस लौटना पडा । पर उसके कुछ ही समय बाद उन्होने फिर धामोनी के किले को जा घेरा । घिरे हुए शाही सैनिक बडी वीरता से लडे, किन्तु इस बार उनकी कुछ न चली और अत में बुंदेलो ने धामोनी के किले पर अधिकार कर लिया । क़िले

---

११५ ईश्वर० पृ० ११९ (बी), औरग० ५, पृ० ३०५-३०७ ।

११६ अख़० २९ अप्रेल, २४ अक्तूबर, २६ नवम्बर १६८५, जय० अख़० और० २८ (२), पृ० ३२३ और २९, पृ० ३१६ ।

११७ आतरी—ग्वालियर से १२ मील दक्षिण ।

११८ ईश्वर० पृ० ११९ (बी), औरग ५, पृ० ३०६, ३०७ ।

११९ माधाता चौबे के वशजो के अधिकार में कालिंजर १९वीं सदी के प्रारम्भ तक रहा और अभी-अभी तक कालिंजर के पडोस के गाँवो में उनकी जागीरें थीं । (गोरे०, पृ० १९३, २९९-३०२, पाग्सन०, पृ० १२२)

१२० अख़० ९ अगस्त १६८८, जय० अख़० और० २८-३३, प० ३७ ।

में संग्रहीत बहुत सी युद्ध सामग्री उनके हाथ लगी।[121] किंतु अधिक समय तक धामोनी का किला छत्रसाल के अधिकार में नही रह सका। सन १६६६ ई० के प्रारम्भिक महीनों में सैफ शिकन खाँ को धामोनी का फौजदार नियुक्त किये जाने के उल्लेख से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मुगलों ने फिर इस किले पर अधिकार कर लिया था।[122]

छत्रसाल की मुगल विरोधी कार्यवाहियाँ यथावत ही चलती रही। अत मार्च १६६६ ई० में राणोद[123] के फौजदार शेर अफगन ने उनके विरुद्ध चढाई की और छत्रसाल के सैनिक केन्द्र सूरजमऊ[124] तक वह जा पहुँचा। यहाँ युद्ध में बुंदेले बुरी तरह पराजित हुए और छत्रसाल ने भागकर किले में शरण ली। इस विजय से शेर अफग़न का साहस बढ गया। उसने मऊ के किले को घेर लिया और कुछ समय तक घेरा डाले पडा रहा। परतु छत्रसाल किसी प्रकार उस किले से भाग निकले। इस घेरे में शेर अफगन के ७०० सैनिक काम आये। इस समय शेर अफगन की सेना में ६००० घुडसवार और ८००० पैदल सैनिक थे। इतने बडे सैनिक दल को बनाये रखने में शेर अफग़न का बहुत-सा निजी द्रव्य भी व्यय हो गया था और आगे उन सबका भार उठाना उसके लिये सभव नही रहा था। इसलिये कुछ समय बाद विवश होकर शेर अफग़न ने घेरा उठा लिया और कस्बे को लूटकर ही उसे सतोष कर लेना पडा। शेर अफगन को उसकी सेवाओ के लिए एक तलवार और खिल-अत से पुरस्कृत किया गया एव जीते हुए प्रदेश में उसे इटावा के फौजदार खैरन्देश खाँ के साथ बराबर भाग मिला। शेर अफगन के भतीजे मुहम्मद अली का मनसब भी दो सदी से बढाकर ढाई सदी कर दिया गया।[125]

---

१२१ पन्ना० ७२। इस पत्र के अतिशयोक्ति पूर्ण विवरण को छोडते हुए उसमें उल्लिखित मुख्य घटनाक्रम को ही यहा अपनाया गया है।

धामोनी के क़िले पर छत्रसाल का अधिकार कभी अधिक काल तक नहीं रहा। उस पर पुन अधिकार करने के लिये मुग़ल फौजदार और सेना नायक सयत्न रहते थे और इसी उद्देश्य से धामोनी की फौजदारी पर भी समय-समय पर नियुक्तिया की जातीं थीं, जिनका उल्लेख शाही अखबारो में मिलता है।

१२२ मा० आ०, पृ० २३०।

१२३ राणोद—सिरोज से ७० मील उत्तर।

१२४. सूरजमऊ सभवत मऊ सहानिया—नौगांव से ४ मील दक्षिण।

१२५ अख० २०, २१, २५ अप्रेल १६६६, रायल० अख० औरं० ४३, पृ० ५, ६, ८, औरंग० ५, पृ० ३६८।

खैरन्देश खाँ ने इस आक्रमण में शेर अफगन की कोई सहायता नहीं की थी, अतएव उसके मनसब में से २०० जात और ३०० सवार कम कर दिये गये। पर फिर भी उसे विजित प्रदेश में से आधा भाग दिया गया।

इन घटनाओ के कुछ ही समय वाद छत्रमुकुट नामक एक बुंदेला छत्रसाल का पक्ष छोडकर मुग़लो से जा मिला।[१२६] इसी वीच में शेर अफ़ग़न ने परगना गागरौन (मालवा) भी छत्रसाल के पुत्र गरीवदास से छीन लिया। छत्रसाल के अधिकार में यह परगना पिछले कोई २० वर्ष से था। शेर अफगन को इन सफलताओ के लिए बहुत पुरस्कृत किया गया। उसे राणोद तथा समीप के प्रदेश का फौजदार वना दिया गया और बहुत सी नकद रकम के साथ परगना गागरौन भी उसे दे दिया गया।[१२७]

अगले वर्ष अप्रेल २४, १७०० ई० को शेर अफगन ने झुना बरना के निकट छत्रसाल पर आक्रमण किया। इस मुठभेड में ७०० बुंदेले मारे गये और मुगलो के भी कई सरदार काम आये। बुंदेलो का साहस जाता रहा और स्वय छत्रसाल भी घायल होकर भाग निकले। परन्तु इस युद्ध में वास्तविक विजय छत्रसाल की ही हुई। युद्ध में एक गोली लग जाने से शेर अफगन छत्रसाल के हाथ में पड गया और भागते समय वे उसे भी अपने साथ उठवा ले गये। शेर अफगन की हालत विगडती देखकर छत्रसाल ने उसके पुत्र जाफर अली को लिखा, "तुम्हारे पिता मे वहुत ही कम जीवन शेष है। उसे वापिस ले जाने के लिए अपने मेवक भेज दो।" पर शेर अफगन को ले जाने के लिए जाफर अली के सैनिक आये तव तक वह दूसरे लोक को प्रयाण कर चुका था।[१२८]

इस घटना के कुछ ही वाद देवीसिह धंधेरा ने शाहावाद के किले पर अ[illegible]कार कर लिया। यह किला शेर अफगन के एक पुत्र अली कुली के अधिकार में था, पर वह तव इसे छोडकर कालावाग[१२९] चला गया था। इस क़िले पर ग्वालियर के फौजदार जाँनिसार ख़ाँ ने अक्तूवर १७०० ई० में फिर अधिकार कर लिया।[१३०]

शेर अफगन की मृत्यु के वाद 'चपत के पुत्रों' का दमन करने का भार इटावा के फौजदार खैरन्देश ख़ाँ को सौंपा गया। अप्रेल १७०१ में खैरन्देश खां ने कालिंजर पर आक्रमण किया। इस किले में उस समय छत्रसाल के कुटुम्बी-जन रह रहे थे। खैरन्देश ख़ाँ

---

१२६ अख़० २८ जन १६९९, रायल० अख़० और० ४३, पृ० ११७, औरग० ५, पृ० ३९८।

१२७ अख़० २६ जुलाई १६९९, रायल अख़० और० ४३, पृ० १७५, औरग० ५, पृ० ३९८।

१२८ अख़० १२, २१ मई १७००, रायल० अख़० और० ४४, पृ० २३५, २४२। औरग० ५, पृ० ३९८-९९।

१२९ कालावाग—सिरोंज से ५२ मील उत्तर।

१३० अख़० ११ जन, २३ अक्तूवर १७००, रायल० अख़० और० ४४, पृ० २५३, २५४, ३४३, औरग० ५, पृ० ३९९।

के इरादे कालिंजर पर अधिकार कर छत्रसाल के सबंधियो को बदी कर लेने के थे। पर वह अपने प्रयत्नो में असफल रहा। इसी समय उसे धामोनी का भी फ़ौजदार बना दिया गया।[१३१]

अक्तूबर १७०३ ई० के लगभग छत्रसाल ने नीमा जी सिंधिया को मालवा पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। पर फिरोज़ जग ने मराठो को सिरोज के निकट परास्त कर दिया और इसलिए मराठो के साथ मिलकर मालवा में लूटपाट करने की छत्रसाल की योजनाए विफल ही रही। फिरोज़ जग की इच्छा थी कि वह स्वय छत्रसाल के विरुद्ध एक चढाई करे, परन्तु धामोनी के निकट मराठो से छुट पुट मुठभेडो में हुई सैनिक क्षति और तदनतर वर्षा ऋतु के समीप आ जाने के कारण वह अपने विचारो को कार्यान्वित नही कर सका।[१३२]

औरगज़ेब के राज्यकाल के अतिम वर्ष में नवम्बर-दिसम्बर १७०६ ई० के लगभग छत्रसाल ने फिरोज़ जग के द्वारा सम्राट् से क्षमा याचना कर शाही सेना में सम्मिलित होने की इच्छा व्यक्त की। फिरोज़ जग ने औरगज़ेब से आग्रह किया कि छत्रसाल को राजा की उपाधि और पाँच हज़ार का मनसब तथा उनके पुत्र हिरदेनारायण (हिरदेसाह) और पदम सिंह को भी उचित मनसब दिये जावें। औरगज़ेब ने फिरोज़ जग के सुझावो को स्वीकार कर जनवरी १, १७०७ के दिन छत्रसाल को राजा की उपाधि और चार हज़ार का मनसब प्रदान किया। उनके पुत्र हिरदेसाह और पदम सिंह को भी क्रमश १ हज़ार ५ सदी ज़ात १००० सवार और १ हज़ार ५ सदी ज़ात ५०० सवार के मनसब दिये गये।[१३३] इसी समय छत्रसाल स्वय दक्षिण गये और शाही दरबार में पहुँचकर वे

---

१३१. अख़० ४ अप्रेल १७०१, रतलाम राज्यवश से सबधित जय० अख़० की जिल्द पृ० ६६, मा० आ० पृ० २६५।

१३२ भीम० २, पृ० १४८ (बी), औरग० ५, पृ० ३८३-८५, मालवा०, प० ६४-६५।

१३३. जय० अख़० औरं० ४०-५०, पृ० १८७ तथा ५०-५१, पृ० १३३-१३४; भीम० २, पृ० १५७ (बी)।

कोई सुनिश्चित आधार के अभाव में डा० यदुनाथ सरकार ने छत्रसाल के यह मनसब पाने का समय सन् १७०५ ई० निश्चित किया था। परन्तु जनवरी १, १७०७ के अख़बार से अब यह ज्ञात हो गया है कि छत्रसाल और उनके पुत्रों को ये मनसब उसी दिन प्रदान किये गये थे।

(औरग० ५, पृ० ३९९ देखें)

औरगजेब की सेवा में उपस्थित हुए। तदनन्तर औरगजेब की मृत्यु तक वहीं रहकर वे फिर स्वदेश लौट आये।[134]

---

१३४ मा० उ० २, पृ० ५१२। छत्रसाल ने भी अपने एक पत्र (पन्ना० ५५) में स्वयं के संवत १७४० या सन् १६८३ ई० के कुछ आगे-पीछे दक्षिण जाने और शाही मनसब पाने का उल्लेख किया है। इस पत्र में दिया गया संवत अवश्य ही गलत है।

मा० उ० (२, पृ० ५१२) और मा० आ० (पृ० २३८, २५६) में छत्रसाल के सतारा के दुर्गाध्यक्ष बनने तथा जुल्फिकार खाँ की सेना में शामिल होने के उल्लेख गलत है। यहां गल्ती से छत्रसाल राठौर को छत्रसाल बुंदेला समझ लिया गया है।

छत्रसाल और औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी : ४ :

१. छत्रसाल और बहादुरशाह

सम्राट् औरगज़ेब की मृत्यु (फरवरी २०, १७०७) के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियो में जो सत्ता हस्तगत करने के लिए युद्ध हुए उनमें छत्रसाल ने किसी का भी पक्ष नही लिया। किंतु उनके राज्य की दक्षिणी पश्चिमी सीमायें सूबा मालवा के एकदम समीप थी। मालवा पर इस समय शाह्ज़ादा आज़म का आधिपत्य था। वह अहमदनगर में अपने आपको सम्राट् घोषित कर चुका था। इसलिए छत्रसाल ने आज़म से शत्रुता मोल लेना उचित न समझ उसके पक्ष का समर्थन सा करते हुए एक सदेश उसे भेजा। शाह्ज़ादा आज़म ने इससे प्रसन्न होकर छत्रसाल को एक फरमान भेजकर उन्हें ५ हजार ज़ात और ५ हजार सवार का मनसबदार बना दिया और पनवारी तथा अन्य निकटवर्ती प्रदेशो पर उनका आधिपत्य स्वीकार कर लिया। उसने छत्रसाल को तुरत सैन्य सग्रह कर मालवा की ओर बढने का आदेश भी दिया। और इधर इसी आशय का एक फरमान आज़म के विरोधी बहादुरशाह ने भी छत्रसाल को भेजा, जिसमें उन्हें तुरत ही अपने पुत्र को सैन्य सहित शाह्ज़ादा मुइज़्ज़ुद्दीन की सहायता के लिए रवाना करने के लिए कहा गया था। पर छत्रसाल ने शायद दोनो शाह्ज़ादो के आदेशो की ओर कोई ध्यान नही दिया।[1]

जाजऊ के युद्ध (जून ८, १७०७) के पश्चात् छत्रसाल ने बहादुरशाह की अधीनता स्वीकार कर लेने में ही कुशल समझी और मुनीम खाँ खानखाना को मध्यस्थ बना कर सम्राट् से क्षमा प्राप्त कर ली। बहादुरशाह ने औरगज़ेब के समय में मिली उनकी जागीरो और मनसब को यथावत् ही रखा और उन्हें दरबार में शीघ्र उपस्थित होने के आदेश भेजे। पर छत्रसाल ने किन्ही आशकाओ के कारण उनका पालन तत्काल ही नही किया।[2]

मई २०, १७०८ को सम्राट् बहादुरशाह जब कामबख्श के विरुद्ध दक्षिण की ओर जा रहा था तब हिरदेसाह और छत्रसाल के अन्य पुत्र दरबार में उपस्थित हुए। सम्राट ने

---

१ पन्ना० १०२ (आज़म का फरमान, अप्रेल १४, १७०७), पन्ना० १०३ (बहादुरशाह का फरमान जून ५, १७०७)।

२ पन्ना० १०४ (बहादुरशाह का फरमान अक्तूबर १८, १७०७); छत्र० पृ० १६१।

उन्हें उचित मनसब देकर सम्मानित किया। छत्रसाल के एक और पुत्र जगत सिंह (जगत-राज) ने जन २५, १७०८ को सम्राट से भेंट की। छत्रसाल के पुत्रों से भेंट कर बहादुरशाह बहुत प्रसन्न हुआ और छत्रसाल के प्रति उसका रहा सहा अविश्वास भी जाता रहा। इसलिए जुलाई २, १७०८ को उसने छत्रसाल को राजा की उपाधि देकर ५ हजार जात और ४ हजार का मनसब प्रदान किया। उनके पुत्रों और अन्य सम्बन्धियों को भी उचित मनसब मिले और छत्रसाल के ज्येष्ठ पुत्र को उन्हें दरबार में लाने के लिए भेजा गया। पर छत्रसाल शायद अभी भी सम्राट की ओर से शंकित थे और सम्राट के सामने उपस्थित होने में उन्हें कुछ दुविधायें थी, इसलिए दरबार में आने का साहस उनका तब भी नहीं हुआ।[3]

कामबख्श के दमन के पश्चात् जब मार्च १७१० में बहादुरशाह उत्तरी भारत को लौट रहा, तब छत्रसाल ने उससे भेंट कर लेना ही उचित समझा। छत्रसाल के पुत्र पदम सिंह ने मार्च १६, १७१० को उनके शाही छावनी के समीप आ पहुचने की सूचना सम्राट को दी। सम्राट ने पदम सिंह को एक कलगी देकर छत्रसाल को शाही खेमों में लाने का आदेश दिया। २६ मार्च को जब बहादुरशाह के डेरे कालीसिंध (मालवा) पर लगे हुए थे तब छत्रसाल के बिल्कुल समीप ही आ पहुचने की सूचना प्राप्त हुई। बख्शी-उल-मुल्क महाबत खाँ को छत्रसाल की अगवानी के लिए भेजा गया। छत्रसाल ने दरबार में उपस्थित होकर सम्राट को १०० अशरफी, एक हजार रुपये, ५ छोटी बदूकें और एक तलवार भेंट की। सम्राट ने प्रसन्न होकर उन्हें एक हाथी, तलवार और खिलअत देकर सम्मानित किया। कुछ ही दिनों पश्चात् २ अप्रेल को छत्रसाल को फिर एक जडाऊ जमधर प्रदान किया गया और उनके ६ पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों को भी तलवारें और खिलअतें दी गईं। १२ अप्रेल को छत्रसाल ने पुन कोटा के समीप करतिया नामक स्थान पर सम्राट से भेंट की और १६ अशरफियाँ तथा एक छोटी बदूक नजर की। छत्रसाल शाही लश्कर के साथ ही रहे और २३ अप्रेल को उन्होंने फिर सम्राट को शाह सुलेमानी की दो तस्बियाँ भेंट की। छत्रसाल की इन कई भेंटों से स्पष्ट ही है कि सम्राट बहादुरशाह उनसे मिलकर बहुत ही प्रसन्न हुआ था। इसीलिए उत्तरी भारत की ओर इस प्रस्थान में उसने उन्हें बराबर अपने साथ ही रखा। १४ मई के दिन छत्रसाल को एक जोडा कान की बालियाँ सम्राट की ओर से प्राप्त हुईं।[4]

कुछ ही दिनों पश्चात् जब बहादुरशाह अजमेर के समीप पहुचा तब उसे मई २०, १७१० को सरहिंद और थानेश्वर के पास सिक्खों द्वारा उपद्रव किये जाने के समाचार

---

३ अख० २५ जून, १७०८, जय० अख० बहादुर० २, पृ० ७६, पन्ना० १०५ (फरमान, २ जुलाई १७०८), भीम० २ पृ० १७३ (अ), इर्विन० २, पृ० २२६।

४ अख० मार्च, १६, २६, अप्रेल २, २३, मई १४, १७१०, जय० अख० बहादुर० ४, पृ० ३६, ६७, ८३, जय० अख० और० ३-२२ (जिसमें बहादुरशाह के भी ३-४ वर्षों के अखबार हैं) पृ० १४६, १५२, कामवर० २, पृ० ३४५।

प्राप्त हुए। शाही सेनाओ को तुरत ही उस ओर बढने के आदेश दिये गये। छत्रसाल भी इन सेनाओ के साथ थे। उन्होंने लोहागढ के घेरे में भाग लिया और नववर ३०, १७१० को इस्लाम खाँ के साथ मुनीम खाँ खानखाना के हरावली दस्तो का नेतृत्व ग्रहण कर युद्ध में अपूर्व वीरता का परिचय दिया। लोहागढ के घेरे की समाप्ति पर छत्रसाल को उनकी वीरता के लिए एक कलगी प्रदान की गई।[५]

लोहागढ के पतन के पश्चात् छत्रसाल स्वदेश लौट आये। उनके शुभचिंतक वज़ीर मुनीम खाँ खानखाना की मृत्यु फरवरी १६, १७११ को हो गई। सम्राट् ने छत्रसाल को इसकी सूचना दी और उन्हें पूर्ववत ही कृपापात्र वनाये रखने के आश्वासन भी दिये। उस समय मालवा में विद्रोहियो के उत्पात वढते ही जा रहे थे। गगा के नेतृत्व में वे वहाँ अशाति उत्पन्न कर रहे थे। इसलिए वहादुरशाह ने छत्रसाल को उनके दमन में शाही अधिकारियो की सहायता करने के लिए भी लिख भेजा। सम्राट् वहादुरशाह के राज्यकाल के अतिम समय में भी छत्रसाल के सबध दिल्ली दरवार से शातिपूर्ण ही रहे।[६]

२. छत्रसाल और फर्रुखसियर—मालवा में जयसिंह से सहयोग

वहादुरशाह की मृत्यु (फरवरी १७, १७१२) के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र मुइज़ुद्दीन जहाँदारशाह के नाम से दिल्ली की गद्दी पर वैठा। सम्राट जहाँदरशाह और छत्रसाल के सबधो के विशेष विवरण उपलब्ध नही हैं। जव शाहज़ादा एज़ुद्दीन को फ़र्रुखसियर के विरुद्ध इलाहावाद की ओर भेजा जा रहा था, तव जहाँदरशाह ने छत्रसाल को एक खिलअत तथा कुछ घोडे भेजकर शाही लश्कर में सम्मिलित होने के आदेश दिये थे।[७] परन्तु छत्रसाल

---

५ कामवर० २, पृ० ३५६-३५८; दस्ता० ४१, ५६; छत्र० पृ० १६२; इर्विन० १, पृ० ११३-११५; मा० उ० २, पृ० ५१२। छत्रसाल के पत्रो और छत्र० में छत्रसाल का लोहागढ़ के घेरे मे भाग लेने का विवरण अत्यत ही अतिशयोक्तिपूर्ण होने के कारण विश्वसनीय नहीं है।

६. पत्रा० १०६ (फरमान बहादुरशाह, मार्च २६, १७११); अख० अप्रेल ८, १७११, जय० अख० बहादुर० ५-६ (१) पृ० १३८।

७ अख० १८ अक्तूवर, २७ नववर १७१२, जय० अख० जहाँदार० पृ० २८५, ३१६। जयसिंह को लिखे गये अगस्त २७, १७१२ (जय० अख० मिश्रित (२) १७१२-१४, पृ० ८५, ८६) के एक पत्र में भी छत्रसाल जहाँदारशाह के एक ऐसे ही आदेश का उल्लेख करते हैं, जिसमें उन्हें अपने एक पुत्र को एज़ुद्दीन की सहायता को भेजने के लिए कहा गया था। पर २७ अगस्त और फिर १८ अक्तूवर के इन दोनो ही पत्रो से यह स्पष्ट है कि छत्रसाल जहाँदरशाह का पक्ष लेने से हिचकते थे और वे निष्पक्ष रह कर अपनी स्थिति सुरक्षित रखना चाहते थे।

ने इन आदेशो की ओर विल्कुल ही ध्यान नही दिया क्योकि उस समय दिल्ली की राजनीतिक स्थिति डाँवाडोल थी और फर्रुखसियर ने भी इधर अपनी शक्ति वहुत बढा ली थी। राज्यलक्ष्मी किसे वरण करेगी, यह पूर्ण रूप से अनिश्चित सा था। अस्तु, छत्रसाल ने किसी का भी पक्ष न लेकर निरापद रहना ही अच्छा समझा। किंतु जव आगरे के युद्ध (दिसबर ३१, १७१२) में फर्रुखसियर ने जहाँदारशाह को पराजित कर राज्यसत्ता हस्तगत कर ली, तव छत्रसाल ने निष्पक्ष नीति त्याग कर नये सम्राट् को अपनी सेवायें अर्पित की जिससे फर्रुखसियर ने प्रसन्न होकर अप्रेल २७, १७१३ ई० के दिन छत्रसाल को ५ हजारी जात और ४ हजार सवार का मनसव प्रदान किया।[८] जून १२, १७१३ को उन्हें फिर एक विशेष खिलअत, जडाऊ तलवार और हाथी देकर सम्मानित किया गया और मालवा में शाही अधिकारियो को शाति स्थापित करने में सहयोग देने के आदेश दिये गये। मालवा में उस समय मराठो के आक्रमणो और अफगान विद्रोहियो के कारण अराजकता उत्पन्न हो गई थी।[९]

दिसवर १७१३ के मध्य मे जव मालवा के नये सूबेदार सवाई जयसिह उस ओर प्रस्थान कर रहे थे, तव ११ दिसवर को दडवाहको को छत्रसाल को इसकी सूचना देकर उन्हें मालवा ले जाने के लिए भेजा गया। कुछ ही समय पश्चात फरवरी १०, १७१४ को छत्रसाल का मनसव भी वढाकर ६ हजारी जात और ४ हजार सवार कर दिया गया।[१०] इसी वीच में (जनवरी १७१४) छत्रसाल को हुसैन अली खाँ की सेना में सम्मिलित होने के आदेश मिले।[११] हुसैन अली खाँ को उस समय अजमेर की ओर अजीतसिंह राठौर के विरुद्ध भेजा जा रहा था। यह स्पष्ट नही है कि छत्रसाल हुसैन अली खाँ की सेना में सम्मिलित हुए या नही, पर अप्रेल माह के अत में जव अजीतसिंह राठौर से सधि हो चुकी थी, तव वे मालवा मे मराठो और अफगानो के विरुद्ध जयसिह से सहयोग कर रहे थे। उनके सम्मिलित प्रयत्नो से मराठो के मालवा में छुटपुट आक्रमण रुक गये। इस समय छत्रसाल मुगलसत्ता के प्रवल समर्थक वन गये थे। उनकी यह तत्कालीन साम्राज्यनिष्ठा जयसिह को मई, १७१४ ई० के मध्य मे लिखे गये एक पत्र मे वडी ही स्पष्टता से झलकती है। वे लिखते

---

८ पन्ना० १०७ (अ)।

९. वही १०७ (व)।

१० अख० दिसवर ११, १७१३, जय० अख० फर्रुख० १-२ (२) पृ० २४५; कामवर० २ पृ० ४०३। छत्रसाल को मनसव मिलने की यह तिथि इर्विन० २, पृ० २३० में भ्रम से जनवरी २१, १७१४ छप गई है। यह मनसव सफर ६, २ जलूस को प्रदान किया गया था, जिसकी ईस्वी तिथि नई गणना के अनुसार फरवरी २१, १७१४ और पुरानी गणना के अनुसार फरवरी १०, १७१४ होगी।

११ पन्ना० १०८ (फरमान, जनवरी २५, १७१४)।

है, "मराठे नर्मदा के इस ओर आना चाहते थे, लेकिन हमारी उपस्थिति के कारण अभी उसी किनारे पर ठहर गये है। जब तक हम अपनी सेनाओ द्वारा उनका मार्ग अवरुद्ध किये हुए है, तब तक वे नदी पार करने का साहस नही करेंगे। सम्राट के प्रताप से उन्हें पीछे खदेड दिया जायेगा। मै चौकन्ना हूँ आप भी चौकस रहिए क्योकि मराठे बहुत धूर्त और छली हैं।[12]

इस प्रकार मालवा में कुछ समय के लिए मराठो के आक्रमण तो रुक गये, परतु वहाँ अभी भी पूर्ण रूप से आतरिक शाति स्थापित नही हो सकी थी। अफगान और अन्य विद्रोही दल सम्मिलित रूप से मालवा मे उपद्रव कर रहे थे। सवाई जयसिह का ध्यान मराठो की ओर बँट जाने के कारण अफगानो के ये उपद्रव अधिक गभीर रूप धारण करते जा रहे थे। महरौली[13] के जमीदार धनसिह ने अफगानो से मिलकर अपनी जागीरो के निकटवर्ती प्रदेश में उपद्रव प्रारभ कर दिये थे। ओरछा के राजा उदोतसिह ने धनसिह के उपद्रवो को रोकने के प्रयत्न किये। पर वह अधिक सफल न हो सका। तब उदोतसिह ने उसके दमन के लिए सहायता की प्रार्थना की और छत्रसाल को उसकी सहायता के लिए भेजा गया। छत्रसाल मे एक युद्ध में धनसिह मारा गया और उसकी जागीर महरौली पर भी सभवत बुँदेलो ने अधिकार कर लिया।[14]

इधर दिलेर अफगान १७१५ ई० के प्रारभ में दक्षिण पश्चिमी मालवा में फिर प्रबल हो उठा था। उसने मराठो से भी सबध स्थापित कर लिये थे। मराठो और अफगानो की सयुक्त सेनायें अब होशगाबाद में एकत्र हुई और नर्मदा को हडिया के पास पार कर उन्होने आसपास के प्रदेश को पादाक्रात कर दिया। लगभग इसी समय (मार्च १७१५) धामोनी के पास भी अफगानो का उपद्रव बढ गया। धामोनी पर अभी छत्रसाल का अधिकार था। धामोनी का नया नायब लुत्फुल्ला खाँ नियुक्त हुआ था। पर छत्रसाल ने उसे धामोनी पर अधिकार नही दिया। इसलिए वह भी क्रोधित होकर अपने ६ हजार सवारो के साथ अफगानो से जा मिला।[15]

---

१२. जय० अख० फर्रुख० मिश्रित २ (१७१२-१४), पृ० २७१-२७४, रघुवीर० पृ० ६४।

१३ महरौली—सभवत महौली नामक गाँव जो चँदेरी से ११ मील पश्चिम और सिरोज से ४८ मील उत्तर पूर्व में है।

१४ अख० ६ मई, ५ जून, १७१४, जय० अख० फर्रुख० १-२(२) पृ० ८५ और ३(१) पृ० १०४।

१५ अख० मार्च० २०, १७१५, जय० अख० फर्रुख० ४(१) पृ० ३६, रघुवीर० पृ० ६४। छत्रसाल को धामोनी सितबर २, १७१४ ई० को दी गई थी। फरवरी १७, १७१५ की एक दूसरी सनद द्वारा भी धामोनी पर उनका अधिकार स्वीकार कर लिया

अब सवाई जयसिंह ने स्वय इन विद्रोहियो का दमन कर मालवा में शाति स्थापित करने का निश्चय किया। वे फरवरी १७१५ के अत में उज्जैन से सारगपुर की ओर बढ़े और धामोनी के सीमान्त प्रदेश से होकर मार्च ३०, १७१५ को सिरोज पहुँच गये। यहाँ छत्रसाल और बुद्धसिंह हाडा भी अपनी सेना सहित उनसे आ मिले। बरकदाज़ खाँ और सिरोज का फौजदार आज़मकुली खाँ पहिले ही आ चुके थे। अफगानो का पीछा करती हुई शाही सेना १० अप्रेल को उनके पडाव से ४ मील पर आ पहुँची। अफगानो की सेना में लगभग १२००० घुडसवार थे। वे तीन भागो में विभक्त थे। स्वय दिलेर खाँ उनका नेतृत्व कर रहा था। इस युद्ध में अफगान बुरी तरह पराजित हो कर भाग निकले। उनके लगभग २,००० घुडसवार मारे गये। शाही सेना के भी ५०० सैनिक गभीर रूप से घायल हुए और बहुत से खेत रहे। छत्रसाल का पुत्र मानसिंह भी इस युद्ध में काम आया। भागते हुए अफगानो का लगभग ८ मील तक पीछा किया गया। दूसरे दिन जयसिंह ने आज़मकुली खाँ को अफग़ानो का पीछा करने का आदेश दिया और वे स्वय आलमगीर पुर लौट आये जहाँ उन्होने अफगान उपद्रवकारियों के घरो को ध्वस्त कर डाला। जयसिंह ने अप्रेल २८, १७१५ को एक बार फिर छत्रसाल और बुद्धसिंह हाडा के सहयोग से दिलेर अफग़ान को मदसौर के निकट पराजित किया।[१६]

जयसिंह जब अफगानो का दमन करने में व्यस्त थे तभी मराठे कान्होजी भोसले और दभाडे के नेतृत्व में फिर नर्मदा पार कर मालवा में घुस पडे। उन्होने धार, माडू और उज्जैन के पास मनमानी लूटपाट कर चौथ वसूल की। लोगो ने त्रस्त होकर उज्जैन में शरण ली। मराठे उज्जैन से ४ मील की दूरी पर आ पहुँचे। स्थानीय जागीरदार और जमींदार भयभीत होकर अपनी जागीरें छोड अन्य सुरक्षित स्थानो में भाग गये थे। कुछ ने अपनी बचत के लिए मराठो को चौथ भी दी। मराठो के इन उपद्रवो के कारण जयसिंह ने दिलेर अफगान को पूर्ण रूप से कुचल डालने की योजनाओ को स्थगित कर दिया और वे वेगपूर्वक १०,००० घुडसवारो को लेकर उज्जैन की ओर बढ़े, जहाँ वे मई २, १७१५ को आ

गया था। (जय० अख़० फर्रुख़० ४-७, पृ० ४५)।

प्रारभ से ही छत्रसाल धामोनी प्राप्त करने के लिए लालायित थे। अब जब उन्हें उस पर अधिकार मिल गया था, तो वे उसे सहज ही में छोड देना नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होने नूरुल्ला खाँ का विरोध किया था।

१६ अख़० अप्रेल १०, ११, २८ और मई १५, १७१५ ई०, जय० अख़० फर्रुख़० ४-७ पृ० ११-१२, फर्रुख़० ४(१) पृ० ११८-११९, फर्रुख़० मिश्रित (३) पृ० ८५, पत्रा० १०९ (फरमान फर्रुख़० मई १८, १७१५), रघुबीर० पृ० ६४-६५। फरमान के अनुसार छत्रसाल को उनकी सेवाओ के पुरस्कारस्वरूप तलवार, खिलअत आदि दी गई थी।

पहुचे। जयसिंह की उपस्थिति से मराठे घवडा उठे और शीघ्र से शीघ्र नर्मदा पार कर सुरक्षित प्रदेश में पहुँचने की चिन्ता में अपनी लूटपाट का अधिकाश भाग छोड कर भाग निकले। जयसिंह को जव पता चला कि मराठे पिल्सुद के निकट नर्मदा को पार किया चाहते हैं, तो उन्होने नर्मदा के इसी पार उन्हे तहस नहस करने का निश्चय किया और वे शीघ्रता से अपनी सैन्यसहित वढते हुए १० मई को सूर्यास्त के समय पिल्सुद पहुँच गये। छत्रसाल वुंदेला और बुद्धसिंह हाडा उनके साथ ही थे। निकटवर्ती प्रदेश के जमीदार भी अपनी सैनिक टुकडियो सहित उनसे आ मिले थे। मराठो से लगभग चार घटो तक भयकर युद्ध हुआ। जव मराठो के पैर उखडने को हुए और उन पर दवाव अधिक पडा तो उन्होने पीछे हट कर पिल्सुद की पहाडियो में शरण ली। दूसरे दिन प्रात काल जयसिंह के सैनिको ने मराठो को और पीछे खदेड दिया और वे अपने घायलो तथा लूट के माल को पीछे छोड कर भाग निकले। जयसिंह ने इस प्रकार अप्रत्याशित सुगमता से मराठो पर विजय प्राप्त की। शाही सैनिको की प्रसन्नता का पार न था और वे विजयोत्सव मनाने में लग गये। छत्रसाल और वुद्धसिंह हाडा भी १२ मई को प्रात काल जयसिंह को वधाई देने आये और दोपहर तक उनके साथ रहे।[१७]

जव सवाई जयसिंह मराठो को मालवा से निकालने के लिए उज्जैन की ओर वढे थे, तव से दिलेर अफगान के विरुद्ध सैनिक अभियान रुक से गये थे। जयसिंह के पीठ फेरते ही दिलेर अफग़ान ने पुन लूट खसोट प्रारम कर दी और वावू जाट से मिल कर भेलसा के समीप उपद्रव आरभ कर दिये। इसलिए जयसिंह और छत्रसाल को उस ओर जाकर अफगानो को दमन करने के आदेश दिये गये। दिलेर अफग़ान इसी वीच में काला वाग[१८] की ओर वढ गया था और उसके पास के इलाकों को लूट पाट कर त्रस्त कर रहा था। धामोनी के समीप गढ वनेरा का जमीदार पृथीसिंह भी विद्रोहियो से मिल गया और वे मिल कर शाही प्रदेशो की लूट करने लगे। जयसिंह एक सेना लेकर विद्रोहियो के दमन को वढे। छत्रसाल का पुत्र हिरदेसाह और अन्य वुंदेला सामत भी उनसे आ मिले। इस सम्मिलित सेना ने विद्रोहियो को पराजित कर पृथीसिंह की जागीर गढ वनेरा पर अधिकार कर लिया। पर पृथीसिंह वच कर भाग निकला और अफगानो मे मिलकर धामोनी के प्रदेशो पर छुटपुट आक्रमण करता रहा जिन्हे हिरदेसाह अत में रोकने में सफल हुआ।[१९]

---

१७. अख० मई १७, १८, १७१५ आदि; जय० अख० फर्रुख० ४-७, पृ० ४६, ५२। रघुवीर० पृ० ६४-६७। पिल्सुद महेश्वर से १६ मील पूर्व और नर्मदा से २ मील उत्तर।

१८ कालावाग—सिरोज से ५२ मील उत्तर।

१९. अख० मई १५, १६, जुलाई १३, १४, १७१५; जय० अख० फर्रुख० मिश्रित ३, पृ० ८५, फर्रुख० ४(१) पृ० १६४; फर्रुख० ४-७ पृ० ६१, ६३।

मराठो और अफगानो के विरुद्ध सवाई जयसिह की सफलताओ ने दरबार में उनकी प्रतिष्ठा बहुत बढा दी थी। छत्रसाल की सेवाओ से भी फर्रुखसियर बहुत प्रसन्न हुआ था, इसलिए सितम्बर २५, १७१५ को जयसिह को छत्रसाल और बुद्धसिंह हाडा सहित दरबार मे आने के सदेश भेजे गये।[२०] जयसिह के मालवा छोडते ही मराठो ने फिर आक्रमण आरभ कर दिये। अपनी सूबेदारी के अतिम भाग (मार्च १७१६-नवबर १७१७) में जयसिह जाटो के विरुद्ध सैनिक अभियान में व्यस्त थे और मालवा के शासन की देखरेख उनका नायब रूपराम धँवई कर रहा था। उत्तरी मालवा में दिलेर खाँ और बाबू जाट फिर सिर उठा रहे थे। उनके आतक से मार्ग अरक्षित हो गये थे और अराजकता फैल गई थी। अप्रैल १७१६ में छत्रसाल के पुत्र देवनारायण ने इन विद्रोहियो से मोर्चा लिया और बाबू जाट को एक युद्ध में पराजित कर उसके तीन हाथी, दो तोपें और बहुत से घोडो तथा ऊँटो पर अधिकार कर लिया। इस मुठभेड में छत्रसाल का भतीजा मुकुन्दसिह मारा गया। छत्रसाल के एक दूसरे पुत्र पदम सिंह ने भी विद्रोहियो के सीकरी नामक गाँव पर आक्रमण कर उनसे दो हजार रुपये वसूल किये। छत्रसाल के पुत्रो की सफलताओ से सम्राट बहुत प्रसन्न हुआ और बाबू जाट पर विजय पाने के उपलक्ष में छत्रसाल को एक खिलअत भेजी गई।[२१]

छत्रसाल दिसबर १७१६ में दरबार में उपस्थित होकर सम्राट के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करना चाहते थे। पर इसी समय मालवा में मराठो के आक्रमण निरतर बढते जा रहे थे। इसलिए छत्रसाल से अपने स्थान पर अपने पुत्र को ही दरबार में भेजने को कहा गया और उन्हें स्वय तुरत ही मालवा में जाकर जयसिह के नायब रूपराम धँवई की सहायता करने के आदेश दिये गये। जयसिह को भी मालवा की बिगडती हुई स्थिति से अवगत कराया गया और उन्हे रूपराम धँवई को तत्पर तथा चौकस रहने के निर्देशन भेजने की सलाह दी गई। उदयपुर के राणा सग्रामसिह और पडोस के जमीदारो को भी रूपराम की सहायता करने के आदेश भेजे गये।[२२] लेकिन फिर भी मराठो के आक्रमणो को रोका नही जा सका। यहाँ तक कि एक युद्ध में तो उन्होने रूपराम धँवई और हिम्मतसिह नामक एक अन्य उच्च शाही अधिकारी को भी बदी कर लिया और एक लबी रकम लेकर ही उन्हें छोडा। जयसिह उस समय जाटो से युद्ध में सलग्न थे। इसलिए अमीन खाँ को अब मालवा

---

२० पत्रा० ११० (फरमान, जून १०, १७१५), अख० सितबर २५, १७१५ जय० अख० फर्रुख० सिय्रिन ३, पृ० १२३।

२१ अख० अप्रैल १३, जून २३, १७१५, जय० अख० फर्रुख० ५(२) पृ० १६२-१६४, २२८, रघुबीर० पृ० ६८, ६९, इर्विन० १, पृ० ३२४-२७।

२२ पत्रा० १११ (फरमान, सितबर १२, १७१६), अख० अक्तूबर ६, १७१६; जय० अख० फर्रुख० सिय्रिन (३) पृ० २२७-२२८।

का सूबेदार नियक्त किया गया और उसे प्रान्त में शीघ्रातिशीघ्र शाति स्थापित करने के आदेश दिये गये। अमीन खाँ तुरत ही मालवा आ पहुँचा और उसने मराठो को रोकने की तैयारियाँ शीघ्रता से आरभ कर दी। मराठो ने जब मार्च १७१८ मे सता के नेतृत्व में मालवा पर आक्रमण किया तब अमीन खाँ ने उन्हें बुरी तरह पराजित कर पीछे खदेड दिया और मालवा में शाति स्थापित की। मार्च १७१७ और जनवरी १७१८ के बीच में छत्रसाल बराबर शाही सेनानायको को दिलेर अफगान, जगरूप और गजसिह आदि बागियो के दमन मे योग देते रहे।[२३]

फर्रुखसियर के सम्राट बनने के कुछ समय पश्चात से ही सैयद भाइयो से उसके सबध विगडते जा रहे थे। फर्रुखसियर छुपे-छुपे जैसे भी हो सके उनके प्रभाव से मुक्त होने की चेष्टा कर रहा था। पर अत में वह असफल हुआ और सैयद भाइयो ने क्रुद्ध होकर उसे फरवरी १८, १७१९ को पदच्युत कर दिया।

३. छत्रसाल और मुहम्मदशाह

रफीउद्दारजात और रफीउद्दौला दोनो के लगभग ७ माह के अल्प शासन के पश्चात् सैयद भाइयो ने मुहम्मदशाह को सितबर १८, १७१९ को दिल्ली का सम्राट घोषित किया। फर्रुखसियर का पदच्युत होकर मुहम्मदशाह का सम्राट बनना सवाई जयसिह और उनके सहायको बुद्धसिह हाडा तथा इलाहाबाद के सूबेदार छबीलेराम को अच्छा नही लगा। उनका उत्थान फर्रुखसियर के राज्य काल में ही उन्ही की कृपा से हुआ था। अस्तु उनका अप्रसन्न होना स्वाभाविक ही था। छत्रसाल मालवा के युद्धो में जयसिह और बुद्धसिह हाडा के सपर्क में आये थे और विशेषकर जयसिह की योग्यताओ से बहुत ही प्रभावित हुये थे। वे जयसिह के अब कट्टर समर्थक बन गये थे। और फिर फर्रुखसियर के काल में उनके भी मनसब और जागीरो में वृद्धि हुई थी, इसलिए यह स्पष्ट ही था कि छत्रसाल की सहानुभूति फर्रुखसियर और सवाई जयसिह की ओर ही थी। मुख्यत इसी कारण से सम्राट् मुहम्मदशाह और छत्रसाल में अधिक समय तक अच्छे सबध रहना असभव सा ही था।[२४]

सम्राट मुहम्मदशाह के राज्य काल के प्रारभ में ही बूदी के बुद्धसिह हाडा और इलाहाबाद के सूबेदार छबीलेराम को सैयद भाइयो ने अपने विरुद्ध होने के कारण विद्रोही घोषित कर दिया और उनके दमन के लिए नवबर, १७१९ में शाही सेनाएँ भेजी। बुद्धसिह

---

२३. अख० मार्च ६, सितबर २५, १७१७; १३ जनवरी १७१८, जय० अख० फर्रुख० ६(१) पृ० १११-११२, २९२, फर्रुख० ६(२) पृ० २२७-२२८, रघुवीर० पृ० ६९-७२।

२४ इर्विन० १, पृ० ४०८, इर्विन० २, पृ० ५, ६।

हाडा ने छत्रसाल को शाही सेनाओ का मार्ग रोक कर उन्हें इलाहाबाद की ओर बढने से रोकने और मालवा की सीमाओ पर अशाति उत्पन्न करने के लिए उकसाया। फल-स्वरूप छत्रसाल के एक पुत्र जयचद ने रामगढ[२५] के किले पर अधिकार कर लिया। उनके एक दूसरे नायक सभवत पुत्र भगवतसिंह ने इलाहाबाद की ओर बढती हुई दिलेर खाँ तथा अब्दुन्नबी की सेनाओ को रोकने के निष्फल प्रयत्न किये और वह स्वय एक मुठभेड में मारा गया।[२६] यह तो स्पष्ट ही है कि छत्रसाल के पुत्रो ने यह उपद्रव अपने पिता के सकेत पर ही किये होगे, पर छत्रसाल ने ऊपर से मुहम्मदशाह से भी अच्छे सबध बनाये रखने के प्रयत्न किये। यहाँ तक कि सम्राट के आदेश पर उन्होने अपने पुत्र पदम सिंह को नवबर, १७१९ मे शाही सेनाओ के साथ मराठो से युद्ध करने दक्षिण भेजा। पदम सिंह मार्च, १७२० ई० तक दक्षिण में रहा, जहाँ उसने अपूर्व वीरता और साहस का परिचय देकर सम्राट की प्रशसा के साथ-साथ जागीरें भी उपार्जित की। छत्रसाल ने मुहम्मदशाह के सिंहासनारूढ होने पर बधाई का सदेश भेजकर अपनी सेवाएँ भी अर्पित की थी और उन्हें सम्राट की ओर से अप्रैल २९, १७२० को एक जडाऊ जमधर (छोटी कटार) और एक हाथी प्रदान किये गये थे। पर छत्रसाल और मुहम्मदशाह के ये शातिपूर्ण सबध अधिक समय तक स्थिर न रह सके जैसा कि हम अगले अध्याय में देखेंगे।[२७]

---

२५ रामगढ—सिरोज से ६० मील उत्तर।

२६ इर्विन० २, पृ० १०, ११, १८, मालवा० पृ० १३४।

गोरे० (पृ० २३१ पाद टिप्पणी) के अनुसार छत्रसाल के पुत्रो में से दो के नाम रायचद और भगवतराय थे। जयचद और भगवतसिंह दोनो ही इन नामो से मिलते-जुलते मे हैं।

२७ पन्ना० ९, १०, ११, १२, १३, १४ और पन्ना० ११२ (फरमान, अप्रैल २९, १७२०)।

छत्रसाल ने जगतराज को लिखे एक पत्र (पन्ना० ८३) में भी मुहम्मदशाह से अपनी भेंट और खिलअत पाने का उल्लेख किया है।

१. मुहम्मद खाँ बगश का प्रारम्भिक जीवन

मुहम्मद खाँ बगश करलानी कागज़ाई नामक पठान जाति का था। यह जाति कोहाट के इर्द गिर्द के प्रदेश में वसी थी। इस पहाडी इलाके को वगश भी कहते थे। इसलिए यहाँ वसे हुए पठानो को वगश कहा जाने लगा था। इन पठानो के बहुत से कुटुम्व जीविका की खोज में दोआव में आकर मऊ रशीदावाद[1] के आसपास वस गये थे। मुहम्मद खाँ वगश का पिता मलिक ऐन खाँ औरगजेब के राज्यकाल में मऊ रशीदावाद चला आया था। उसके हिम्मत खाँ और मुहम्मद खाँ नामक दो पुत्र थे। ऐन खाँ की मृत्यु के पश्चात् हिम्मत खाँ दक्षिण में जाकर मुगल सेना में भर्ती हो गया और वही किसी युद्ध में मारा गया। मुहम्मद खाँ १६८५ ई० के लगभग २१ वर्ष की आयु में यासीन खाँ वगश के गिरोह में शामिल हो गया। यासीन खाँ उस समय मऊ रशीदाबाद के पठानो के सबसे दु साहसी और शक्तिशाली गिरोह का सरदार था।[2]

यासीन खाँ का यह हाल था कि हर वर्ष वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर अक्तूबर के लगभग वह अपने चार पाच हजार पठान अनुयायियो के साथ जीविका उपार्जन के लिये यमुना पार करता और जो भी राजा या जागीरदार उसे अच्छी रकम और लूटपाट में प्रचुर भाग देता, वह उसका सहायक वन जाता। उसका प्रमुख कार्यक्षेत्र बुंदेलखड ही था। यहाँ के राजा और जागीरदार उसकी सहायता प्राप्त कर उसके पठानो का उपयोग अपने प्रतिस्पर्द्धी राजाओं को आतकित करने और अपने विद्रोही सरदारो का दमन करने में करते थे। इस सैनिक सहायता के लिए जो धनराशि और लूट का माल यासीन खाँ के हाथ लगता, उसे वह अपने सैनिको में वाट देता था। लगभग आठ माह तक यही क्रम चलता और वर्षा ऋतु आरम्भ होते ही यासीन खाँ मऊ वापिस लौट आता था। मुहम्मद खाँ वगश ने यासीन खाँ के साथ ऐसे कई लूटपाट के अभियानो में भाग लिया था। यासीन खाँ की मृत्यु ओरछे के किसी घेरे में हो जाने के पश्चात् उसका मामा शादी खाँ उसके गिरोह का

---

१ मऊ रशीदावाद फर्रुखाबाद से २१ मील पश्चिम में है। इसे पहिले मऊ थोरिया (टोरिया) कहते थे। सम्राट जहाँगीर के राज्यकाल में शम्साबाद के जागीरदार नवाव रशीद खाँ ने १६०७ में इसका जीर्णोद्धार कराया था। वगाल, १८७८, पृ० २६८-२७०।

२ वही।

सरदार चुना गया। पर मुहम्मद खाँ की उससे न पटी और उसने एक नये गिरोह का सगठन कर डाला। मुहम्मद खाँ के साहसिक कार्यो और उसकी सफलताओ के कारण उसके अनुयाइयो की सख्या मे शीघ्रता से वद्धि होने लगी। यहाँ तक कि शादी खाँ के दल के भी पठान उससे आ मिले। मुहम्मद खाँ ने अव अपने दल का परिचालन स्वतन्त्र रूप से आरभ कर दिया और फर्रुखसियर के उत्कर्ष तक उसने अपनी शक्ति बहुत वढा ली।[3]

सम्राट् जहाँदारशाह (फरवरी १७१२—फरवरी १७१३) के गद्दी पर बैठते ही उसके प्रतिस्पर्धी फर्रुखसियर ने राजमहल में एक शक्तिशाली सेना सगठित कर दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया। मार्ग में प्रसिद्ध सैयद भाई भी उससे आ मिले। जहाँदारशाह ने शाहजादे एजुद्दीन को फर्रुखसियर के विरुद्ध भेजा। पर एजुद्दीन खजवा के समीप नवम्बर १७१२ में पराजित होकर भाग निकला। इस युद्ध के समय ही मुहम्मद खाँ वगश को सैयद भाइयो के कुछ पत्र मिले थे जिनमें उसे फर्रुखसियर की सहायता करने को फुसलाया गया था। मुहम्मद खाँ ने जव यह देखा कि फर्रुखसियर की सफलता निश्चित-सी ही है, तो वह अपने १२,००० सैनिको सहित खजवा में आकर उसकी सेना में सम्मिलित हो गया। सामूगढ़ की विजय (जनवरी १, १७१३) के पश्चात् फर्रुखसियर दिल्ली के समीप वारहपुल नामक स्थान पर जनवरी ३० को आकर रुका। यहाँ उसने एक दरवार किया और अपने सहायको को ऊँचे पद तथा मनसव प्रदान करके प्रसन्न किया। मुहम्मद खाँ वगश की सेवाएँ भी भुलाई नही गई और उसे नवाव की उपाधि से विभूषित कर चार हजार सैनिको का सेनापति नियुक्त किया गया। इस सेना के व्यय के लिये वगश को वुंदेलखड में एरच, भाडेर, कालपी, काच, सिहुँडा, मौदहा, सीपरी, और जालौन के परगने सौंप दिये गये। वगश ने इन परगनो में अपने नायवो और चेलो को नियुक्त कर दिया। वुंदेलखड से मुहम्मद खाँ वगश के सम्वन्ध पुराने थे। जव वह यासीन खाँ के गिरोह में था तव उसके लूटपाट के अभियानो में उसे इस प्रदेश की भौगोलिक स्थितियो की और वुंदेला राजाओ के आपसी विद्वेष एवं उनकी सैनिक शक्ति की अच्छी जानकारी हो गई थी। फिर यासीन खाँ की मृत्यु के पश्चात् जव वह एक स्वतन्त्र गिरोह का सरदार वना, तव भी उसके कार्यों का मुख्य क्षेत्र वुंदेलखड ही था। अस्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वुंदेलखड से उसके विशेष परिचय के कारण ही सैयद भाइयो ने उसे इस प्रदेश में जागीरें दी थी। उनकी नीति काँटे से काँटा निकालने की थी। वुंदेलखड मे मुहम्मद खाँ के पैर जमाकर वे छत्रसाल पर अकुश रखना चाहते थे। फर्रुखसियर के शेष राज्यकाल में वगश ने केवल अनूपशहर के राजा के विद्रोह का दमन करने के अतिरिक्त और कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य नही किया। वह इस समय फर्रुखाबाद का निर्माण करने और उसे वसाने में ही अधिक व्यस्त रहा।[4]

---

३ वही, पृ० २७०-२७२।

४ वही, पृ० २७३-७५, २८०।

मुहम्मदशाह के सिंहासनारूढ (सितम्बर १८, १७१६ ई०) होने पर वगश के पद में और भी वृद्धि हुई। प्रारम्भ में उसका मनसब वढाकर ६,००० कर दिया गया, तत्पश्चात् सैयद अब्दुल्ला के विरुद्ध सम्राट् का साथ देने के कारण उसे नवम्बर ६, १७२० ई० को ७,००० का मनसब प्रदान किया गया और गजनफरजंग की उपाधि देकर फर्रुखावाद के समीप भोजपुर और शम्सावाद के परगने जागीर में दिये गये। इसके तुरत ही पश्चात् दिसम्बर, १७२० में वगश को इलाहावाद का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया और एरच तथा कालपी भी उसे सौंप दिये गये। मुहम्मद खाँ वगश ने इलाहावाद के विभिन्न भागों के शासन के लिये अपने चेले नियुक्त कर दिये। उदाहरणार्थ इलाहावाद में भूरे खाँ, एरच, कालपी तथा भाडेर में दिलेर खाँ और सीपरी (शिवपुरी) तथा जालौन में कमाल खाँ को नियुक्त किया गया। छत्रसाल के विरुद्ध अपने प्रसिद्ध सैनिक अभियानों के पूर्व मुहम्मद खाँ वगश चूडामन जाट और अजीतसिंह राठौर के विद्रोहों (अक्तूबर, १७२२-दिसम्बर १७२३) का दमन करने में सवाई जयसिंह के साथ व्यस्त था।[५]

२. वंगश-वुंदेला युद्धों का प्रारंभ (१७२०-२४)

पूर्वी वुंदेलखड का अधिकांश भाग मुग़ल काल में इलाहावाद के सूबे में शामिल था। इस भाग में वे प्रदेश भी सम्मिलित थे जो कहने को तो इलाहावाद के सूबेदार के अधीन थे, पर जिन पर वास्तविक प्रभुत्व छत्रसाल का ही था। मुहम्मद खाँ वगश को वुंदेलखड में जो परगने फर्रुखसियर के राज्यकाल में मिले थे, वे भी इस समय छत्रसाल के ही अधिकार में थे। वगश साहसी और दृढ निश्चयी मनुष्य था। वह यह कब सहन कर सकता था कि उसको सौंपे गये प्रदेशों की वास्तविक सत्ता किसी और के हाथों में हो। इधर दरबार के अमीर और विशेषकर सवाई जयसिंह मुहम्मद खाँ के शीघ्र उत्कर्ष से उससे ईर्ष्या करने लगे थे और छत्रसाल को उसके विरुद्ध उकसाने पर तुले हुए थे। अतएव निकट भविष्य में ही छत्रसाल और वगश में संघर्ष होना अवश्यभावी था।[६]

सन् १७२० ई० के उत्तरार्द्ध में ही कभी वुंदेलों ने कालपी को लूटकर वहाँ के आमिल

---

५. वही पृ० २८१-८४।

६ वही पृ० २८४, २८५।

वगश के शुभचिंतक नवाव अमीनुद्दीन इतिमादउद्दौला की मृत्यु जनवरी, १७२१ में हो चुकी थी। वगश के शत्रु अब दरबार में प्रबल हो उठे थे। वे वुंदेलों और अन्य स्थानीय जागीरदारों को वगश के विरुद्ध भडका रहे थे। वंगश के शत्रुओं में सवाई जयसिंह सबसे अधिक प्रभावशाली थे। वुंदेलखड के राजाओं पर उनका बहुत प्रभाव था। जयसिंह उन्हें छत्रसाल के साथ मिलकर वुंदेलखड में पठानों की सत्ता उखाड फेंकने को बराबर उकसा रहे थे। वुंदेलखड के इन राजाओं द्वारा जयसिंह को भेजे गये निम्नलिखित पत्रों से यह बात

पीर अली खाँ और उसके पुत्र को तलवार के घाट उतार दिया। मुहम्मद खाँ बगश का प्रसिद्ध चेला दिलेर खाँ सैन्य सहित बुंदेलो का दमन करने के लिए आगे बढा और उसने उन्हे कालपी तथा जलालपुर[७] के परगनो से खदेडकर निकाल दिया। पर बुंदेले तुरन्त ही फिर छत्रसाल के नेतृत्व मे सगठित होकर दिलेर खाँ का सामना करने आगे बढे। इस बार ओरछा, दतिया और चंदेरी आदि के सभी बुंदेला राजा छत्रसाल से सहयोग कर रहे थे। उनकी सयुक्त सेना की सख्या लगभग ३० हजार थी और उनके पास तोपें भी थी। मुहम्मद खाँ बगश दरबार में अपने शत्रुओ की गतिविधि और उनके मतव्यो से भली-भाति परिचित था। इसलिए उसने दिलेर खाँ को बुंदेलो से युद्ध टालकर उनके प्रभाव क्षेत्र से पीछे हट आने के लिए आदेश भेजे। पर दिलेर खाँ ने इन आदेशो की ओर विशेष ध्यान नही दिया। उसे बुंदेलो को पीठ दिखा कर भागना कायरतापूर्ण प्रतीत हुआ और उसने केवल बुंदेलो से कुछ समय तक युद्ध टालने के प्रयत्नमात्र ही किये। वह उस समय सोहरापुर[८] में था। अब वह सोहरापुर छोड कर अलोना[९] की तरफ हट गया। छत्रसाल उसका पीछा करते हुए मई ८, १७२१ को सोहरापुर पहुचे। यहा वर्षा के कारण उनकी प्रगति कुछ धीमी पड गई, फिर भी उन्होने दिलेर खाँ का पीछा न छोडा और केन नदी के किनारे-किनारे चलकर अलोना आ पहुँचे। इसी बीच में दिलेर खाँ अलोना से भाग कर मौधा[१०] चला आया था। पर छत्रसाल तो जैसे दिलेर खाँ को विनष्ट करने की प्रतिज्ञा करके ही चले थे। उन्होने अलोना में अधिक न रुककर १५ मई, को मौधा की ओर शीघ्रता से कूच

स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाती हैं—

हिरदेसाह-जयसिंह		३१ मई १७२१
उदोत सिंह (ओरछा)	,,	१ जून १७२१
राव रामचद्र (दतिया)	,,	२७ मई १७२१
छत्रसाल	,,	१० मई १७२१
,,	,,	१५ मई १७२१
,,	,,	१२ जुलाई १७२४
,,	,,	२२ अप्रैल १७२५

जै० हि० रि० २ भाग ३, पृ० ३१, ३२, ४२-४४।
जै० हि० रि० ३ भाग ५, पृ० १३।
जै० हि० रि० ५ भाग ८, पृ० २३, २४, ४२।

७ जलालपुर—कालपी से १८ मील दक्षिण।
८ सोहरापुर—परगना पंनानी जिला हमीरपुर।
९ अलोना (आलोन)—पंनानी से १० मील दक्षिण।
१० मौधा —अलोना से १३ मील पश्चिम।

किया। दिलेर खाँ ने अब इस लुकाछिपी से तग आकर बुंदेलो का सामना करने का निर्णय किया और बुंदेलो पर पहिले ही अचानक आक्रमण करने की योजना वनाई। मुहम्मद खाँ बगश का ज्येष्ठ पुत्र कायम खाँ ताराहवन[११] पर अधिकार कर उसकी सहायता के लिए १०,००० सैनिको सहित आ रहा था। पर दिलेर खाँ ने उसके आने की भी प्रतीक्षा न की। वह १५ मई, को अपने चार हजार सैनिको सहित पीछे की ओर तेजी से मुडा और उनमें से पाँच सौ चुने हुए योद्धाओ को लेकर बुंदेलो की सेना के हरावल पर अचानक जा टूटा। छत्रसाल का पुत्र जगतराज बुंदेलो के हरावल का नेतृत्व कर रहा था। इस अप्रत्याशित अचानक आक्रमण से बुंदेले कुछ समय तक स्तंभित से रह गये। पर दिलेर खाँ इस स्थिति का अधिक लाभ न उठा सका, क्योकि पीछे आने वाली बुंदेलो की सेना के दस्ते शीघ्र ही घटनास्थल पर आ पहुँचे। अब पठान चारो ओर से घेर लिये गये। दिलेर खाँ और उसके साथियो ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। उन्होने विकट युद्ध किया। पर बुंदेलो की सख्या अधिक होने के कारण वे उनके सन्मुख अधिक समय तक न टिक सके। इस युद्ध में दिलेर खाँ मारा गया और उसके अधिकाश सैनिक भी बुंदेलो से वचकर न जा सके।[१२]

---

११. ताराहवन (तिरहुँवा, तरहुवाँ)--बाँदा से ४२ मील पूर्व दक्षिण।

१२. यह पूर्ण विवरण निम्नलिखित सामग्री पर आधारित है —

जै० हि० रि० ५, भाग ८, पृ० २३ (छत्रसाल का जयसिंह को पत्र मई १०, १७२१)

वही, ३ भाग ८, पृ० १३ (छत्रसाल का दयाराम मेहता महासिंह आदि को पत्र— मई, १५ १७२१)

शिवदास० पृ० ६७ (बी); बंगाल, १८७८ पृ० २८४-८५, इर्विन० २, पृ० २३१।

इर्विन के अनुसार यह युद्ध १३ मई (२५ मई, नई गणना विधि से) को हुआ था। पर छत्रसाल के दयाराम मेहता और महासिंह आदि को लिखे गये पत्र में इस युद्ध की तिथि जेठ वदि ३०, सम्वत १७७८ (मई १५, १७२१ ई० पुरानी गणना विधि से) दी गई है। यह पत्र भी इसी तिथि को युद्ध के पश्चात तुरन्त ही लिखा गया था। इस पत्र में छत्रसाल लिखते हैं—

"तुम इहि के मा वे की महाराज (जयसिंह) के फुरमाफिक वार-वार लिषत हते सो अब यह मा यौ गयो महाराज को वोल ऊपर भयो अब उहा (दरवार) की महाराज के हाथ हैं हमें तो महाराज के हुक्म की करनै हैं"

छत्रसाल के उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि वे जयसिंह के जोर देने से ही दिलेर-खाँ के विरुद्ध युद्ध में प्रवृत्त हुए थे। लगभग ऐसे ही पत्र दतिया के रामचन्द्र और ओरछा के उदेत सिंह ने भी जयसिंह को लिखे थे। दिलेर खाँ के विरुद्ध इन सभी ने जयसिंह के प्रभाव के कारण ही प्रथम वार छत्रसाल से सहयोग किया था।

दिलेर खाँ से इस युद्ध के पूर्व छत्रसाल ने इलाहाबाद के विद्रोही सूबेदार गिरधर वहादुर और अशोथर[१३] के जमीदार को भी सहायता दी थी। इसलिए सम्राट मुहम्मदशाह उनसे पहिले से ही अप्रसन्न था।[१४] अव पठानो के उपर्युक्त युद्ध में पूर्ण रूप से विध्वस्त होने के समाचारो मे वह और भी क्रोधित हो उठा। पर १७२३ ई० तक छत्रसाल के विरुद्ध कोई भी कडा कदम नही उठाया जा सका क्योकि मुहम्मद खाँ बगश इस समय (१७२१-२३) जोधपुर के राजा अजीतसिंह राठौर के विरुद्ध सैनिक अभियानो में व्यस्त था।[१५] सन् १७२३ के अतिम भाग में ये अभियान समाप्त हो गये और मुहम्मद खाँ बगश अजीत सिंह के ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को शातिवार्ता के लिए साथ लेकर दिल्ली लौट आया। इसी बीच में वगश की अनुपस्थिति से अवसर पाकर छत्रसाल ने अपने राज्य की सीमाओ का और भी विस्तार कर लिया था। बुरहानुलमुल्क सआदत खाँ ने छत्रसाल के उपद्रवो को रोकने के प्रयत्न किये, पर वह कुछ विशेष सफल न हो सका और इसलिए अब मुहम्मद-खाँ वगश को शीघ्र इलाहावाद पहुँच कर बुंदेलखड में छत्रसाल का दमन कर शाति स्थापित करने के आदेश दिये गये।[१६]

मुहम्मद खाँ वगश ने इलाहावाद में दो मास रह कर छत्रसाल से युद्ध की तैयारियाँ की। उसने लगभग १५ हजार सैनिको की एक शक्तिशाली सेना सगठित कर जुलाई, १७२४ मे यमुना के किनारे भोगनीपुर[१७] में पडाव डाला। यमुना वाढ मे थी। उसके दूसरे किनारे पर हिरदेसाह और जगतराज भी सेनाओ सहित जमे थे।[१८] यमुना की वाढ कम होने पर वगश ने अवसर पाकर अपनी सेना दूसरी ओर उतार दी। पर बुंदेलो ने वगश का इतना जमकर सामना किया कि वह ६ माह तक लगातार भयकर युद्ध करने के पश्चात् भी केवल मिहुँडा[१९] तक ही पहुँच सका। इसी वीच में मुगल साम्राज्य के अन्य भागो मे महत्वपूर्ण घटनायें घटित हो रही थी। साकरखेडा के युद्ध (अक्तूबर १, १७२४) मे मुवारिज़ खाँ,

---

१३ अशोथर—वाँदा से लगभग ४० मील उत्तर।

१४ इर्विन० २, पृ० ५, १०-१२, २३१।

१५ सन १७२१ और १७२३ ई० के वीच में सम्राट और छत्रसाल में कुछ समय के लिए शाति-सी स्थापित हो गई थी। छत्रसाल के दो पत्रो (पन्ना० १७, १८) के अनुसार उन्हें मुहम्मदशाह की शाहजादी के विवाह का निमत्रण मिला था और उनके पुत्र हिरदेसाह और जगतराज अक्तूबर, १७२३ में इस विवाह के अवसर पर दिल्ली भी गये थे।

१६ खुजिस्ना० पृ० ३२, वगाल १८७८, पृ० २८७, इर्विन० २, पृ० २३१।

१७ भोगनीपुर—कानपुर जिले में कालपी जाने वाली सडक पर यमुना से ६ मील उत्तर की ओर स्थित है।

१८ जं० हि० रि० ५, भाग ८, पृ० ४२, वगाल० १८७८, पृ० २८७।

१९ मिहुँडा—वादा से १३ मील दक्षिण।

निज़ामुल्मुल्क द्वारा पराजित होकर मारा गया था। मराठो के ग्वालियर की ओर आने की आशका भी वढ रही थी। इसलिए वगश को फिलहाल छत्रसाल ने युद्ध रोक कर मराठो के सम्भावित आक्रमण को रोकने के लिए ग्वालियर पहुँचने के आदेश दिये गये। वगश ने युद्ध स्थगित कर छत्रसाल से सधि कर ली जिसके अनुसार छत्रसाल ने शाही प्रदेशो में और उपद्रव न करने का वचन दिया। तत्पश्चात् वगश ग्वालियर चला गया।[२०]

अप्रेल १७२५ ई० में सआदत खाँ बुरहानुल्मुल्क चँदेने उपद्रवकारियो का पीछा करता हुआ यमुना पार कर बुंदेलखड में घुस पडा और राठ तक जा पहुँचा। छत्रसाल इससे आशकित हो उठे। उनके दो पुत्र हिरदेसाह और जगतराज धामोनी तथा कनार[२१] से अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर आगे वढे। उनकी सयुक्त सेनाएँ अव सआदत खाँ के पडाव से ८ मील की दूरी पर आ जमी। पर छत्रसाल ने सआदत खाँ के इरादो को समझे विना युद्ध करना उचित न समझा। इसलिए उनके आदेशानुसार हिरदेसाह और जगतराज सआदत खाँ से युद्ध वचाकर उसकी गतिविधि पर ही दृष्टि रखे थे। उन्होने सआदत खाँ की सेना से कुछ पीछे रह कर ही उसका पीछा किया ताकि अगर सआदत खाँ के इरादे शत्रुतापूर्ण हो तो अविलव उनका प्रतिरोध किया जा सके। पर सभवत सआदत खाँ केवल चँदेलो को दवाने के लिए ही उस ओर आया था। वह अकारण ही बुंदेलो से युद्ध में उलझना नही चाहता था। इसलिए बुंदेलो को पीछा करते हुए देख वह यमुना पार कर अवध लौट गया।[२२]

---

२०. खुजिस्ता० पृ० ३३, वगाल० १८७८ पृ० २८७; ईविन० २, पृ० २३१। छत्रसाल ने साँकरखेडा के युद्ध में निज़ामुल्मुल्क की सहायता की थी। उनका पुत्र कुवरचद बुंदेलों की टुकड़ी लेकर निज़ामुल्मुल्क की ओर से लडा था। (ईविन० २ पृ० १४५)

गोरे लाल तिवारी के अनुसार छत्रसाल के एक पुत्र का नाम कुंवर था।

गोरे० पृ० २३१ पाद टिप्पणी और मा० उ० २ पृ० ५१२ भी देखें।

२१. कनार—तहसील, परगना और जिला जालौन।

२२. यह विवरण सवाई जयसिंह को लिखे छत्रसाल के अप्रेल २७, १७२५ के एक पत्र पर आधारित है। यह पत्र छत्रसाल ने वहुत ही क्षुब्ध होकर लिखा है। वे इसमें सआदत खाँ, मुहम्मद खाँ वगश और निज़ामुल्मुल्क के बुंदेलखड में सम्राट से मिले प्रदेशों में अनाधिकार हस्तक्षेपो की शिकायत करते हुए लिखते हैं,

"... महाराज जानत हैं जु जाइगा हम लई हैं सु पातसाही हुकुम सो लई हैं तहाँ पातसाह की तो अव यह तरह है अरु महमद खाँ पुनी वहुत फुरफुरात फिरत है सु भले हैं जो कछु हमते वनि आई हैं सु महाराज सुन रहे अरु अव पुनि हम तेसउ इलाज करी है सु जु महाराज को हम को सिखायनु इहि वात को लिखनो होय सु यह लिखवी "

इस पत्र से पहिले के एक जुलाई १२, १७२४ के पत्र में मुहम्मद खाँ वगश के सैन्य

३ वगश का बुंदेलखड पर द्वितीय आक्रमण

सन १७२६ के मध्य में ही कभी हिरदेसाह ने रीवाँ राज्य पर आक्रमण करके लगभग सपूर्ण वघेलखड पर अविकार कर लिया।[२३] इसलिए मुहम्मद खाँ वगश को १७२६ के अतिम महीनो में फिर बुंदेलो का दमन करने के आदेश दिये गये। उसे सेना के व्यय के लिए दो लाख रुपया प्रति माह दिये जाने की स्वीकृति दी गई और वाद में इस रकम की पूर्ति के लिए चकला कडा भी उसे सौंप दिया गया। मुहम्मद खाँ वगश ने इलाहाबाद में आकर शीघ्र ही एक नई सेना सगठित की और जनवरी २४, १७२७ ई० को अपने तृतीय पुत्र अकवर खाँ को हरावल का सेनापति बनाकर यमुना पार कर बुंदेलखड में घुसने का आदेश दिया। वह स्वय १५-१६ हजार घुडसवारो के साथ अकवर खाँ के पीछे हो लिया और इलाहावाद या इलाहावाद से ३० मील ऊपर की तरफ मऊ नामक घाट पर ही कही उसने यमुना पार की। बुंदेलो की सेनाओ के मुख्य पडाव अभी वघेलखड में ही थे। अनुमानत उनकी सेना मे लगभग २० हजार सवार और एक लाख पैदल सैनिक थे। शत्रु की स्थिति अधिक सुदृढ समझकर मुहम्मद खाँ ने वज़ीर कमरुद्दीन से सहायता की प्रार्थना की और उसे यह भी लिखा कि वह बुंदेलखड के अन्य राजाओ, जमीदारो तथा पडोसी जागीरदारो को उसकी महायता करने के लिए आदेश भेजे। वज़ीर ने इन राजाओ और जागीरदारो को वगश की सहायता करने के आदेश भी भेजे। पर शायद उनका कुछ भी प्रभाव न पडा।

सहित भोगनीपुर में पडाव डालने की सूचना देते हुए छत्रसाल ने जयसिंह को लिखा था—

"हम आपुन को लिखो है जो यो (वगश) मारयो जाय तो हमारो वदनाम पातसाही में न होय यो वरहु (वही) उरझतु फिरतु है और जायगा (जगह) जो हम लई है सो पातसाह के हुकम तें लई है और अपुन दिवाई है"

(जॆ० हि० रि० २, भाग ३, पृ० ४२-४३। वही ५, भाग ८, पृ० ४२।)

उपर्युक्त दोनो पत्रो से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि छत्रसाल वगश से युद्ध करना नहीं चाहते थे। अपन वृद्धावस्था और अपने पुत्रो के आपसी द्वेष के कारण ही वे शायद अव अधिक शान्तिप्रिय हो उठे थे। पर दरवार में वगश के विपक्षी अमीरो एव हिरदेसाह के रीवाँ पर आक्रमण ने स्थिति को अधिक गभीर और विस्फोटक वना दिया था।

२३ वगाल० १८७८ पृ० २८७, इर्विन० २ पृ० २३१। हिरदेसाह का यह वघेलखड पर अभियान छत्रसाल की इच्छा से नहीं हुआ था। इसका मुख्य कारण हिरदेसाह और जगतराज के कौटुम्बिक झगडे थे जिनसे चिढकर हिरदेसाह ने वघेलखड में अपने लिए एक नया राज्य निर्माण करने के उद्देश्य से यह आक्रमण किया था। छत्रसाल इस आक्रमण के विरुद्ध थे जैसा कि उनके जुलाई १७२६ और जनवरी १७२७ के वीच में लिखे पत्रो से विदित होता है। उन्होने हिरदेसाह को रीवाँ के प्रदेश वहा के शासक को लौटा कर शीघ्र वापस चले आने के आदेश भी दिये थे। (पन्ना० २३-२४, २६, २७)

केवल मौधा का जयसिंह ही वगश की सहायता को तत्पर होकर अपने सैनिको सहित उससे आ मिला। अन्य लोग इस ओर से उदासीन ही रहे।[२४]

मुहम्मद खाँ वगश ने प्रथम पूर्वी वघेलखड से ही बुंदेलो को निकालने की योजना बनाई। उसकी सेनाओ ने लूक,[२५] चौखडी,[२६] गढ ककरेली,[२७] कल्यानपुर[२८] और रामनगर[२९] आदि पर अधिकार कर लिया। वीरसिंहपुर[३०] के इर्दगिर्द के प्रदेश और माधोगढ[३१] तथा बांदा के आसपास के पूर्वी इलाको से बुंदेलो को खदेड कर वगश ने लगभग २०० मील के भूभाग पर अधिकार कर लिया। बुंदेलो ने ताराहवन[३२] के किले में अपनी रक्षा पक्तियाँ बाधी। मुहम्मद खाँ वगश ने अपने भाई हादीदाद खाँ और पुत्र कायम-खाँ को १२,००० सवार और १२,००० पैदल सहित ताराहवन का घेरा डालने को पीछे छोड दिया और वह स्वय शेष सेना सहित आगे वढता हुआ सिहुँडा[३३] मे आठ मील की दूरीपर आ पहुचा। भेंड,[३४] मौधा,[३५] पैलानी,[३६] अगवासी,[३७] सिमौनी[३८] आदि के परगने भी सहज ही उसके हाथ में आ गये। इधर कायम खाँ ताराहवन का घेरा डाले पडा था। ताराहवन की रक्षा का भार छत्रसाल के पौत्र सभासिंह पर था। वरगट[३९] का जागीर-दार हरवश और कुछ मराठे भी उसकी सहायता कर रहे थे। ताराहवन में तीन गारे के किले

२४ वगाल० १८७८, पृ० २८८; ईविन० २, पृ० २३२।

२५. लूक—रीवा से २७ मील उत्तर।

२६ चौखडी—लूक से ६ मील उत्तर।

२७ गढ़ ककरेली—चौखडी से १२ मील दक्षिण पश्चिम।

२८ कल्यानपुर—ककरेली से ११ मील पश्चिम।

२९ वीरसिंहपुर—कल्यानपुर से १६ मील दक्षिण पश्चिम।

३० रामनगर—एक रामनगर कालिजर से २ मील पश्चिम में है। मानचित्र में यह नहीं दिया गया है। (वगाल० १८७८, पृ० २८८ पाद टिप्पणी)

३१ माधोगढ—वीरसिंहपुर से १६ मील दक्षिण।

३२ ताराहवन, तरहुवा—करवी से २ मील दक्षिण और बादा से ४२ मील पूर्व दक्षिण।

३३ सिहुँड़ा—बांदा से १३ मील दक्षिण।

३४ भेंड, वेंद—बांदा से २३ मील उत्तर पूर्व।

३५. मौधा—बांदा से २० मील उत्तर पश्चिम।

३६ पैलानी—बांदा से २० मील उत्तर।

३७ अगवासी—बांदा से २८ मील उत्तर पूर्व।

३८ सिमौनी—बांदा से १८ मील उत्तर पूर्व।

३९ वरगढ़—मानिकपुर से लगभग २४ मील उत्तरपूर्व।

और चार पत्थरो के ढोको से बने मजबूत गढ थे । कायम खाँ ने जयसिंह के पुत्र छत्रसिंह, हलीम खाँ, मुहम्मद जुल्फिकार और साधू आदि जमीदारो की सहायता से दो किलो पर किसी प्रकार अधिकार कर तीसरे किले पर आक्रमण कर दिया । बुंदेलो ने शत्रु को पीछे ढकेलने के लिए बडे वेग से आक्रमण किये और उनमें से लगभग २००० मारे भी गये, पर वे शत्रु की प्रगति को न रोक सके । कायम खां के सैनिको का दबाव निरतर बढता ही गया और अन्त में दिसबर, १२ १७२७ को ताराहवन का पतन हो गया । निकटवर्ती छोटे-छोटे किलो पर भी कायम खां का अधिकार हो गया ।[४०]

मुहम्मद खाँ बगश ने इस समय सिहुँडा से पश्चिम की ओर बढना आरभ कर दिया था । बुंदेलो के प्रत्याक्रमणो के कारण उसकी प्रगति बहुत धीमी थी । बुंदेले ने अब सम्मुख मैदान में आकर युद्ध करना बन्द कर दिया था । वे अब छोटे-छोटे दलो में मुसलमानो पर अवसर पाकर टूट पडते और उन्हें क्षति पहुँचा कर तुरत ही निकटवर्ती पहाडियो और जगलो में छुप जाते थे । ये छुटपुट मुठभेडें लगभग एक माह २० दिन तक चलती रही । पर बगश दृढतापूर्वक आगे बढता ही गया और अत में इचौली[४१] के निकट उसने बुंदेलो को घेर कर उन्हें खुले मे आकर युद्ध करने पर विवश कर दिया । बुंदेलो ने इचौली में सामने की ओर खाइयाँ खोद कर दृढ मोर्चाबन्दी कर ली थी । छत्रसाल अपने पुत्रो और पौत्रो सहित स्वय वहाँ उपस्थित थे । युद्ध मई १२, १७२७ को आरभ हुआ । प्रथम हिरदेसाह और हिंदूपत चँदेल अपनी सेनायें लेकर आगे बढे । उनकी सयुक्त सेना में लगभग २०,००० सवार और ४०,००० पैदल सैनिक थे । पर बगश के कुशल सेनापतित्व के सम्मुख वे अधिक समय तक न ठहर सके और उन्हें पराजित होकर पीछे हट जाना पडा । बगश के कुछ कुशल सेना-नायक दिलावर खाँ, भूरे खाँ आदि इस यद्ध में काम आये और उसका पुत्र अकबर खाँ भी एक गोले से थोडा-सा घायल हो गया । बगश से दूसरा मोर्चा जगतराज ने लिया । पर वह भी अपने १५,००० सवारो से बगश की प्रगति न रोक सका । बगश ने इस प्रकार भयकर युद्ध करके बुदेलो की कई मोर्चाबन्दियो को छिन्न-भिन्न कर उन्हे सालहट[४२] के जगलो की ओर खदेड दिया । इचौली के युद्ध में बगश के ४-५ हजार सैनिक हता-हत हुए तथा मारे गये और बुंदेलो को भी भारी सैनिक क्षति पहुँची । उनके अनुमानत १२-१३ हजार सैनिक खेत रहे । बगश के पास अब केवल १४-१५ हजार सवार रह गये थे । रसद और पानी की बडी कमी थी । स्थानीय जमींदारो और राजाओ से कुछ भी सहा-यता न मिल सकने के कारण उसकी स्थिति और भी अधिक सकटापन्न हो गई थी ।[४३]

---

४० खुजिस्ता० पृ० ८१, बगाल १८७८ पृ० २८९-९०, इर्विन० २ पृ० २३२ ।

४१ इचौली—चाँदा से ११ मील उत्तर पश्चिम ।

४२ सालहट की पहाडियाँ जैतपुर से ९ मील पूर्व की ओर है ।

४३ खुजिस्ता० पृ० ४-८, बगाल० १८७८ पृ० २९०-९१ ।

इचौली के युद्ध में पराजित होकर छत्रसाल ने अब सालहट के जगलो में मोर्चे बाधे। यह प्रदेश गहरी घाटियो तथा पहाडियो से आवेष्टित और घने जगलो से आच्छादित होने मे मोर्चेबन्दी के लिए बहुत उपयुक्त था। छत्रसाल ने सामरिक-दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानो पर सैनिक टुकडियाँ नियुक्त कर दी और स्वय सेना सहित सूरजमऊ[४४] आ जमे जिससे सब ओर आवश्यकता पडने पर कुमक भेजी जा सके। जून ८, १७२७ को वगश ने सालहट की ओर बढना आरम्भ किया और दूसरे दिन प्रात काल शत्रु पर आक्रमण कर दिया। वगश ने यह आक्रमण इतनी कुशलता से तथा आकस्मिक ढग से किया कि बुंदेलो के शीघ्र ही पैर उखड गये और वे महोवा की ओर भाग निकले। वगश के सैनिक दस्तों ने बारीगढ[४५] और लौरी झूमर[४६] के गढो पर भी अधिकार कर लिया। वगश ने अब महोवा की ओर बढकर वहा से दो कोस की दूरी पर अपने पडाव डाल दिये। भयकर वर्षा के कारण उसे यहा लगभग ५ माह तक निष्क्रिय होकर पडे रहना पडा। छत्रसाल ने इसी बीच में अपनी सेना को पुन सगठित कर महोवा की निकटवर्ती पहाडियो पर किलेबन्दी कर सैनिक चौकियाँ स्थापित कर ली।[४७]

वर्षा ऋतु के निकल जाने पर वगश ने नवम्बर १७२७ में फिर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उसने निरन्तर युद्ध कर बुंदेलो के कई पहाडियो पर स्थित सैनिक अड्डों पर अधिकार जमा लिया। पर घने जगल के कारण अब आगे बढ सकना सुगम न था। इसलिए वगश ने जगल कटवा कर सेना के लिए मार्ग बनवाना आरम्भ कर दिया। वगश के पास रसद की भारी कमी थी। इधर लगातार युद्धो के कारण उसकी सैनिक शक्ति भी निर्बल होती जा रही थी। इसलिए सैनिक सहायता के अभाव मे वगश के युद्ध प्रयत्नों में शिथिलता आ गई थी। अब युद्ध भी उस प्रदेश मे हो रहा था जहा छत्रसाल की स्थिति अधिक सुदृढ थी। इस युद्ध के निष्कर्ष पर ही छत्रसाल के राज्य का भविष्य निर्भर था। अस्तु, उन्होंने अब अपनी सारी सैनिक शक्ति इस युद्ध मे झोक दी थी। छत्रसाल की सेना की सख्या इस समय वगश की सेना से कई गुनी बढ गई थी। वगश दो लाख रुपया व्यय करके भी बडी कठिनाई से अपनी बची-खुची सेना को सतुष्ट रख पा रहा था। उसकी सेना का एक भाग कायम खाँ के पास ही ताराहवन में रह गया था। उसे उचित मात्रा में शाही सहायता भी नही मिल रही थी। उसने बार-बार शिकायत भरे पत्र दरबार में भेजे पर उनका कोई विशेप फल

---

४४ सूरजमऊ—नक्शे में नहीं दी गई है। इर्विन के अनुसार यह जैतपुर से लगभग ६ मील दक्षिण में थी। सभवत यह मऊ सहानिया रही होगी। जो जैतपुर से १८ मील दक्षिण पश्चिम में है।

४५ बारीगढ—महोवा से १० मील दक्षिण पूर्व।

४६ लौरी झूमर—महोवा से १६ मील दक्षिण पूर्व में है।

४७. खुजिस्ता० पृ० ५१-५२, बगाल १८७८ पृ० २९३, इर्विन० २, पृ० २३२।

न निकला। इन्ही सब कारणो से बगश ने युद्ध में ढील डाल दी और अगले चार माह (नवम्बर १७२७—अप्रैल १७२८) तक वह बुंदेलो से अपनी बचत के लिए केवल रक्षात्मक छुटपुट युद्ध ही करता रहा।[४८]

पर यह अनिश्चित स्थिति कब तक चल सकती थी ? रक्षात्मक युद्ध की नीति अत में विध्वशात्मक ही प्रमाणित होती। इसलिये बगश ने अब शीघ्र-से-शीघ्र इस युद्ध को समाप्त करने का निश्चय कर अप्रैल १७२८ में फिर युद्ध प्रारम्भ कर दिया। उसकी सेना का जमाव इस समय कुल पहाड[४९] और सालहट (सालत) के बीच में ही कही था। यही से उसने १९ अप्रेल को बुंदेलो पर आक्रमण कर दिया। बुंदेलो ने सुदृढ मोर्चेबदी की थी। उनके दोनो ओर तो कुलपहाड की पहाडिया थी और सामने की ओर अभी हाल ही में निर्मित सात परकोटे एव दो गढ थे। पर मुहम्मद खाँ बगश ने उसी दिन इन सबको विध्वस्त कर डाला। १९ अप्रेल की मध्यरात्रि में हिरदेसाह, जगतराज और मोहनसिह ने तीन बार अचानक छापे मारे। पर शत्रु की सावधानी से वे अधिक कारगर न हो सके। बगश ने अब मधरी[५०] पर अधिकार कर लिया था। उसकी सेना कुलपहाड के सामने आ पहुची थी। उसके दायी ओर जैतपुर और मवरी थे और बाई ओर सालहट की पहाडिया थीं, जिन पर अभी बुंदेलो का अधिकार था। छत्रसाल की मुख्य सेना कुछ पीछे हटकर अजनार[५१] की पहाडियो पर जम गई थी। बगश ने अब और समय नष्ट न करके जैतपुर[५२] पर घेरा डाल दिया।[५३]

जैतपुर के घेरे के पूर्व पठानो और बुंदेलो मे कई छोटी-छोटी मुठभेडें और हुई थीं। ऐसी एक मुठभेड का वर्णन बगश ने दरबार को भेजे एक विवरण में किया है।[५४] ऐसी ही एक दूसरी मुठभेड का उल्लेख छत्रसाल के पत्रो में मिलता है। इन पत्रो के अनुसार एक युद्ध में छत्रसाल का तृतीय पुत्र जगतराज बहुत अधिक घायल होकर युद्धक्षेत्र में गिर पडा और उसके सैनिक पराजित होकर उसे वही छोडकर भाग निकले। जगतराज की रानी जैत कुवर को जब यह समाचार मिला तो उसने तुरन्त ही बिखरे सैनिको को एकत्र कर युद्ध क्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। इस प्रत्याक्रमण में बुंदेलो ने रानी के नेतृत्व में अपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया। पठानो को पीछे हटना पडा और रानी अपने घायल पति को उठाकर

---

४८ खुजिस्ता ८९-९०, बगान० १८७८, पृ० २९४।

४९ कुल पहाड—महोबा से १४ मील पश्चिम।

५० मूघरी, मधारी—जैतपुर से ३ मील पूर्व।

५१ अजनार—जैतपुर से ६ मील दक्षिण।

५२ जैतपुर—महोबा से १९ मील पश्चिम।

५३ बगाल० १८७८, पृ० २९४, खुजिस्ता० पृ० १०, ११, १२ और २३५।

५४ इर्विन० २, पृ० २३३-३६।

डेरो में लौट आई। रानी के इस असाधारण साहस से प्रसन्न होकर छत्रसाल ने वगश से युद्ध समाप्त होने पर उसे जलालपुर[५५] और दरसैंडा[५६] नामक दो परगने भेंट किये थे।[५७]

वगश ने जब जैतपुर का घेरा डाला तब वर्षा प्रारम्भ हो चुकी थी। भूमि में नमी होने के कारण सुरगें खोदते ही धमक जाती थी। बारूद भी गीली हो जाने के कारण काम न करती थी। इसलिए घेरे के आरम्भ में कुछ विशेष प्रगति न हो सकी और वह चार महीने से अधिक चलता रहा। पर वर्षा समाप्त होने पर वगश ने बडे वेग से किले पर आक्रमण करने प्रारम्भ किये। उसका दबाव निरन्तर बढता ही गया और दिसम्बर १७२८ ई० में जैतपुर के किले पर उसका अधिकार हो गया। छत्रसाल के विरुद्ध वगश के इस सैनिक अभियान को इस समय लगभग दो वर्ष हो चुके थे।[५८]

इधर जब वगश जैतपुर के घेरे में व्यस्त था, तब छत्रसाल के एक मुशी दुर्गासिंह ने राठ[५९] और पनवारी के कुछ भागो में उपद्रव आरम्भ कर दिये थे। उसने दो हजार सवार और पाच हजार प्यादो की एक सेना भी सहेंदी[६०] के किले में एकत्र कर ली थी। वगश ने अपनी राठ में पडी हुई सेना के अधिनायक मुहम्मद बशारत मुल्तानी को दुर्गासिंह का दमन करने के लिये आदेश भेजे। पर उसने कुछ आनाकानी की। इसलिये वगश ने

---

५५ जलालपुर—बादा से २४ मील उत्तर पूर्व।

५६ दरसैंडा—जलालपुर से २२ मील दक्षिण पूर्व।

५७ यह पूर्ण विवरण पन्ना० २१, २२, और ५० पर आधारित है। कैप्टन पाग्सन ने भी जैत कुवर के इस युद्ध का कुछ ऐसा ही मिलता जुलता उल्लेख किया है। उसके अनुसार यह युद्ध नदीपुर में दिलेर खां और जगतराज के मध्य हुआ था। घायल जगतराज को युद्ध-क्षेत्र में छोडकर बुंदेले भाग निकले थे। तब रानी ने स्वय युद्ध क्षेत्र में जाकर मुसलमानो को पराजित कर पीछे हटा दिया था और वह अपने पति को उठाकर चली आई थी। (पाग्सन० पृ० १०७)।

इस युद्ध का जगतराज और दिलेर खां में होना संभव नहीं है, क्योकि दिलेरखां इस युद्ध के लगभग सात वर्ष पूर्व मई १७२१ में मौधा में मारा जा चुका था। पाग्सन जगतराज की पत्नी का नाम उम्र कुवर देते है, पर छत्रसाल के अनुसार उसका नाम जैत कुवर था। इन दो सशोधनो को छोडकर पाग्सन के विवरण का मूल रूप सही माना जा सकता है।

५८ बंगाल० १८७८, पृ० २९५, इर्विन० २, पृ० २३३।

५९. राठ—पनवारी से १२ मील उत्तर पूर्व।

६० सहेंदी (सियोधी, सौंधी)—पनवारी से ६ मील उत्तर पश्चिम।

उससे उरई छीन कर दतिया के राजा रामचन्द्र को दे दी, जिससे मुल्तानी अब कुछ अधिक सक्रिय हो उठा। अत मे सरदार खाँ और पचमसिह के सम्मिलित प्रयत्नो से राठ और पनवारी के इलाको में शान्ति स्थापित हो गई।[६१]

पाठको को स्मरण होगा कि मुहम्मद खाँ बगश ने जब ताराहवन से पश्चिम की ओर वढना आरम्भ किया था, तब वह अपने पुत्र कायम खाँ को ताराहवन के किले पर अधिकार करने के लिए वही छोड आया था। कायम खाँ ने दिसम्बर १२, १७२७ को ताराहवन पर अधिकार भी कर लिया था, पर ज्यो ही उसने पीठ फेरी त्योही बुंदेलो ने ताराहवन पर आक्रमण कर पठानो को वहा से निकाल कर फिर उस पर अपना आधिपत्य जमा लिया। बगश ने तुरन्त ही फिर कायम खाँ को ५००० सवार और ५००० पैदल देकर ताराहवन की ओर रवाना किया। वह इस समय अजनार से आगे बढकर जैतपुर के घेरे की तैयारिया कर रहा था। कायम खाँ ने दुबारा फिर ताराहवन पर घेरा डाला। सितम्बर २४, १७२८ को पठानो ने ताराहवन के किले के बाहरी भाग पर अधिकार कर लिया। पर बुंदेले दृढतापूर्वक जमे ही रहे और यह घेरा एक मास से भी अधिक चलता रहा। १ नवम्बर को किले की दीवार के नीचे की सुरग उडने से उस ओर का भाग भरभरा कर गिर पडा। कायम खाँ अब तेजी से किले में सैन्य सहित घुस पडा। भयकर युद्ध के अनन्तर बुंदेले किला छोड कर भाग निकले। पर कायम खाँ ने पीछा न छोडा और भागते हुए शत्रु को भयकर क्षति पहुँचाई। वह इतने से ही सतुष्ट नही हुआ। उसने वेगपूर्वक ताराहवन से बरगढ[६२] तक के प्रदेश को भी आक्रात कर बुंदेलो को निकाल बाहर किया। कायम खाँ जब इन अभियानो में व्यस्त था तभी मार्च १२, १७२९ को मराठो ने पेशवा बाजीराव प्रथम के नेतृत्व मे बुंदेलखड में अचानक ही प्रविष्ट होकर बगश की विजयो को पराजय में परिणत कर दिया।[६३]

जैतपुर का युद्ध निर्णयात्मक प्रमाणित हुआ था। जैतपुर के पतन से छत्रसाल और उनके पुत्रो का रहा-सहा साहस भी जाता रहा। हिरदेसाह, जगतराज, लक्ष्मण सिह आदि ने अपने कुटुम्बो सहित आत्मसमर्पण कर दिया। कुछ ही समय पश्चात् छत्रसाल भी अपनी रानियो और पौत्रो सहित बगश के डेरो मे आ पहुचे। बगश ने सम्राट् को अपनी सफलताओ से सूचित कर छत्रसाल तथा उनके पुत्रो को लेकर दिल्ली जाने की आज्ञा मागी। पर तीन माह तक बगश को सम्राट् से कोई भी आदेश नही मिला। छत्रसाल अपने कुटुम्ब सहित अभी बगश की निगरानी मे ही रह रहे थे।[६४]

---

६१ खुजिस्ता० पृ० १४, बगाल० १८७८, पृ० २९५-९६।

६२ बरगढ—मानिकपुर से लगभग २४ मील उत्तर-पूर्व।

६३ बगाल० १८७८, पृ० २९९, इर्विन० २, पृ० २३९।

६४ खुजिस्ता० पृ० १५२, २०१, २०९, वरीद० पृ० १५३ (बी), बगाल०

मुहम्मद खाँ वगश और छत्रसाल मे अव सविवार्त्ता आरम्भ हो गई। छत्रसाल ने मुग़ल अवीनता स्वीकार कर ली और जिन शाही प्रदेशों पर उन्होंने गत वर्षों में अविकार जमा लिया था, उन्हे भी लौटा देना स्वीकार कर लिया। वे अपने राज्य मे शाही सैनिक थाने भी रखने के लिए सहमत हो गये। पर अभी तक सम्राट् का कोई आदेश पत्र वगश को प्राप्त न हो सका था। इससे वगश तो आशकित हो ही उठा था, पर छत्रसाल को भी उसकी मुग़ल दरबार मे गिरती हुई स्थिति का अनुमान हो चला था। छत्रसाल ने वगश के विरोधी बुरहानुलमुल्क सआदत खाँ से वगश के विरुद्ध शिकायत की और दया तथा सहायता की याचना की। सआदत खाँ ने उन्हे वगश का विरोध करने को ही उभाडा। अन्य दरबारी भी छत्रसाल को किसी तरह वगश की छावनी से बच निकल कर पुन युद्ध प्रारम्भ करने को उकसा रहे थे। छत्रसाल को स्थिति भापने देर नही लगी। वे अव वगश की निगरानी से मुक्ति पाने के अवसर की ताक में रहने लगे। यह अवसर उन्हे फरवरी १७२९ में सुलभ हुआ। होली का त्योहार निकट आ रहा था। छत्रसाल, हिरदेसाह, और जगतराज ने मुहम्मद खाँ वगश से त्योहार मनाने के लिए सूरजमऊ चले जाने की आज्ञा माँगी। छत्रसाल ने अपनी वृद्धावस्था और गिरते हुए स्वास्थ्य की ओर वगश का ध्यान खींचकर उसे यह इगित किया कि अगर उनकी मृत्यु वगश की छावनी मे हो गई, तो उसकी स्थिति और अधिक खराब हो जायगी। वगश को इसमें किसी चाल की गन्ध न आई और उसने छत्रसाल को कुटुम्ब सहित कुछ समय के लिए सूरजमऊ चले जाने की अनुमति दे दी।[६५]

मुहम्मद खाँ वगश को अव छत्रसाल से किसी प्रकार की आशका न थी। वह उनकी ओर से इतना निश्चिन्त हो गया था कि उसने अपने अधिकाश सैनिकों को छुट्टी देकर घर चले जाने दिया और शेष में से भी बहुत सो को विजित प्रदेश मे स्थापित सैनिक चौकियों में स्थानान्तरित कर दिया। उसके पास अव केवल ४००० सवार ही रह गये थे। तभी बुंदेलखड पर मराठो के सभावित आक्रमण की अफवाहे लोगों मे यहाँ-वहाँ फैलने लगीं। वगश मालवा में मराठों की अभी हाल ही की सफलताओं से अवश्य अवगत रहा होगा, पर छत्रसाल के वचनों पर पूर्ण विश्वास होने के कारण उसने इन अफवाहो की ओर तनिक भी ध्यान नही दिया। सभवत मराठो के दक्षिण पूर्वी दुरूह मार्ग से बुंदेलखड में इतनी शीघ्रता से प्रवेश कर सकने की आशका मात्र तक उसके मन में न आई और छत्रसाल के भी उनसे मिल जाने की सभावना पर उसने विचार ही नही किया। इसलिए वगश ने न तो रसद ही एकत्र की और न अपने बिखरे हुए तथा अवकाश प्राप्त सैनिकों को ही वापस बुलाया। वगश को अपनी इस

१८७८, पृ० २९७; इविन० २, पृ० २३७। वरोद के अनुसार छत्रसाल ने अपने राज्य को पुन प्राप्त करने के लिए वगश को ४० लाख रुपये दिये थे।

६५ खुजिस्ता० पृ० ३४, १५२, २१०; वगाल० १८७८, पृ० २९७, इविन० २, पृ० २३७। उस वर्ष होली ४ मार्च को पडी थी।

भयंकर भूल तथा अफवाहों की सत्यता का पता तब चला, जब मराठे उसके पडाव से केवल २२ मील की दूरी पर आ पहुँचे थे।[६६]

४ पेशवा बाजीराव प्रथम की सामयिक सहायता

मराठों ने नवम्बर २९, १७२८ को अमझेरा के युद्ध में विजय प्राप्त कर मालवा में अपना प्रभत्व जमा लिया था।[६७] वे जब वहाँ अपना आधिपत्य दृढ करने में व्यस्त थे, तभी उन्हें छत्रसाल के संदेश प्राप्त हुए थे। छत्रसाल ने चिमाजी अप्पा और पेशवा बाजीराव प्रथम को पत्र लिख कर बंगश के विरुद्ध सहायता की याचना की थी। चिमाजी इस समय उज्जैन में थे और बाजीराव देवगढ की ओर बढ रहे थे। बाजीराव ने छत्रसाल का संदेश मिलते ही सहायता करने का निश्चय कर लिया और चिमाजी को तुरत ही सूचित किया कि वे चाँदा तथा देवगढ होकर बुंदेलखड की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। जनवरी ४, १७२९ को एक दूसरे पत्र में पेशवा ने लिखा कि वह देवगढ से शीघ्र निपट कर बुंदेलखड में प्रवेश करेंगे, अत चिमाजी आवश्यकता पडने पर तुरन्त ही उस ओर आने को तैयार रहे।[६८]

जनवरी के अन्त तक देवगढ के राजा से सन्धि हो गई और तब पेशवा ने मडला[६९]

---

६६ बंगाल० १८७८, पृ० २९७-२९८, इर्विन० २, पृ० २३७, २३८, बरीद० प० १५३ (बी), देसाई० २, पृ० १०५, १०६।

६७ मालवा० पृ० १६३, १६४।

६८ पेशवा० जि० १३, १४, १५, १८, २२, २३, २९, ३० आदि, देसाई० २, पृ० १०५।

डा० दिघे के अनुसार, "पेशवा पर कर्ज बहुत बढ गया था और उसे कम करने के लिए वे नये क्षेत्रों को विजय करने के लिए आतुर हो उठे थे। इन नये क्षेत्रों की खोज में ही पेशवा ने बुंदेलखड में अपनी सेना सहित जाने का निश्चय किया, जहाँ बुंदेला राजा छत्रसाल ने शाही सूबेदार मुहम्मद खाँ बंगश के आक्रमण को रोकने के लिए उनकी सहायता की याचना की थी।" (दिघे पृ० १०४)

कोई दादो भीमसेन नामक एक व्यक्ति ने भी बंगश और छत्रसाल के युद्ध का समाचार पेशवा को अगस्त १७, १७२८ के एक पत्र में दिया था। यह व्यक्ति शायद दिल्ली में पेशवा का प्रतिनिधि था। इस पत्र में उसने पेशवा को इस अवसर से लाभ उठा कर नर्मदा पार कर मालवा विध्वस्त करने का सुझाव दिया था और पेशवा से यह आग्रह किया था कि छत्रसाल को इस आशय का एक पत्र लिख दिया जाय कि मराठा सेनाएँ दशहरे के पश्चात् उनकी सहायता को आ सकेंगी। (पेशवा० जिल्द १३, १०)। इस पत्र से अनुमान होता है कि छत्रसाल ने जैतपुर के पतन के पूर्व भी मराठों की सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न किये थे।

६९ मडला—जबलपुर से लगभग ४८ मील दक्षिण पूर्व।

और गढा[७०] से होकर बुंदेलखड की ओर कूंच किया। फरवरी में ही कभी छत्रसाल के और दूतों ने पेशवा से आकर भेंट की और छत्रसाल की सकटापन्न स्थिति का हृदयद्रावक वर्णन कर पेशवा से बुंदेलखड की ओर अविलम्ब बढने का आग्रह किया।[७१] बाजीराव को स्थिति भाँपते देर नही लगी और वे अपनी विपुल सैन्य सहित वेगपूर्वक बुंदेलखड की ओर चल पडे। उनके साथ इस समय २५,००० सवार थे जिनका नेतृत्व पिलाजी जाधव, नारुशकर, तुकोजी पँवार, और देवलजी सोमवशी जैसे योग्य सेनापति कर रहे थे। पेशवा ने ५ मार्च को खिजरी[७२] में पडाव किया और फिर पवई[७३] के निकट से गुजरते हुए वे तीन दिन पश्चात् विक्रमपुर[७४] आ पहुँचे। सभवत यही से ६ मार्च को दो दूत छत्रसाल को पेशवा के आगमन की सूचना देने भेजे गये, और आठ दूतो की एक टुकडी को बगश की छावनी की ओर रवाना किया गया। एक चिन्तामणि नामक व्यक्ति को भी इन्ही के पीछे छत्रसाल के पास भेजा गया। विक्रमपुर से कूच कर पेशवा १० मार्च को राजगढ[७५] आकर रुके। यही छत्रसाल के पुत्र भारतीचन्द ने उनकी अभ्यर्थना की। भारतीचन्द से स्थिति समझ कर बाजीराव ने तुरन्त ही सेना को

---

७० गढा—मडला से ४८ मील उत्तर-पश्चिम जबलपुर के निकट।

७१ लोकोक्तियो के अनुसार इन दूतो ने स्वय छत्रसाल का लिखा हुआ पत्र पेशवा को दिया। कहा जाता है कि इस पत्र में सौ छद थे। पर इनमें से निम्नलिखित केवल एक ही जनता की स्मृति में सुरक्षित रह पाया है —

जो बीती गज-ग्राह पर, सो गति भई है आज।
बाजी जात बुंदेल की, राखो बाजी लाज॥

एक हिन्दी साहित्य के विद्वान श्री भागीरथ प्रसाद का अनुमान है कि इन दूतों में एक महाकवि भूषण भी थे और उनका विचार है कि यह पद भी उन्हीं का रचा हुआ है। अपने इस अनुमान के समर्थन में वे किसी तथ्य का उल्लेख नहीं करते। (दीक्षित० पृ० १४४)

छत्रसाल का ही इस पत्र को लिखना सभव हो सकता है। वे स्वय अच्छे कवि थे और उनके द्वारा रचित पद्यो में गज-ग्राह के पौराणिक युद्ध का उल्लेख भी आया है।

छत्र० प्र० पृ० ३०, ३१, छद २, देसाई० २, पृ० १०६ और महामहोपाध्याय द० वा० पोतदार का 'मराठाज इन दी लेंड आफ ब्रेव बुंदेलाज' नामक लेख भी देखें।

७२ खिजरी—सभवत खजूरी जो जबलपुर से लगभग १८ मील उत्तर पश्चिम में है। बुंदेलखड के इस अभियान में पेशवा ने जिस मार्ग का अनुसरण किया एव वह जिन स्थानों से होकर गुजरे उसकी जानकारी के लिए वाड० २, पृ० २२६, २३०, पेशवा० जि० ३०, पृ० २८८-२८६ देखें।

७३ पवई—पन्ना से ३० मील दक्षिण।

७४ विक्रमपुर—पवई से १८ मील उत्तर पश्चिम।

७५. राजगढ—विक्रमपुर से १२ मील उत्तर पश्चिम।

महोवा की ओर वढने के आदेश दिये और मराठे वसारी[७६] से होकर १२ मार्च को महोवा[७७] के समीप आ पहुँचे। छत्रसाल के एक और पुत्र ने यहाँ पेशवा का स्वागत किया। १३ मार्च को स्वय छत्रसाल वाजीराव से आकर मिले और उन्होने पेशवा का यथायोग्य सत्कार कर उपहार भेट किये। १७ मार्च को छत्रसाल ने फिर पेशवा से मिलकर गुप्त मत्रणा की और उन्हे ८० मोहरें भेंट की।[७८]

इधर मुहम्मद खाँ वगश को अव अपनी सकटापन्न स्थिति का ज्ञान हुआ। पर उसने साहस से काम लिया और तुरन्त ही किसी प्रकार १०,००० सवारो और १०,००० पैदलो की सैन्य सगठित कर अपने पडाव के आस पास खाइयाँ खोद कर दृढ मोर्चावन्दी कर ली। स्थानीय जागीरदारो और जमीदारो से उसे किसी प्रकार की सहायता न मिल सकी। केवल सौधा का राजा जयसिह ही उसके साथ था। पर स्थिति की गभीरता से वह भी प्रभावित हुए विना न रह सका। उसने अपनी सेना के १,००० सैनिको मे से केवल १०० सवार और १०० पैदलो को छोड कर शेप सवको चले जाने दिया। ओरछे के राजा का भाई लक्ष्मण सिह कुछ समय तक तो वगश के साथ रहा, पर वह भी शीघ्र ही कोई वहाना कर अपने ४-५ हजार सैनिका सहित वहाँ से चलता वना। वगश की स्थिति धनाभाव के कारण और भी सकटमय हो गई थी। चकला कडा की मालगुजारी अभी प्राप्त नही हुई थी। इधर गोला वारूद और रसद आदि की भी कमी थी। अतएव वगश ने सम्राट् के पास वार वार दूत दौडा कर एक हजार मन शीशा और एक हजार मन वारूद, दो वडी तोपें तथा १५ रहकला[७९] तुरन्त भेजने का आग्रह किया और अपने पुत्र कायम खाँ को शीघ्रातिशीघ्र ताराहवन से जैनपुर आने को लिखा।[८०]

मराठी सेना के कुछ हरावली दस्ते मुहम्मद खाँ वगश के पडाव से दो मील की दूरी पर अजनार की पहाडियो मे १२ मार्च को ही आ पहुँचे थे। इन दस्तो के सैनिको ने चलते हुए पशुओ को हका कर भगा ले जाने के प्रयत्न किये। पर वगश के सैनिको की सतर्कता से

७६. वसारी—राजगढ से १६ मील पश्चिम उत्तर और छतरपुर से ११ मील पूर्व दक्षिण।

७७ महोवा—छतरपुर से ३२ मील उत्तर पूर्व।

७८ सुजिस्ता० पृ० २१०, पेशवा० जि० २२, पृ० २२, २३, २४, पेशवा० जि० ३०, पृ० २८८-२८६, वाड० २, पृ० २२६-२३०, वगाल० १८७८, पृ० २६८, देसाई० २, पृ० १०६।

७९ रहकला एक प्रकार की छोटी तोप होती थी। यह पहियोदार एक छोटी सी गाडी पर लगी होती थी, जिसे वैल खींचते थे। (आर्मी ऑफ दी इडियन मोगल्स-इर्विन, पृ० १३६)।

८० वगाल० १८७८, पृ० २६८।

उन्हे विफल होकर लौट जाना पडा। दूसरे दिन यह दस्ते और अधिक समीप आ गये और मराठो ने ऊँटो, खच्चरो आदि भार-वाहक पशुओ को जो घास की खोज में आगे बढ गये थे, काट डाला। बगश ने इसके प्रत्युत्तर में १५ मार्च को अचानक उन पर आक्रमण कर दिया। पर वे बच निकले।[८१]

बाजीराव ने अपनी मुख्य सेना के साथ जैतपुर की ओर १९ मार्च को बढना प्रारम्भ किया। इसी बीच में आस-पास के बहुत से जमीदार भी अपने सैनिको सहित इस सेना मे आ मिले थे जिससे इसकी सख्या बढ कर लगभग ७०,००० हो गई थी। मराठो और बुंदेलो की इस सयुक्त सेना ने मुहम्मद खाँ बगश की छावनी को चारो ओर से घेर कर आवागमन के मार्ग अवरुद्ध कर दिये, जिससे मुसलमानो को रसद मिलनी बन्द हो गई। अनाज के भाव एक दम बढ गये। खराब से खराब अनाज का भाव २० रुपया प्रति सेर हो गया और अन्य खाद्य पदार्थ तो किसी भी मूल्य पर प्राप्य नही रह गये थे। अगले दो माह तक बगश के सैनिको ने किसी प्रकार ऊँटो, घोडो और बैलो के माँस पर निर्वाह किया। किन्तु मराठो ने कही भी अपने घेरे में शिथिलता न आने दी।[८२]

क़ायम खाँ को अपने पिता की सकटमय स्थिति के समाचार मिल चुके थे। वह रसद और सैनिक कुमक लेकर वेग से जैतपुर की ओर बढा और अप्रैल समाप्त होते सूपा[८३] तक आ पहुँचा। अब बाजीराव ने बगश की छावनी के घेरे को ढीला कर मराठो की एक शक्ति-शाली सेना को कायम खाँ का सामना करने भेजा। मराठो का ध्यान बँट जाने से बगश के क्षुधित और आतकित सैनिको को बच निकलने का सुअवसर मिल गया। उनमें से अधि-काश छावनी छोड कर जैतपुर की ओर भाग निकले। केवल एक हजार सैनिक ही अब बगश के साथ रह गये थे। तभी बुदेलो ने अजनार की पहाडियो से निकल कर बगश की छावनी पर छापा मारा। तीन घटे तक घमासान युद्ध हुआ। अत में बगश को विवश होकर अपने बचे-खुचे सैनिको सहित जैतपुर के किले में शरण लेनी पडी। इसी बीच में २७ अप्रैल को सूपा के युद्ध में मराठो ने कायम खाँ को बुरी तरह पराजित कर भगा दिया। मराठो के हाथ बहुत-सा लूट का माल लगा। इस लूट में ३,००० घोडे और १३ हाथी भी शामिल थे।[८४]

---

८१. खुजिस्ता० पृ० २११, बगाल १८७८, पृष्ठ २९८-२९९, ईर्विन० २, पृ० २३८।

८२. बगाल० १८७८, पृ० २९८, २९९, ईर्विन० २, पृ० २३८, पेशवा० जि० १३, ४५, जि० ३०, पृ० २८९।

८३. सूपा—जैतपुर से १२ मील उत्तर-पूर्व।

८४ बंगाल० १८७८, पृ० २९९, ईर्विन० २, पृ० २३८, २३९, राजवाडे० ३, पृ० १४, पेशवा० जि० ३०, पृ० २८६, २९१, देसाई० २, पृ० १०७। इस लूट के १३ हाथियों में से एक तो हिरदेसाह को भेंट दिया गया और बाकी साहू के पास भेज दिये गये।

अब मराठों और बुंदेलों ने मिलकर जैतपुर के किले का घेरा डाला।[८५] पहले तो उन्होंने एकदम धावा करके किले पर अधिकार करने के प्रयत्न किये, किन्तु भारी तोपों के अभाव में वे सफल न हो सके। तब उन्होंने किले में फँसी हुई मुसलमानी सेना की रसद बन्द कर उसे आत्मसमर्पण करने को बाध्य करने की योजना बनाई। यह घेरा लगभग चार महीने तक चलता रहा। मुसलमानों की रसद समाप्त हो गई। भूख से व्याकुल होकर वे अपने घोड़ों और तोपें खींचने वाले बैलों तक को मार कर खा गये। किसी भी प्रकार का भोजन उपलब्ध नहीं था। जो भी थोड़ा-बहुत आटा मिलता था, वह भी १०० रुपयों का केवल एक ही सेर आता था। यह आटा देनेवाले भी मराठे थे। कुछ मराठे सैनिक रात में आटा लेकर किले की दीवालों के नीचे आ जाते थे। इस आटे में आधा हड्डियों का चूरा मिला रहता था। किले के भीतर से रुपये एक रस्सी में बाँध कर नीचे लटका दिये जाते थे और मराठे उन्हें खोल कर आटा बाँध देते थे। तब यह रस्सी ऊपर खींच ली जाती थी। मुसलमानों की दशा बहुत शोचनीय और असह्य होती जा रही थी। बहुत से भूख की दारुण यन्त्रणा से छटपटा कर मर गये, एवं बहुत से किसी प्रकार किले से भाग निकले और मराठों को अपने हथियार सौंप कर चले गये।[८६]

मुहम्मद खाँ बंगश ने हताश होकर बार-बार सम्राट, दरबार के उच्च पदस्थ अमीरों, और राजाओं के पास चरों को भेजकर यथासंभव शीघ्र कुमक भेजने की प्रार्थना की। पर व्यर्थ। सम्राट ने बख्शी खान दौरान समसमउद्दौला को जैतपुर की ओर कूच करने के आदेश भी दिये, पर वह एक न एक बहाना कर उन्हें टालता ही रहा। इतना ही नहीं, उसने बुंदेलों को 'बुद्धिहीन सम्राट' द्वारा बंगश की सहायतार्थ सेना भेजने की सूचना भी दे दी और छत्रसाल को सुझाव दिया कि अगर वे उसके शत्रु मुहम्मद खाँ बंगश का सिर काटकर सम्राट को नजर कर सकें, तो उनके सम्मान एवं पद में आशातीत वृद्धि होगी। खान दौरान सम्राट को यह समझाने में भी सफल हुआ कि अगर बंगश जैसे वीर और दुस्साहसी सेनापति की शक्ति अधिक बढ़ गई तो वह किसी भी समय विद्रोह कर सम्राट की स्थिति संकटमय बना दे सकता है।[८७] फल यह हुआ कि बंगश को कहीं से भी कोई सहायता प्राप्त नहीं हो सकी। सब ओर से निराश होकर अब बंगश ने अपने पुत्र कायमखाँ को अवध के सूबेदार बुरहानुलमुल्क से फैजाबाद में मिलकर कुछ सहायता प्राप्त करने को कहला भेजा। लेकिन बुरहानुलमुल्क ने

---

८५ इर्विन (बंगाल० १८७८, पृ० ३०२) के अनुसार जैतपुर का घेरा मई, १७२९ के मध्य में प्रारम्भ हुआ था जबकि पेशवा० (जि० ३०, पृ० २८६) के अनुसार मराठों ने २६ अप्रैल को यह घेरा डाल दिया था। पेशवा० का उल्लेख ही अधिक मान्य होना चाहिए।

८६ बंगाल० १८७८, पृ० ३००, इर्विन, २, पृ० २३६, सियार० पृ० २६१; दिल्ली० पृ० १०३।

८७ यशोद० पृ० १५३ (बी) १५४ (ए), इर्विन० २, पृ० २३६-२४०।

सहायता देना तो दूर रहा, उल्टे क़ायम ख़ाँ को ही बन्दी करना चाहा। उसके इस विश्वासघात से उसकी सेना के पठान सैनिक अत्यन्त कुपित हो उठे और उनमें से लगभग १,२०० कायमखाँ से जाकर मिल गये। क़ायम ख़ाँ को वानगढ[८८] के अली मुहम्मद ख़ाँ से भी कुछ सैनिक प्राप्त हुए। कायम ख़ाँ तव अपनी पैतृक जागीर मऊ शम्शावाद[८९] में आया। यहाँ उसने लगभग ३०,००० नये सैनिको को १०० रुपये माहवार वेतन देने का लोभ देकर भरती किया और उनका विश्वास प्राप्त करने को अपनी पैतृक सपत्ति वेंच कर तथा वहुत सा धन स्थानीय महाजनो से उवार लेकर उनके वेतन का कुछ भाग अग्रिम भी दे दिया। अव कायम ख़ाँ ने इस सेना के साथ वुंदेलखड की ओर अपने पिता की सहायतार्थ प्रस्थान किया।[९०]

इवर जैतपुर के किले पर शत्रुओ का दवाव निरन्तर वढता जा रहा था। वगश की स्थिति दिन प्रति दिन विगडती जा रही थी। उसके सैनिक खाद्य पदार्थों के अभाव में अघमरे हो चुके थे। किसी ओर से भी सहायता प्राप्त होने की आशा न होने से उनका नैतिक वल भी क्षीण हो चुका था। ऐसी दशा में वगश का अविक दिनो तक टिक सकना असभव दिखने लगा था। किन्तु इसी वीच में मराठो की छावनी में भयकर महामारी फैल गई और सहस्रो मराठे सैनिक उससे पीडित होकर मर गये। महामारी से घवडा कर और वर्षा ऋतु भी समीप होने के कारण मराठे अव घर लौटने को आतुर हो उठे थे। इसलिए पेशवा वाजीराव अव वुंदेलखड में और अधिक न ठहर सके और उन्होने मई २२, १७२९ को दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दिया।[९१]

पेशवा के चले जाने पर भी छत्रसाल अपने २०,००० सैनिको सहित जैतपुर का घेरा डाले पडे रहे। दो माह इसी तरह और निकल गये। तभी छत्रसाल को कायम ख़ाँ के वुंदेलखड की ओर आने के समाचार प्राप्त हुए। उसकी सेना यमुना पार कर चुकी थी। इसलिए अव छत्रसाल ने मुहम्मद ख़ाँ वगश से कायम ख़ाँ के आने के पूर्व ही सवि कर लेने में कुशल समझी। वगश को अभी कायम ख़ाँ के वुंदेलखड में आगमन की सूचना प्राप्त नही हुई थी। अतएव उसने तुरन्त ही सधि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इस सवि के अनुसार वगश ने अगस्त १७२९ ई० में जैतपुर के किले को खाली कर दिया और छत्रसाल के राज्य पर फिर कभी आक्रमण न करने का वचन दिया। छत्रसाल ने भी उसे पूर्व निश्चित राज्य कर देना स्वीकार कर लिया और वंगश को उसके वचे-खुच सैनिको सहित अपनी सेना के वीच से सुरक्षित निकल जाने

---

८८ वानगढ—वदायूँ से १० मील उत्तर।

८९. मऊ शम्शावाद—फर्रुखावाद से १० मील उत्तर पश्चिम।

९०. वंगाल० १८७८, पृ० ३०१; ईर्विन० २, पृ० २४०।

९१. पेशवा० जि० ३०, पृ० २८९, ईर्विन० २, पृ० २४०। मई ४, १७२९ ई. को ब्रह्मेन्द्र स्वामी को लिखे एक पत्र में चिमाजी अप्पा ने भी वाजीराव के बुंदेलखड में इस अभियान का उल्लेख किया है (ब्रह्मेन्द्र स्वामी, चरित्र, पृ० ६८)।

दिया। मार्ग में मुहम्मद खाँ की भेंट कायम खाँ से हुई। कायमखाँ बुंदेलो से पुन युद्ध करने को आतुर हो रहा था। पर बगश इससे सहमत न हुआ। शायद उसने हाल ही में बुंदेलो से की गई सधि को तोडना असम्माननीय समझा और फिर लुप्त होते हुए मुगल साम्राज्य एव कृतघ्न सम्राट के लिए तुरन्त ही फिर छत्रसाल से दूसरा युद्ध प्रारम्भ कर सकटो को आमत्रण देना भी उसे मूर्खतापूर्ण प्रतीत हुआ। उसने कायम खाँ के साथ २३ सितम्बर को कालपी के निकट यमुना पार की और फिर कभी बुंदेलखड पर आक्रमण नही किया। हिजरी ११४४ (जुलाई १७३१-जून १७३२) में बगश को इलाहाबाद की सूबेदारी से हटा कर सर बुंलद खाँ को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया गया।[६२]

---

६२ बगाल० १८७८, पृ० ३०१, ३०४, इर्विन० २, पृ० २४०-२४१, वरोद० पृ० १५४ (ग), मा० उ० ३, पृ० ७७१, ७७२, मियार० पृ० २६१, २६२।

मियार० का यह उल्लेख गलत है कि कायम खाँ ने मुहम्मद खाँ बगश को जैतपुर के घेरे से मुक्त किया।

छत्रसाल और बाजीराव

: ६ :

१. पेशवा को तिहाई राज्य देने का वचन

मुहम्मद खाँ बंगश के विरुद्ध सामयिक सहायता देकर पेशवा बाजीराव प्रथम ने छत्रसाल को अपने कृतज्ञतापाश में आवद्ध कर लिया था। छत्रसाल अब बहुत ही वृद्ध हो गये थे। वे अपने पुत्रों की अयोग्यता और आपसी द्वेष को भी भलीभाँति समझते थे, अतएव उन्होंने अपने राज्य को शत्रुओं से सुरक्षित बनाये रखने के लिए बाजीराव प्रथम की सहायता तथा समर्थन प्राप्त कर लेना आवश्यक समझा और इसीलिए कृतज्ञता एव राजनीतिक कारणों से प्रेरित होकर उन्होंने पेशवा को अपना पुत्र मानकर राज्य का तीसरा भाग उन्हें देने का वचन दिया।[1] बुंदेलखंडी जनश्रुतियों के अनुसार छत्रसाल ने मस्तानी नामक इतिहास प्रसिद्ध नर्तकी भी इसी समय बाजीराव को भेंट की थी।[2] इस प्रकार पेशवा के इस बुंदेलखंड में

---

१. पन्ना० २०, ३६, ६२, ६३, ६१, ६२, ६४; देसाई० २, पृ० १०७; गोरे० पृ० २१८, २२०, मराठ्यांचे पराक्रम (बुंदेलखंड प्रकरण) पृ० ७३-७५।

पन्ना पत्र सग्रह में छत्रसाल द्वारा बाजीराव को लिखा केवल एक ही पत्र (पन्ना० २०) प्राप्त हुआ है। छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् यह पत्र पन्ना० ६४ के अनुसार बाजीराव ने हिरदेशाह के देखने के लिए भेजा था, इसलिए यह पन्ना में उपलब्ध हो सका है। इस पत्र (पन्ना० २०) में छत्रसाल बाजीराव को लिखते हैं, "बंगेस की लडाई में हमने तुमको बुलावी तुमने फतै करी ऊ को भगा दवो हम तुमारे ऊपर षुसी है तुमने बुढ़ापे में बडी मिरजाद राषी तीपाय तुमको राज सें तीसरो हीसा मिल है अबै हम ईसें नहो देत कें लडे भिडे से कछु जाधा और मिल गई पन्द्रह बीस लाष की तो फिर सब हिसाव लगा कें तीसरो हीसा दवो जैं है ई में ससेय ना समझियो हाल में दो लाख रुपैया तुमारे पर्च को दये जात हैं सो ले जावो और वषत बेरा की षवर लगाये रहीयो।"

२ मस्तानी के प्रारम्भिक जीवन के सबंध में कोई भी विश्वसनीय विवरण उपलब्ध नहीं है। अधिकतर यही धारणा प्रचलित है कि छत्रसाल ने ही उसे पेशवा को भेंट किया था। बुंदेलखंडी जनश्रुतियों के अनुसार वह छत्रसाल की मुग़लानी उपपत्नी से उत्पन्न कन्या थी। विशेष जानकारी के लिए निम्नलिखित ग्रन्थ देखें —

देसाई० २, पृ० १०८, १७८ १८०; मराठी रियासत (५), पृ० ४०३-१५, नाग० प्रचा० पत्रिका, जि० ६, पृ० १७६-८०; पेशवा० जि० ६, ३०-३४, ३५, ३६;

अभियान मे छत्रसाल और मराठो के आपसी सबधो में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सम्राट् मुहम्मदशाह के राज्यकाल के प्रारम्भिक महीनो तक छत्रसाल मराठो के विरुद्ध मालवा में शाही सूबेदारो और सेनापतियो से सहयोग करते रहे थे।[3] पर अब उन्होने इस विरोध को सदैव के लिए त्याग कर मराठो से मैत्रीपूर्ण और सहयोगात्मक सबध स्थापित किये।

छत्रसाल ने बाजीराव को अपने राज्य का तिहाई भाग देने का वचन तो दे दिया था, पर जैसा कि उनके पत्रो से विदित होता है उनकी इच्छा जहाँ तक हो सके, वहाँ तक उसे टालते रहने की ही थी। अपने पुत्र हिरदेसाह को उन्होने एक पत्र मे सलाह दी थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् भी जहाँ तक बन पडे, वहाँ तक पेशवा को उनका भाग देने में विलम्ब किया जाय और पेशवा के दूतो या प्रतिनिधियो को छोटी-छोटी रकमे देकर ही सतुष्ट रखा जाय। इतना ही नही, छत्रसाल ने पेशवा को अपने राज्य की आय भी कम बताई थी, ताकि उन्हे कम से कम भाग देना पडे। छत्रसाल के राज्य की वास्तविक आय डेढ करोड थी पर पेशवा को उन्होने केवल एक ही करोड बताई थी।[4] छत्रसाल के लिए यह बात शोभनीय नही थी, लेकिन जीवन भर कठोर सघर्ष कर उन्होने जिस राज्य का निर्माण किया था उसे वे अपने ही जीवन में खडित होते देखना नही चाहते थे। छत्रसाल को विवशता की स्थिति में पेशवा को तिहाई राज्य का वचन देना पडा था, किन्तु हृदय से वे यही चाहते थे कि उनके राज्य का अधिकांश भाग उनके उत्तराधिकारियो के लिए ही सुरक्षित रहे। इसीलिए उन्होने पेशवा को अपने राज्य की आय कम बताई थी। छत्रसाल का ऐसा करना परिस्थितियो को देखते हुए स्वाभाविक ही था।

भारत इतिहास सशोधक मडल त्रैमासिक जि० ६, श्री दिवेकर का लेख, पोतदार का मराठाज इन दी लेंड आफ दी बुंदेलाज नामक लेख, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, मार्च ११, १९५६ में 'मस्तानी और पेशवा बाजीराव की अनोखी प्रेम गाथा' शीर्षक से प्रकाशित मेरा लेख, दिघे० पृ० २०१।

३ इसी ग्रथ का चौथा अध्याय देखें।

४ पन्ना० २०, ३९।

छत्रसाल अपने दूसरे पत्र (पन्ना० ३६) में हिरदेसाह को लिखते हैं —

"डेड किरोड की रियास्त हमारी हैं रही पेसवा को एक किरोड की बताही हती तो मे से पच्चीस तीस लाष की मैमार जागीरदार वगैरह को दै दई पचहत्तर लाष की जाघा है हमारो राय जा है सं अबै लो हमने बन को तीसरा हीसा नहीं दयो न देन विचारे आये पेसवा ने अपने लडका (?) को पठवायो हतो तिहरा मध्यं सो मन भर दयो है या एर लाष रंसा दयो है निहरा नहीं दयो तुमको चाहियं के हमारे वपरांत जहाँ लो बनं तहाँ ला पेसवा को तिहरा न दयो जायं जब आबै तब कछू रुपइया दै दये जावं आगे फिर देखी जैहै।"

२ बाजीराव और छत्रसाल के उत्तराधिकारी

छत्रसाल ने मराठो से जो मैत्रीपूर्ण सबध स्थापित किये थे, वे उनके पश्चात् भी ज्यो के त्यो रहे और उनके पुत्र उत्तरी भारत में मराठो की शक्ति के प्रसार में भरपूर सहयोग करते रहे।[५] छत्रसाल की मृत्यु (दिसम्बर ४, १७३१) के कुछ ही समय पश्चात् उनके पुत्र हिरदेसाह और जगतराज ने दो लाख की जागीरें पेशवा के प्रतिनिधियो को सौंप दी।[६] बाजीराव ने भी छत्रसाल की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए एक सवेदनापूर्ण पत्र हिरदेसाह को भेजा और उन्हें सकट मे हर प्रकार की सहायता देने का आश्वासन दिया।[७] सन् १७३२ के अन्त के लगभग चिमाजी अप्पा को छत्रसाल के राज्य में से पेशवा का भाग निश्चित करने और स्थानीय राजाओ से राज्यकर वसूल करने के लिए बुंदेलखड भेजा गया। चिमाजी ने आते ही गोविन्द बल्लाल खेर को हिरदेसाह और जगतराज के पास रवाना किया। गोविन्द बल्लाल ने जगतराज से एक लाख और हिरदेसाह से सवा लाख की जागीरें एव राजगढ का क़िला प्राप्त किया।[८] पर छत्रसाल द्वारा निर्धारित उनके राज्य का तिहाई भाग अभी भी पेशवा को प्राप्त न हो सका और जैसा कि पेशवा बाजीराव के कुछ पत्रो से विदित होता है, छत्रसाल के उत्तराधिकारी उसे बहुत समय तक टालने में सफल हुए।[९]

---

५. बुंदेलखड में बाजीराव के समय में मराठो के प्रसार के लिए, पेशवा० जि० १४; ७-९, १२, १३, २३, ३९, ४६, ५२ और जि० १५; ४, ८-१६, ८७-९० आदि देखें।

६. पन्ना० ९०।

७ पन्ना० ९१। इस सवेदनापूर्ण पत्र में भी बाजीराव छत्रसाल के राज्य में अपने तिहाई भाग को नहीं भूलते, और पत्र की अन्तिम पक्तियों में उसकी ओर संकेत करते हुए लिखते हैं :—

"महाराज नें हमकौ लडका करकें मानो है, सो मैं वही तरा आपको अपनौ भाई समझौ हो जब काम परैं हाजर होकें तामील करो और तिहरा महाराज ने कह दयौ रहै ऊ को षयाल आपको चाहिए हमको कछ्, नहीं कहनैं है आप षुद समझदार हैं।"

८ पेशवा० जि० १४, ७-९।

९ पन्ना० ९४, ९६। यह दोनो पत्र बाजीराव ने हिरदेसाह को लिखे हैं। पहिले पत्र (पन्ना० ९४, फरवरी १२, १७३४) में बाजीराव अपने तृतीय भाग को शीघ्र हस्तांतरित न करने पर हिरदेसाह पर अपना असतोष व्यक्त करते हुए लिखते हैं :—

"जो आगे पत्र लिषौ रहैं, तौ मैं तिहरा कैं होसा मधें लिषी रहै ऊ को जवाव कछु ना दवौ गयौ आप झूठी समझत होवें के तिहरा महाराज (छत्रसाल) ने नहीं कहो वजनत असल पातिरी महाराज की वकसी मुसद्दी की लिषी भयी सही मुहर के यहा से पठवाई है नजर होकर भेज देवी और आप ना पठआवैं तो कछ् हरज नहीं है जा बात सब कोऊ जानत

पेशवा बाजीराव प्रथम ने अपना भाग प्राप्त करने के लिए छत्रसाल के पुत्रो के प्रति कठोरता का वर्ताव करना उचित नही समझा। वे केवल पत्रो द्वारा ही अपना असतोष व्यक्त करते रहे। बाजीराव को उत्तरी भारत में और विशेपकर बुंदेलखड में मराठा साम्राज्य के प्रसार के लिए छत्रसाल के उत्तराधिकारियो के सहयोग की आवश्यकता थी। इसीलिए शायद वे उन पर अधिक दवाव न डाल सके। और फिर पेशवा के हृदय में छत्रसाल के प्रति बहुत सम्मान भी था।[१०] इन्ही कारणो से बाजीराव ने छत्रसाल के पुत्रो के प्रति बहुत ही उदारतापूर्ण नीति अपनाई। हिरदेसाह और जगतराज से पेशवा ने कई सधियाँ कीं और शत्रुओ के आक्रमण करने पर उन्हे भरपूर सहायता देने का आश्वासन दिया। इन सधियो मे पारस्परिक सहयोग की जो बातें निश्चित की गई थी उनमें ये भी थी कि मिलकर शाही प्रदेशो की जो लूट की जाय, तो लूट का माल आपस में सेना के अनुपात से बाँट लिया जाय तथा एक दूसरे के यहाँ से भागे हुए जागीरदार, सबधियो और कर्मचारियो को शरण न दी जाय।[११]

परिणामत पेशवा बाजीराव और छत्रसाल के पुत्रो के सबध मैत्रीपूर्ण ही रहे। बाजीराव ने एक निष्ठावान पुत्र की तरह छत्रसाल की छतरी का तिहाई व्यय भी देना स्वीकार किया। इस छतरी का निर्माण भी उनके जीवन काल में प्रारम्भ हो गया था। पर पेशवा

है कै वगस की लडाई में पेसवा कौ महाराज छत्रसाल ने अपने राज सै तीसरो हीसा देन कहो है चाहिये कै लिपो पै आपको पयाल करो चाहिये।"

दूसरा पत्र (पन्ना० ९६, जुलाई १२, १७३८) एक सधि पत्र की तरह है जिसमें बाजीराव ने तिहाई भागकी माग करते हुए ५ लाख की जागीरो की प्राप्ति स्वीकार की है। यह पत्र भी बुंदेलखडी में है। इसकी ज्यो की त्यो मराठी नकल राय बहादुर चीमा जी वाड द्वारा सकलित "ट्रीटीज, एग्रीमेंट्स एण्ड सनदस" में पृ० ९-१० पर दी गई है। इस सधि-पत्र को बुंदेलखडी और मराठी दोनो में ही लिखे जाने से यह स्पष्ट है कि पेशवा द्वारा बुंदेलखड के राजाओ को भेजे जाने वाले पत्र बुंदेलखडी में ही लिखे जाते थे और महत्त्वपूर्ण पत्रो की प्रतिलिपि मराठी में कर ली जाती थी।

उपर्युक्त दोनो पत्रो के उल्लेखो के आधार पर डा० दिघे (पृ० ११३) का यह कथन कि छत्रसाल के "राज्य का बटवारा निर्विरोध हो गया" उचित नहीं जान पडता। छत्रसाल के पुत्रो और पेशवा में राज्य का विभाजीकरण धीरे-धीरे टुकडो में हुआ था, और पेशवा को अपना भाग प्राप्त करने के लिए दबाव भी डालना पडा था।

१० हिरदेसाह और जगतराज को लिखे सवेदना के पत्र (पन्ना० ९१) में बाजीराव छत्रसाल को 'कका जू' कह कर सबोधित करते है। छत्रसाल के पुत्र भी उन्हें कका जू कहते थे।

११ पन्ना० ९०, ९१, ९३, ९६।

की अकाल मृत्यु (अप्रैल २८, १७४०) से उसका निर्माण कार्य पूरा न हो सका। यह अपूर्ण छतरी अभी भी जैसे पेशवा बाजीराव की कई अपूर्ण आकांक्षाओ की प्रतीक-स्वरूप मऊ महानियाँ में धुबेला ताल के निकट स्थित है।[१२]

---

१२. धुवेला ताल मऊ सहानिया से एक मील पर है। मऊ सहानिया मध्यप्रदेश में नौगांव से ४ मील दक्षिण में है। इसी छतरी के पास ही हिरदेसाह और जगतराज द्वारा बनवाई छत्रसाल की एक दूसरी छतरी है, जहा अभी भी छत्रसाल के सिरोपाव और जामे की पूजा होती है।

छत्रसाल और प्रणामी गुरु स्वामी प्राणनाथ : ७ :

१. प्रणामी सप्रदाय प्रवर्त्तक श्री देवचद्र

प्रणामी सम्प्रदाय [1] के प्रवर्त्तक देवचन्द्र का जन्म अमरकोट के एक कायस्थ परिवार मे आश्विन सुदि १४, सवत् १६३८ वि० (अक्तूबर ११, १५८१ ई०) को हुआ था। उनके पिता मत्तू मेहता एक धनी व्यापारी थे और उनकी माता कुँवरबाई बडी ही धर्मपरायणा स्त्री थी। देवचन्द्र पर माता के धार्मिक जीवन का बहुत प्रभाव पडा था और बचपन से ही उनका झुकाव धर्म और आध्यात्मिक प्रश्नो की ओर अधिक था।[2]

तेरह वर्ष की आयु में एक बार देवचन्द्र अपने पिता के साथ कच्छ गये। यही उनकी भेंट हरिदास गुँसाई से हुई। देवचन्द्र इनसे बहुत प्रभावित हुए और कुछ समय पश्चात् उनके शिष्य भी हो गये। व्यापारिक वस्तुएँ क्रय-विक्रय करने के पश्चात् मत्तू मेहता पुत्र सहित अमरकोट लौट आये। भोजनगर में हरिदास गुँसाई से भेंट होने के पश्चात् देवचन्द्र का झुकाव आध्यात्म की ओर और भी अधिक हो गया। वे तीन वर्षो तक बहुत ही लगन से धर्म-ग्रथो का अध्ययन करते रहे। इस अध्ययन से उनकी जिज्ञासा और भी बढी, तथा अनेक धर्म सबधी शकाएँ उनके मन में अकुरित हुई। उनका हृदय अशात रहने लगा और वे एक दिन गृह त्याग कर कच्छ की ओर चल पडे। इस समय उनकी आयु केवल १६ वर्ष और ७ महीने की थी। कच्छ में आकर उन्होंने विभिन्न धर्मो के विद्वानो और सतो का सत्सग कर मन की अशाति दूर करने के प्रयत्न किये और उस समय वहाँ प्रचलित सप्रदायो के सिद्धान्तो का भी ज्ञान प्राप्त किया। मूर्त्ति पूजा और तपस्या की ओर से उनकी श्रद्धा कम होने

---

१ यह सम्प्रदाय निजानन्द सप्रदाय, प्रणामी और धामी तथा प्राणनाथी सप्रदायो के नाम से भी विख्यात है। इस सप्रदाय के प्रवर्त्तक देवचन्द्र को निजानन्द भी कहते थे, इसलिए इस सप्रदाय को निजानन्द सप्रदाय कहा जाने लगा। प्रणामी शब्द 'प्रणाम' से बना है। इस सप्रदाय के अनुयायी एक दूसरे से मिलने पर प्रणाम करते है, इसलिए इसका नाम प्रणामी सप्रदाय पड गया। इसी प्रकार इस सम्प्रदाय के दूसरे और प्रमुख प्रचारक स्वामी प्राणनाथ जी के कारण इसे प्राणनाथी नाम दे दिया गया। प्रणामी सप्रदाय के अनुयायी पन्ना को 'धाम' कहते है, इसलिए केवल पन्ना में रहने वाले प्रणामियो को धामी कहा जाता है। भारत के अन्य भागों में यह सप्रदाय प्रणामी सप्रदाय के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है।

२ मेहराज० पृ० ४, वृत्तान० पृ० ४,५।

लगी। वे विद्वान मौलवियो से भी मिले। पर उनकी शकाओं का समाधान न हो सका। देवचन्द्र ने फिर वेदो का अध्ययन प्रारम्भ किया, किन्तु उनके जिज्ञासु हृदय को तब भी तृप्ति न हुई।[3]

प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायो के तुलनात्मक अध्ययन से देवचन्द्र के लक्ष्य में उन सबकी अंतर्निहित एकता तो आ गई थी, पर अभी भी वे अपने लिए कोई मार्ग निश्चित न कर सके थे। वे तब भोजनगर में जाकर हरिदास गुसाई से मिले और उनके पास ही रहने लगे।[4] हरिदास गुंसाई राधावल्लभ सम्प्रदाय के थे। उनके सपर्क में आने से देवचन्द्र भी अब इसी सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। उन दिनो राधावल्लभ सम्प्रदाय का कच्छ में बहुत ही बोलबाला था। इसमें बालकृष्ण की उपासना होती थी। यह कृष्ण की व्रजलीला को ही अधिक महत्त्व देता था और इसके अनुयायी अपने आपको कृष्ण की सखियाँ समझ कर सखी भाव से बालकृष्ण की उपासना करते थे। वे कृष्ण को परमात्मा और सखियो को या स्वय को परमात्मा की खोज में भटकी हुई आत्माएँ मानते थे। राधावल्लभ सम्प्रदाय के लोग बालमुकुन्द की मूर्ति की पूजा करते थे और भागवत पुराण का ही धर्म-ग्रथ की तरह पारायण करते थे। देवचन्द्र ने भी भागवत का अध्ययन किया जिसके फलस्वरूप एक नवीन धर्म की कल्पना उनके मन में उदय हुई।

देवचन्द्र को अब गृहत्याग किये ४ वर्ष हो चुके थे। उनके माता-पिता उनकी खोज करते हुए हरिदास गुंसाई के पास आ पहुँचे। उन्होने देवचन्द्र को सासारिक मोहो में लिप्त कर आध्यात्म की ओर से उन्हें विमुख करने के लिए किसी प्रकार समझा-बुझाकर उनका विवाह भी कर दिया। पर वे देवचन्द्र को उनके मार्ग से विचलित न कर सके, और विवाह के पश्चात् भी देवचन्द्र अपने गुरु हरिदास गुंसाई के पास रहकर ही अत्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करते रहे। इस प्रकार ८ वर्ष तक हरिदास गुंसाई के पास रहकर लगभग २५ वर्ष की आयु में देवचन्द्र भोजनगर से जामनगर चले आये। यहाँ वे चौदह वर्ष तक भागवत पुराण और अन्य धर्मग्रंथो का अध्ययन करते रहे। जामनगर में कान्हजी नामक एक प्रसिद्ध विद्वान भागवत की कथा कहते थे। देवचन्द्र उनकी कथा कहने के ढग से और उनकी व्याख्या से बहुत ही प्रभावित हुए और १४ वर्ष तक वे नित्य ही उनकी कथा सुनने जाते रहे।[5]

प्रणामी धर्मग्रंथो के अनुसार देवचन्द्र को ४० वर्ष की आयु में ज्ञान प्राप्त हुआ था।[6] उनके इस नवीन ज्ञान का आधार भागवत पुराण ही था। इसी पुराण के गहन अध्ययन से उन्होंने अपने सप्रदाय के सिद्धातो की सृष्टि की थी। उनके प्रचार के लिए वे भागवत की कथा

---

३. वृत्तात० पृ० ३५-७५।

४. वही, पृ० ७८-७९

५. वृत्तात० पृ० ७९-८१, ८८, १०५, १०८, १२९ आदि, मेहराज० पृ० ८, १५।

६. वृत्तांत० पृ० ११६, १२६; मेहराज० पृ० २१।

बहुत ही प्रभावोत्पादक ढग से कहकर उसकी अपनी अलग ही व्याख्या कर श्रोताओ को मुग्ध कर लेते थे। देवचन्द्र के प्रथम शिष्य गांगजी भाई थे। उनके शिष्यो की सख्या शीघ्र ही बढ गई। इन शिष्यो में मेहराज भी थे जो कालान्तर में प्राणनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुए। देवचन्द्र के विचारो को एक नये सप्रदाय का रूप देकर उन्हे प्रचार करने का श्रेय इन्ही मेहराज को है।

२ द्वितीय गुरु स्वामी प्राणनाथ

प्रणामी सप्रदाय के द्वितीय प्रसिद्ध गुरु स्वामी प्राणनाथ ने जामनगर (काठियावाड) में आश्विन कृष्णा चतुर्दशी सवत् १६७५ (रविवार, सितम्बर ६, १६१८ ई०) के दिन एक क्षत्रिय परिवार मे जन्म लिया था। इनके बचपन का नाम मेहराज था। प्राणनाथ के पिता का नाम केशव ठाकुर और माता का नाम धनबाई था। प्राणनाथ के ज्येष्ठ भ्राता गोवर्द्धन देवचन्द्र के परम भक्त थे। जब प्राणनाथ १२ वर्ष के थे तभी एक बार गोवर्द्धन उनको देवचन्द्र के पास ले गये।[७] देवचन्द्र प्राणनाथ की ओर आकर्षित हुए। प्राणनाथ भी देवचन्द्र से मिलकर बहुत प्रभावित हुए और यह पारस्परिक आकर्षण शीघ्र ही गुरु और शिष्य के पवित्र सबधो मे परिवर्तित हो गया। प्राणनाथ ने अपने गुरु के चरणो में बैठकर नये सिद्धातो का श्रवण किया। उन्होने वेदो और पुराणो का भी अध्ययन कर अपने ज्ञान में वृद्धि की। इसी बीच में प्राणनाथ का विवाह भी हो गया था। उनकी पत्नी का नाम बाईजी था। बाईजी सदैव यात्राओ में अपने पति के साथ ही रहती थी।

पिता की मृत्यु के पश्चात् प्राणनाथ कुछ समय तक जामनगर मे प्रधान मन्त्री के पद पर कार्य करते रहे। पर सासारिक बधन उन्हें अधिक समय तक जकड कर न रख सके। वे सत्य की खोज मे थे। उनका हृदय अशान्त था और उनकी आत्मा इन बन्धनो को तोड कर उन्हें नई दिशा में बढने को प्रेरित कर रही थी। देवचद्र की मृत्यु भादो सुदि १४ सवत १७१२ (बुद्धवार सितबर ५, १६५५ ई०) को हो गई।[८] उन्होने एक बार प्राणनाथ से अपने उपदेशो को भारत के अन्य भागो मे प्रचार करने की अभिलाषा व्यक्त की थी। प्राणनाथ ने अब यह कार्य स्वय पूर्ण करने का निश्चय किया।[९] उन्होने राजकीय पद त्याग कर देवचद्र के सिद्धान्तो के प्रचार के लिए देश के विभिन्न प्रदेशो की यात्राएँ आरभ की। इन यात्राओ में वे अपने उपदेश देकर वाद-विवाद आमत्रित कर श्रोताओ की शकाओ का समाधान करते थे। कई बार उनके वाद-विवाद विद्वान, मौलवियो, ब्राह्मणो, कबीर पथियो और नानकपथियो, तथा अन्य सप्रदायो के अनुयायियो से हुए। उनमें से कई तो उनसे

---

७ मेहराज० पृ० २४, वृत्तात० पृ० ११२, १४७-४८ आदि।

८ मेहराज० पृ० ३२, वृत्तात० पृ० १२७।

९ वृत्तात० पृ० १५०।

प्रभावित होकर उनके शिष्य भी हो गये। काठियावाड, सिंध, कच्छ आदि देशो के सिवा प्राणनाथ ने फारस की खाडी में स्थित वदर अब्वास, राजपूताना, उत्तरी तथा मध्य भारत आदि की भी यात्राएँ कर अपने सप्रदाय का प्रचार किया।

यह वह समय था जब औरंगजेब की प्रतिक्रियावादी हिंदू विरोधी नीति का प्रारभ हो चुका था। हिंदुओ के मंदिर ढहाये जाने लगे थे और उनकी धार्मिक सुविधाएँ छीन कर, उन पर कर लगाकर उन्हें पग-पग पर अपमानित और लाछित किया जा रहा था। हिंदुओ के हृदय में विरोधाग्नि सुलग उठी थी। दक्षिण में शिवाजी की सफलताओ की गूंज अभी तक व्याप्त थी। उससे हिन्दुओ में मुगल साम्राज्य को चुनौती देने का साहस उत्पन्न हुआ। मुग़ल विरोधी इस लहर का प्रभाव प्राणनाथ पर भी पडा। उन्होने अपने उपदेशो में औरंगजेब की इस नीति की स्पष्ट निंदा आरभ कर दी और सक्रिय रूप से उसके विरुद्ध प्रचार करने लग गये। कहा जाता है कि उन्होने राजा जसवन्तसिंह राठौर और राणा राजसिंह को मुगलविरोधी पत्र लिखे। वे स्वय उदयपुर गये और एक पत्र भेजकर राणा राजसिंह को अजमेर पर उमडती हुई औरंगजेब की सेनाओ का कडा मुकाबला करने को उकसाया। पर राजसिंह ने उन्हें तुरत ही उदयपुर छोड कर चले जाने के आदेश दिये और उन्हें विवश होकर लौटना पडा। यह भी कहा जाता है कि उन्होने स्वय औरंगजेब से मिलकर उसे समझाने के विफल प्रयत्न किये।[१०]

इधर बुंदेलखड में छत्रसाल का स्वतन्त्रता युद्ध आरभ हो चुका था। उनकी प्रारम्भिक सफलताओ के कारण स्वाभिमानी बुंदेलखडी उन्हें धर्म और स्वतत्रता के रक्षक समझ उनके झडे के नीचे शीघ्रता से एकत्र हो रहे थे। छत्रसाल के यश ने प्राणनाथ को बुंदेलखड की ओर आने को प्रेरित किया। छत्रसाल ने सैनिक शक्ति सग्रह कर ली थी। परन्तु उन्हें और उनके सैनिकों को अभी नैतिक और आध्यात्मिक बल की आवश्यकता थी। स्वामी प्राणनाथ के बुंदेलखड आने से उनकी यह बडी कमी भी दूर हो गई। छत्रसाल और प्राणनाथ की महत्वपूर्ण भेंट मऊ के समीप ही आकस्मिक रूप से १६८३ ई० में ही किसी समय हुई। छत्रसाल द्वारा जगतराज को लिखे एक पत्र के अनुसार प्राणनाथ से उनकी भेट मऊ के पास एक जगल में हुई थी। वे उस समय बिल्कुल अकेले शिकार के लिए निकले थे।[११] इस भेंट के पश्चात् स्वामी प्राणनाथ स्थायी रूप से बुंदेलखड में निवास करने लगे और यही पन्ना में

---

१०. वृत्तात० पृ० २४१, ३१०, ३१२-१७; मेहराज० पृ० १६०-१६१।

११ पन्ना० ४६। छत्रसाल इस पत्र में लिखते हैं कि यह भेंट सवत् १७३२ (१६७५ ई०) में हुई थी। पर प्रणामी धर्म ग्रंथो में दी गई इस भेंट की वर्ष सवत् १७४० (१६८३ ई०) ही यहाँ मान्य समझी गई है। विशेष जानकारी के लिए परिशिष्ट देखें।

वृत्तात० पृ० ३४६-४७; मेहराज० पृ० २११-१२; नवरगदास की वाणी पृ० १७४; लालदास बीतक प० ४८६-६२।

उनकी मृत्यु शुक्रवार, श्रावण वदी ३, सवत १७५१ (जून २६, १६६४ ई०) को हो गई।[१२]

३ श्री प्राणनाथ और छत्रसाल

छत्रसाल और स्वामी प्राणनाथ के सबध शिवाजी और समर्थ गुरु रामदास जैसे ही थे। प्राणनाथ ने छत्रसाल को नैतिक और अध्यात्मिक बल देकर उनके राजनीतिक उद्देश्यो का महत्त्व बुंदेलखडियो की दृष्टि मे बहुत बढा दिया। शिवाजी पर स्वामी रामदास का प्रभाव तो राजनीतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक ही अधिक था। परतु प्राणनाथ राजनीतिक क्षेत्र में भी छत्रसाल के बहुत बडे सहायक सिद्ध हुए। उन्होने बुंदेलखड मे औरगज़ेब की हिंदू विरोधी प्रतिक्रियावादी नीति की अपने उपदेशो में स्पष्ट रूप से कठोर निंदा कर छत्रसाल के पक्ष में सुदृढ जनमत का निर्माण किया और जनता को उनके स्वतत्रता सग्राम में पूर्ण योग देने को सफलतापूर्वक उकसाया। अपने एक ऐसे ही उपदेश में वे चुनौती सी देते हुए कहते हैं —

राजा ने मलो रे राणे राय तणो ।। धर्म जातारे कोई दौडो ।।
जागो ने जोधा रे उठ पडे रहो ।। नीद निगोडी रे छोडो ।। १
टूटत हेरे पर्ग छत्रियो से ।। धर्म जात हिंदुआन ।।
सत न छोडो रे सत्यवादियो ।। जोर बढ्यो तुरकान ।। २
त्रैलोकी में रे उत्तम खड भरत को ।। तामैं उत्तम हिंदू धरम ।।
ताके छत्रपतियो के सिर ।। आये रही इत सरम ।। ४
असुर लगाये रें हिंदुओ पर जेजिया ।। वाको मिले नही पानपान ।।
जो गरीब न दे सकें जेजिया ।। ताय मार करे मुसलमान ।।१६
बात सुनी रे बुंदेले छत्रसाल ने ।। आगे आय पडा ले तरवार ।।
सेवा ने लई रे सारी सिर पेंच के ।। मांडये किया सेन्यापति सिरदार ।।२०

(कुलज़म किरतन प्रकरण ५७)

प्राणनाथ के वर्गविहीन सप्रदाय के सिद्धान्तो और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बहुत से लोग उनके अनुयायी हो गये थे। इनमें से बहुत से छत्रसाल की सेना में भी भरती हो गये। प्राणनाथ स्वय कभी कभी छत्रसाल के सैनिक अभियानो में उनके सैनिको का साहस बढाने के लिए साथ हो लिया करते थे।[१३] इतना ही नहीं उन्होने छत्रसाल के राजनीतिक उद्देश्यो में धार्मिकता की पुट दी और उनमें आध्यात्मिक दैवी शक्ति एव व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा कर बुंदेलखडियो के हृदय में उनके प्रति भक्ति और श्रद्धा उत्पन्न कर दी। प्राणनाथ ने ही

१२ वृत्तान्त पृ० १२८।
१३ वही पृ० ८४५-४६।



(श्री [illegible] के सौजन्य से)

छत्रसाल को पन्ना की हीरे की खानो की जानकारी देकर उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ कर दी थी। धन के अभाव में छत्रसाल के सघर्ष में जो बाधा पड रही थी, वह अब कुछ दूर हो गई। प्राणनाथ ने तब छत्रसाल को पन्ना अपनी राजधानी बनाने की सलाह दी और उनकी स्थिति बुंदेलखड में सम्मानीय करने के लिए उनका राज्याभिषेक भी करा दिया।[१४] इस प्रकार स्वामी प्राणनाथ छत्रसाल के लिए प्रेरणा तथा शक्ति के श्रोत होने के साथ ही उनके गुरु, मित्र और प्रधान सहायक सभी कुछ थे।

४ प्रणामी सम्प्रदाय

प्रणामी सप्रदाय वास्तव में हिन्दू धर्म में ही एक उदार और सुधारवादी आदोलन था। प्रणामी धर्मग्रथो के अनुसार देवचद्र को इस नवीन सप्रदाय के सिद्धान्तो का ज्ञान श्रीकृष्ण से प्राप्त हुआ था, जिसका तात्पर्य केवल यह है कि उनकी उत्पत्ति श्रीमद्भागवत के दर्शन से हुई थी। इस सप्रदाय का मुख्य धर्मग्रथ कुलजम है। इसे कुलजमस्वरूप और तारतम्य सागर भी कहते है। यह ग्रथ न तो एक शैली में लिखा गया है और न इसमें भाषा की समानता ही है। यह प्राणनाथ जी की वाणियो अथवा उपदेशो का एक वृहत् सकलन है। एक ही प्रकार के विचारो को कभी कभी अलग अलग भाषाओ जैसे सिंधी, गुजराती, हिन्दी आदि में व्यक्त किया गया है। फारसी शब्दो और मुहावरो का भी यत्र तत्र प्रयोग किया गया है। कुलजम में निम्नलिखित १४ ग्रथ है —

१ रास २ प्रकाश (गुजराती, हिन्दुस्तानी) ३ षटऋतु ४ कलस (गुजराती और हिन्दुस्तानी) ५ सनध ६ किरतन ७ खुलासा ८ खिलवत ९ परकरमा १० सागर ११ सिंगार १२ सिधी १३ मारफनसागर १४ कयामतनामा (बडा, छोटा)

उपर्युक्त ग्रथो में भाषा का भेद होने का कारण यह है कि स्वामी प्राणनाथ जिस प्रदेश में जाते थे वहा उस प्रदेश की भाषा में ही उपदेश देते थे।[१५] वह स्वय कहते है —

सबको प्यारी अपनी ॥ जो है कुल की भाष ॥
अब मै कह भाषा किनकी ॥ यामें तो भाषा कै लाष ॥१३
बोली जुदी सबन की ॥ और सबका जुदा चलन ॥
सब उरझें नाम जुदे धर ॥ पर मेरे तो केहेना सबन ॥१४
बिना हिसाबे बोलियां ॥ मिने सकल जहान ॥
सबको सुगम जान के ॥ कहूगी हिन्दुस्तान ॥१५

---

१४. पन्ना० ४६।

१५ परमात्मा को पति मानकर सखी भाव से उपासना करने के कारण, स्वामी प्राणनाथ उपदेशो में अपने लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग करते थे। प्रणामी ग्रथो में उन्हें परमधाम की इन्द्रावती सखी की वासना कहा गया है।

वडी भाषा ये ही भली ।। जो सब में जाहेर ।।
करन पाक सवन को ।। अतर माहे बाहेर ।।१६

(सनध प्रकरण १)

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर स्वामी प्राणनाथ जी फिर कहते है,

मेरे प्यारे सव मुसलिम ।। लेकिन ज्यादे है सिंध के ।।
अव मै कहू सिंध के मुसलमानो को ।। पीछे कहूगी मै हिन्द की वोली ।।१८

(सनध प्रकरण ३४)

प्रणामी सम्प्रदाय मे एकेश्वरवाद की ही प्रधानता है। इस सम्प्रदाय में विश्व क्षर और अक्षर नामक दो भागो में विभाजित किया गया है। क्षर में वे सब प्राणी और जीव आते हैं, जो नाशवान है। क्षर से उच्च अक्षर पुरुष की कल्पना की गई है जो नाशवान नही है। वही चर, अचर, एव प्रकृति का निर्माता माना गया है। किंतु इन सवके ऊपर परमात्मा की प्रतिष्ठा की गई है। प्रणामी साहित्य में इस परमात्मा को अक्षरातीत कह कर सबोधित किया गया है। कुलजम में कर्म को ही प्रधानता दी गई है और मूर्ति-पूजा का विरोध किया गया है।[१९] परमात्मा के एकाग्र ध्यान करने को ही उपासना का मुख्य अग मानकर प्रधानता दी गई है।

स्वामी प्राणनाथ, कबीर और नानक, तथा महाराष्ट्र के सतो के विचारो से वहुत ही प्रभावित हुए से प्रतीत होते हैं। कुलजम के छदो में यत्र तत्र इसके प्रमाण मिलते है। इन छदो मे मुसलमान और हिंदुओ दोनो के ही अधविश्वासो और धर्मान्धता की समान रूप से आलोचना की गई है, तथा उनके धर्मों के आपसी विरोधाभासो को दूर करने के प्रयत्न किये गये हैं। इस तथ्य को वार वार दुहराया गया है कि वेदो और कुरान में एक ही ईश्वर का गुणानुवाद है। एक स्थान पर अपने शिष्यो से अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए स्वामी प्राणनाथ कहते है —

जो कुछ कह्या कतेव ने । सोई कह्या वेद ।।
दोऊ वदे एक साहेब के । पर लडत विना पाये भेद ।।४२
बोली सबो जुदा परी । नाम जुदे धरे सवन ।।
चलन जुदा कर दिया । तायें समझ न परी किन ।।४३

---

१९ यद्यपि प्रणामी सम्प्रदाय में सैद्धांतिक रूप में मूर्त्तिपूजा का विरोध किया गया है, लेकिन प्रणामियो के मन्दिरो में कृष्ण की वासुरी और मुकुट अथवा राधाजी के मुकुट और कुलजम की प्रति की नित्य ही पूजा होती है। प्रसाद तथा चरणामृत भी वितरित किया जाता है। पन्ना में स्थित प्रणामियों के मुख्य मन्दिर की दीवालो और छतो पर भी कृष्ण के जीवन सबधी अनेक चित्र चित्रित है। यह तथा और प्रणामी मन्दिर हिंदू मन्दिरो जैसे ही है।

तायें हुई वडी उरझन । सो सुरझाऊ दोए ॥
नाम निशान जाहेर करू । ज्यो समझे सव कोए ॥४४

(खुलासा प्र० ११)

प्राणनाथ जी का कहना था कि,

नाम मारो जुदा धरे । लई सवो जुदी रसम ॥
सव में उमत और दुनिया । सोई खुदा सोई व्रम्ह ॥३८

(वही)

इस प्रकार स्वामी प्राणनाथ ने इस्लाम और वैदिक धर्म के आपसी विरोधाभासो में भी, निहित एकता को ही अधिक महत्व दिया, पर दोनो ही धर्मो में आ गई वुराइयो और अधविश्वासो की निंदा करने में भी वे नही चूके । मौलवी और उलेमा जो कुरान की व्याख्या करते थे, उसकी आलोचना करते हुए प्राणनाथ कहते है—

पढे मुला आगे हुए । सो तो सव पाऐ गुमान ॥
लोगो को वतावही । कहे हम पढे कुरान ॥४
राह वतावें दुनी को । कहे ए नवी कहेल ॥
लिख्या और कतेव में । ए पेले औरै पेल ॥६

(सनध प्र० ३९)

उनको फटकारते हुए वे कहते है,

कुफ्र न काढै आपनो । और देपे सव कुफ्रान ॥
अपना औगुन न देपहि । कहे हम मुसलमान ॥

इन निम्नलिखित पद्यो में प्राणनाथ ने मुसलमानो की धार्मिक असहनशीलता और अन्य धर्मावलवियो पर अत्याचार करने की प्रवृत्तियो की तीव्र निंदा की है —

ओ राजी एक भेप में । ताए मार छुडावे दाव ॥
ओ रोवे सिर पीट ही । ऐ कहे हमे होत सवाव ॥
करें जुलम गरीव पर । कोई ना काहू फरियाद ॥
कर सुनत गोस्त पिलावही । कहे हमें होत सवाव ॥
पाना पिलावें आप में । देपलावे मसीत मेहेराव ॥
लेकर कल्मा पढावही । कहे हमें होत सवाव ॥
कोई जालिम जीव जनम का । पुराको गोस्त नराव ॥
तिनको लेवें दीन में । कहें हमें होत सवाव ॥

(सनध प्र० ३९, ८, १३, १४, १७)

फिर निम्नलिखित पक्तियो में स्वामी प्राणनाथ मव धर्मो के मार की ओर मकेत करते हैं—

पर सवाव तो तिनको हो वही । छोटा वडा सब जीऊ ॥
एकै नजरो देपही । सबका खाविंद पीऊ ॥२३
जो दुख देवे किनको । सो नाही मुसलमान ॥
नवी ऐं मुसलमान का । नाम धर्या मेहेरवान ॥२४

(वही)

स्वामी प्राणनाथ हिंदू समाज में भी कई सुधारो के हामी थे। वे जाति पाँति के कठोर बधनो और ब्राह्मणो द्वारा प्रचारित धार्मिक ढकोसलो के तीव्र निंदक थे। शारीरिक स्वच्छता और बाहरी आडबरो की अपेक्षा वे हृदय की पवित्रता और सदाचारपूर्ण चरित्र को ही अधिक महत्व देते थे । निम्नाकित पदो में वे पूछते हैं कि अछूत कौन है ? वह शूद्र जिसका हृदय स्वच्छ है अथवा वह स्वार्थी ब्राह्मण जो सासारिक भोगो में लिप्त है ?

एक भेष जो विप्र का । दूजा भेष चाडाल ॥
जाके छुए छूत लागे । ताके सग कौन हवाल ॥१५
चाडाल हिरदें निरमल । पेले सग भगवान ॥
देपलावे नहिं काहू को । गोप रापैं नाम ॥१६
अतराए नही पिन की । सनेह साँचे रग ॥
अहे निज दृष्ट आतम की । नही देह सो सग ॥१७
विप्र भेप वाहिर दृष्टी । पटकर्म पाले वेद ॥
स्याम पिन सुपने नही । जाने नही ब्रम्ह भेद ॥१८
उदर कुटुम कारने । उतमाई देपावे अग ॥
व्याकर्न वाद विवाद के । अर्थ करे कै रग ॥१९
अब कहो काके छुए । अग लागे छोत ॥
अधम तम विप्र अगे । चाडाल अग उद्दोत ॥२०

(कलस प्र० १५)

एक अन्य स्थान पर प्राणनाथ जी ब्राह्मण की भर्त्सना करते हुए व्यग करते हैं—

दोष विप्रो ने कोई मा देजो । ए कलजुग ना ए वाण ॥
आगम भाख्यू मनें छे सर्वे । वैराट वाणी रे प्रमाण ॥३८
असुर थकी ममपाया रे भभीपणे । आगल श्री रघुनाथ ॥
तन नू कपट कर्म कुली माहें । ब्राह्मण थाऊ आप ॥३९

(कीर्तन प्र० १२५)

अर्थात् कलियुग के ब्राह्मण राक्षसों से भी अधिक बुरे हैं । विभीषण ने श्री रामचन्द्र के प्रति भक्ति की शपथ लेते हुए कहा था कि अगर मैं विश्वासघात करू तो कलियुग में ब्राह्मण होकर जन्म लू।

स्वामी प्राणनाथ के अनुयायी समाज के उच्च और निम्न सभी वर्गों के थे। उनके कुछ मुसलमान शिष्य भी थे। वास्तव में स्वामी प्राणनाथ किसी धर्म-विशेष के विरुद्ध न थे। उन्होंने केवल मनुष्यमात्र की समानता पर जोर देकर आपसी धार्मिक सहनशीलता का प्रचार किया। पर एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म वालो को हीन समझ कर उन पर अत्याचार करें यह उन्हें सह्य न था, और इन अत्याचारो का विरोध करना वे प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य समझते थे। इसलिए एक ओर जहाँ प्राणनाथ ने इस्लाम का एक धर्म की तरह विरोध नही किया, वहाँ उस समय हिंदुओ पर होने वाले मुसलमानो के अत्याचारो के विरुद्ध वे हिंदुओ को उभारने और उन्हें संगठित रूप से उनका प्रतिरोध करने के लिए उकसाने में भी पीछे न रहे। इस प्रकार स्वामी प्राणनाथ में एक धर्मप्रवर्तक और प्रचारक के ही नही अपितु एक समाज-सुधारक और राष्ट्रीय नेता के भी दर्शन होते हैं।

५ प्रणामी धर्म की आधुनिक स्थिति

प्रणामी सम्प्रदाय और इसके अनुयायियो को बुंदेलखड में छत्रसाल जैसे राजा का समर्थन प्राप्त होने पर भी उच्च वर्ण के हिन्दुओ और ब्राह्मणो की दुरभिसंधियो का शिकार होना पडा। उनके सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजो को लेकर तरह-तरह के लाछन और दोषारोपण उन पर किये जाते है। जैसे प्राणनाथ जी को मुसलमान शाहजादा बताया जाता है, और कहा जाता है कि वे औरगजेब के भाई शुजा थे, जिसकी मृत्यु अराकान में हो गई थी। पन्ना में धामियो के मुख्य मंदिर पर कलश के स्थान पर पंजा होने के कारण और इसलिए भी कि पन्ना में प्रणामियो की मृत्यु होने पर उन्हें समाधि दी जाती है, इस सम्प्रदाय को इस्लाम की ही एक शाखा समझा जाता है। ये भ्रमात्मक धारणायें किसी समय इतना जोर पकड गई थी कि १८८० ई० और १९०८ ई० में प्रणामियो को नैपाल राज्य से निर्वासित कर दिया गया था।[१७] वास्तविकता यह है कि पन्ना में प्राणनाथ के मंदिर पर लगा हुआ पंजा प्राणनाथजी के आशीर्वाद देते हुए हाथ का प्रतीक है। प्रणामियो के अन्य मंदिरो पर कलश ही है। प्राणनाथ ने पन्ना में जीवित समाधि ली थी। हिंदू मत, योगी और वैरागी भी ऐसा करते है, इसलिए इसमें कुछ भी विचित्रता नही है। फिर जिन प्रणामियो का देहान्त पन्ना में होता है केवल उन्ही को समाधि दी जाती है, अन्यत्र मृत्यु होने पर उनकी अन्त्येष्टि क्रिया हिन्दुओ की भाति शव को अग्नि की भेंट करके ही की जाती है।

बुंदेलखड में प्रणामी धर्म के अनुयायी सर्वत्र ही पाये जाते है। पूर्वी बुंदेलखड

---

१७ पन्ना० गजे० पृ० ३७-३८।

और विशेषकर पन्ना के निकटवर्ती जिलो में उनकी सख्या अधिक है। पन्ना में प्राणनाथ जी की मृत्यु होने के कारण यह नगर उनके लिये परम पुनीत तीर्थ-स्थान बन गया है। हर वर्ष शरद पूर्णिमा के अवसर पर काठियावाड, गुजरात, बम्बई, सिंध और नैपाल आदि से प्रणामी पन्ना मे एकत्र होते है। अभी भी विजयादशमी (दशहरे) के दिन प्रणामी पन्ना से वाहर खेजरा के मदिर में पन्ना के महाराज का अभिनदन करते है। महाराज तलवार खोलकर मन्दिर की परिक्रमा करते हैं, तत्पश्चात् प्रणामी महत उन्हें पान का वीडा भेंट कर पुन तलवार वँधाते है। यह प्रथा छत्रमाल के समय से चली आ रही है। यही श्री प्राणनाथ जी ने दशहरे के दिन महाराज छत्रमाल को वीडा देकर तलवार वँधाई थी और पन्ना को अपनी राजधानी बनाने का आदेश दिया था।[१८]

परिशिष्ट

छत्रसाल और प्राणनाथ की भेंट कब हुई ?

मेहराज चरित्र (पृ० २११-१२) वृत्तान्त मुक्तावली (पृ० ३४६), लालदास वीतक (पृ० ४८९-९२) और नवरगदास की वाणी (पृ० १७४) के अनुसार छत्रसाल और प्राणनाथ जी की भेंट १६८३ ई० (सवत् १७४०) में मऊ के निकट हुई थी। स्वामी प्राणनाथ के साथ उनके अन्य शिष्य और अनुयायी भी थे। छत्रप्रकाश (पृ० १४७) में भी इस भेंट का मऊ में ही होना वर्णित है। पर जगतराज को लिखे एक पत्र (पन्ना० ४६, अप्रेल २१, १७३०) में छत्रसाल लिखते हैं कि यह भेंट १६७५ ई० (सवत १७३२) में मऊ के निकट एक जगल में हुई थी, जहाँ वे अकेले आखेट को गये थे। लालदास वीतक और वृत्तान्त मुक्तावली में भी लिखा है कि जब छत्रसाल की स्वामी प्राणनाथ से सर्वप्रथम भेंट हुई, तब छत्रसाल एक शिकारी के वेष में थे।

इस भेंट सबधी बातों और स्थान के बारे में छत्रसाल के पत्र में दी गई सूचना ही अधिक मान्य होनी चाहिए, क्योंकि छत्रसाल से अधिक इसकी और जानकारी किसे हो सकती थी? पर छत्रसाल के पत्र में इस भेंट का दिया गया सवत् १७३२ या सन् १६७५ ई० विश्वसनीय नहीं है। यह पत्र इस घटना के ४७ वर्ष पश्चात् लिखा गया था, जबकि छत्रसाल बहुत वृद्ध हो चुके थे और इन प्रारभिक घटनाओं के सबध में उनकी स्मृति भी कुछ क्षीण हो चली थी, जैसा कि उनके अन्य पत्रों में दी गई कई घटनाओं की गलत तिथियों से स्पष्ट प्रतीत होता है। प्राणनाथ और छत्रसाल की भेंट १६८३ ई० में ही कभी होना अधिक सभव जान पडती है। इसके मुख्यत निम्नलिखित दो कारण हैं —

१ सब प्रणामी धर्मग्रथों के अनुसार यह भेंट सवत् १७४० या सन् १६८३ ई० में ही हुई थी।

२ प्रणामी ग्रथों और छत्र प्रकाश में इस भेंट के समय छत्रसाल पर शेर अफगन द्वारा आक्रमण किये जाने का उल्लेख है।

जनवरी १३, १६८४ ई० और अप्रेल २६, १६८५ ई० के मुग़ल अखबारों के अनुसार शेर अफग़न नामक किसी शाही अधिकारी की नियुक्ति बुंदेलखड में १६८३ ई० में 'चपत के पुत्रों' का दमन करने के लिए की गई थी। यह शेर अफगन जनवरी १६८४ ई० में एरछ का फौजदार भी बना दिया गया था। इस पद पर वह अप्रेल १६८५ तक रहा।[१९] इस प्रकार प्रणामी ग्रथों और छत्रप्रकाश में दिये गये शेर अफगन सबधी उल्लेख की पुष्टि मुग़ल अखबारों से हो जाने के कारण १६८३ ई० या सवत् १७४० में ही छत्रसाल और प्राणनाथ की भेंट होना अधिक तर्कसगत प्रतीत होता है।

---

१९ जय० अख० औरं० २७, पृ० ४६; २८ (२) पृ० ३२३।

छत्रसाल का साहित्य प्रेम : ८ :

१. उनकी काव्य-प्रतिभा

बावर की तरह छत्रसाल भी तलवार और कलम दोनो के ही धनी थे। उनकी कविताओ के सग्रहो में हमे उनकी साहित्यिक प्रतिभा के दर्शन होते है। भक्ति और नीति पर रचे हुए उनके छद, भापा, भाव और रचना की दृष्टि से उच्च कोटि के समझे जाते है। छत्रसाल ने अपनी कवितायें मुख्यत व्रजभापा में ही की है। यत्र तत्र अवधी, बुंदेलखडी और फारसी शब्दो का भी प्रयोग किया गया है। उनकी शैली सरल और सुवोध है। व्यर्थ का शब्दाडम्बर या छदो की जटिलता उसमें नही है। उन्होने अपनी रचनाओ में कवित्त के अतिरिक्त दोहा, सवैया, कुडलियाँ, मज, दडक, छप्पय आदि विभिन्न छदो का प्रयोग किया है, जिससे उनकी छद शास्त्र की जानकारी भली भाँति प्रकट होती है। छत्रसाल की काव्य प्रतिभा का मूल्याकन करते हुए श्री वियोगी हरि लिखते हैं, "महाराज छत्रसाल एक ऊँचे कवि थे। प्रेम और भक्ति इनकी रचनाओ में कूट-कूट कर भरी है। इनकी रचना में तन्मयता भी अच्छी मात्रा में है। इनकी दृष्टि निस्सदेह कवि-दृष्टि थी। काव्यकला की ओर यद्यपि इन्होने विशेप ध्यान नही दिया, तथापि उसका सर्वथा अभाव नही है। व्रजभापा के साहित्य में महाराज छत्रसाल की रचनाएँ प्रेम और आदर की दृष्टि से देखी जायेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"[1]

---

१ छत्र० ग्र० भूमिका पृ० १५। छत्रसाल की रचनाओ की विस्तृत जानकारी के लिए श्री वियोगी हरि द्वारा सपादित और छत्रसाल स्मारक समिति पन्ना द्वारा प्रकाशित इस 'छत्रसाल ग्रथावली' नामक उनके कविता-सग्रह को देखें। इस ग्रथ में छत्रसाल की रचनाओ के निम्नलिखित सग्रह उपलब्ध है —

(१) श्री कृष्ण कीर्तन (२) श्री रामयशचन्द्रिका (३) हनुमद् विनय (४) अक्षर अनन्य जू के पत्र और तिनको उत्तर (५) नीति मजरी (६) स्फुट कविताएँ।

छत्रसाल ग्रथावली में छत्रसाल द्वारा रचित निम्नलिखित अन्य काव्यो का भी उल्लेख किया गया है।

(१) राजविनोद (२) गीतो का सग्रह (३) छत्रविलास (४) नीति-मजरी (५) महाराज छत्रसाल जू को काव्य। (छत्र० ग्र० पृ० ६)

एक राजविनोद नामक ग्रथ के रचयिता लाल कवि भी है।

अब छत्रसाल की कविता की बानगी का भी निरीक्षण कीजिए। भक्ति के आवेश में अपनी तुलना कृष्ण से करते हुए वे कहते हैं —

तुम घनस्याम हम जाचक मयूर मत्त,
तुम सुचि स्वाति हम चातक तुम्हारे हैं ॥
चारु चद्र प्यारे तुम लोचन चकोर मोर,
तुम जग तारे हम छतारे उचारे हैं ॥
छत्रसाल, मीत मित्रजा के तुम ब्रजराज!
हमहू कलिंदजा के कूल पै पुकारे हैं ॥
तुम गिरि-धारी हम कृष्ण व्रतधारी, तुम,
दनुज प्रहारे हम यवन प्रहारे हैं ॥१०॥

(छत्र० ग्र० पृ० ४-५)

रामनाम की महिमा का गुणगान भी सुनिये —

जप तप सयम यम नियम, छता निगम नित गाव।
कोटिन अपराधी तरे, केवल नाम प्रभाव ॥६६॥
रामनाम नहि लेत हैं, वकत वृथा छत्रसाल।
जिमि दादुर कुल कमल तजि, भखत कुकीट कराल ॥६७॥
सुहृद कीस केवट करे, पल्लव करे पखान।
छत्रसाल, राजा करे, मरन विभीपन जान ॥६८॥

(वही पृ० ५५)

छत्रसाल की नीतिसबधी कुछ रचनाओ को भी देखिये। कुल की प्रतिष्ठा उनकी दृष्टि में सर्वोपरि है। साधारण गृहस्थों को वे सीख देते हैं —

लाख घटै, कुल साख न छाँडिये, वस्त्र फटै प्रभु औरहूँ दै हैं।
द्रव्य घटै घटता नहि कीजिए, दै है न कोऊ पै लोक हँसै है ॥
भूप छता जल-रासि को पैरिवो, कौन हूँ वेर किनारे लगै है।
हिम्मत छोडे ते किम्मत जायगी, जायगो काल कलक न जै हैं ॥५॥

(वही पृ० ७६)

कुल की प्रतिष्ठा के लिए बहुत से कुपुत्रों से एक सुपुत्र ही भला है, इसी भाव को छत्रसाल निम्नलिखित दोहे में बड़ी ही कुशलता से व्यक्त करते हैं —

कुलवारो एकहि भलो, अकुल भले नहि लाख।
तुलत न सेर सियार सम, छत्रसाल नृप भाख ॥२५

(वही पृ० ८२)

राजाओं को अनीति और अत्याचार से प्रजा पर शासन न करने की चेतावनी देते हुए छत्रसाल कहते हैं —

छत्रसाल राजान को, वर्जित सदा अनीति ।
द्विरद-दंत की रीति सो, करत न रैयत प्रीति ।।२६।। (वही)

राज्य को दुर्जनो की कुचेष्टाओ से मुक्त रखने के लिए शासक के अपने व्यक्तित्व का महत्त्व वे इस दोहे मे बतलाते है —

छत्रसाल, नृप तेज तें, दुष्ट प्रभाव न होय ।
जिमि रवि, उड्गन निसि-करहु करत छीनछवि सोय ।।३१।। (वही)

२ छत्रसाल के आश्रित दरबारी कवि

कवियो के गुणो के तो छत्रसाल सच्चे पारखी ही थे । महाकवि भूषण की पालकी में कधा देकर उन्होंने जो साहित्य का सम्मान किया था, वैसा उदाहरण अन्यत्र नही मिलता ।[२] उनके दरबार में बहुत से कवि आश्रय पाते थे, पर उनमें से भूषण, लालकवि, हरिकेश, निवाज और ब्रजभूषण ही विशेष उल्लेखनीय है।

भूषण का वास्तविक नाम यह नही था । उन्हें भूषण का उपनाम चित्रकूट के अधिपति राजा रुद्र सोलकी ने दिया था । भूषण की जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, काव्य-काल और वास्तविक नाम आदि विवादग्रस्त विषय हैं । छत्रसाल के अतिरिक्त भूषण तत्कालीन सभी प्रसिद्ध राजपूत राजाओ के भी दरबारो को सुशोभित कर चुके थे । वे साहु, सवाई जयसिंह, बूंदी के बुद्धसिंह हाडा और असोथर के भगवतराय के भी कृपापात्र थे ।[३]

भूषण की भेंट छत्रसाल से उनके राज्यकाल के अतिम वर्षों में हुई थी । छत्रसाल उनकी प्रतिभा से बहुत ही प्रभावित थे और उनका अत्यधिक मान करते थे । भूषण के हृदय में भी मुगलो से डट कर लोहा लेने वाले बुंदेले अधिपति के लिए कम आदर न था । उन्होंने अपनी कविताओं में छत्रसाल का यशोगान कर उन्हे अमरत्व प्रदान किया । भूषण की छत्रसाल सबधी कविताओ का सकलन छत्रसाल दशक के नाम से प्रसिद्ध है । इसके सिवा भूषण के केवल दो और ग्रंथ प्राप्य है । इनके नाम शिवराज भूषण और शिवा बावनी है । कहा जाता है कि भूषण ने भूषण उल्लास, दूषण विलास और भूषण हजारा नामक अन्य तीन और काव्य-ग्रंथो की भी रचना की थी, पर ये सभी ग्रथ अभी तक अप्राप्य है ।[४]

---

२ अध्याय के अन्त में परिशिष्ट 'अ' देखें ।

३ दीक्षित० १४६-१५१, वीर काव्य पृ० २६३-२६४ ।

४ कवि भूषण सबधी विशेष जानकारी के लिए ये ग्रंथ देखें
भागीरथ प्रसाद दीक्षित द्वारा रचित 'भूषण विमर्श' ।
डा उदयनारायण तिवारी कृत वीर काव्य पृ० २५८-२६५ ।
रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २५४-२५६ ।

छत्रप्रकाश के प्रसिद्ध कवि लाल का वास्तविक नाम गोरेलाल था। उनके पूर्वज आध्र के राज महेन्द्री नामक जिले के रहने वाले थे। लाल कवि को दी गई छत्रसाल की आश्विन सुदि १३ सवत् १७६९ (अक्तूबर १, १७१२ ई०) की एक सनद के अनुसार कवि ने छत्रप्रकाश की रचना स्वय छत्रसाल के आग्रह पर की थी। छत्रप्रकाश के निम्नलिखित दोहे से भी यही प्रगट होता है —

धनि चपत कैं औतरौ, पचम श्री छत्रसाल ।
जिनकी अज्ञा सीस धरि, कही कहानी लाल ॥१॥
(छत्र० पृ० ६६)

छत्रप्रकाश केवल एक उच्च कोटि का काव्य ही नही है, अपितु उसका ऐतिहासिक महत्व भी बहुत अधिक है। छत्रसाल पर लिखा हुआ केवल यही एक समकालीन विश्वसनीय ग्रथ है।[५] कहा जाता है कि लाल कवि ने कुल दस ग्रथ लिखे थे। इनके नाम छत्र-छाया, छत्र-कीर्ति, छत्र-छद, छत्र-प्रशस्ति, छत्रसाल-शतक, छत्र-हजारा, छत्र-डड, छत्रप्रकाश, राजविनोद और विष्णुविलास दिये गये है। इनमें से केवल अतिम तीन ही अभी प्राप्त हो सके है।[६]

कवि निवाज अतर्वेद के रहने वाले थे। पर छत्रसाल द्वारा सम्मानित होने पर बुंदेलखड में ही बस गये थे। निवाज ब्राह्मण थे। पर कई इन्हें मुसलमान भी कहते हैं। कहा जाता है कि निवाज के सम्मान पाने पर एक भागवत कवि ने यह कटूक्ति लिखी थी —

भली आजकल करत हो, छत्रसाल महाराज ।
जहँ भगवत गीता पडी, तहँ कवि पढत निवाज ॥

शिवसिंह के अनुसार छत्रसाल के दरबार में निवाज नाम के दो कवि थे। एक ब्राह्मण था और दूसरा मुसलमान। निवाज कवि द्वारा औरंगजेब के पुत्र आजमशाह के आग्रह पर शकुन्तला का हिन्दी अनुवाद किये जाने का उल्लेख भी मिलता है।[७]

हरिकेश का जन्म सेहुँडा (दतिया) में १६६३ ई० के लगभग हुआ था। वे फिर बाद में पन्ना चले आये थे, जहाँ उन्हें छत्रसाल के दरबार में आश्रय मिल गया था। उनके केवल दो ग्रथ 'महाराज जगतसिंह दिग्विजय' और 'ब्रजलीला' ही प्राप्त हुए है।[८]

कवि ब्रजभूषण का केवल 'वृत्तान्त मुक्तावली' नामक एक ग्रथ ही मिलता है। यह ग्रथ प्रणामी सम्प्रदाय के मुख्य धर्म-ग्रथो में से है। इस ग्रथ के निम्नलिखित पद से यह पता

---

५ छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता के लिए परिशिष्ट 'घ' देखें।
६. वीर काव्य पृ० २६५ बुं० वैं० पृ० ३१२; शुक्ल० पृ० ३३३-३५।
७ शुक्ल० पृ० २६३, बु० वैं० पृ० ३८५, शिवसिंह सरोज पृ० ४४१।
८. बु० वैं० पृ० ३६०।

चलता है कि छत्रसाल व्रजभूषण के गुरु थे

एहि विधि खोज पार पथि मांही, मत देवचद्र सतगुरु को गायो।
नाद पुत्र तेहि छत्रशाल नृप, तेहि शिष्य व्रजभूपन कछु पायो ॥१८॥
(वृत्तांत० पृ० २६)

छत्रसाल के समय के एक अन्य प्रसिद्ध कवि बख्शी हसराज थे। उनकी जन्म-भूमि पन्ना ही थी। छत्रसाल के शासन-काल के अतिम वर्षों में हसराज में जो कवि-प्रतिभा प्रस्फुटित हुई, वह छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात हिरदेसाह, सभासिंह और अमानसिंह के काल में उत्तरोत्तर विकसित हुई। बख्शी हसराज इन सभी के कृपापात्र थे। इन्होंने सनेह-सागर, श्री कृष्णजू की पाती, श्री जुगल स्वरूप विरह पत्रिका, फाग तरगनी, चुरहारिन लीला, मेहराज चरित्र, विरह विलास, राय चद्रिका और बारहमासा नामक नौ ग्रथ लिखे थे। इन सब मे मेहराज चरित्र ही अधिक प्रसिद्ध है। यह स्वामी प्राणनाथ का पद्यबद्ध जीवन चरित्र है और प्रणामी सप्रदाय का बहुत ही प्रमुख धर्म-ग्रथ माना जाता है।[9]

लोक-श्रुतियों के अनुसार छत्रसाल ने दतिया के प्रसिद्ध दार्शनिक कवि अक्षर अनन्य को भी अपने दरबार में आने का निमत्रण भेजा था। पर अनन्य ने उसे स्वीकार नही किया। कहा जाता है कि छत्रसाल और अनन्य में कुछ पत्रो का आदान-प्रदान भी हुआ था। इन पत्रो में अनन्य ने छत्रसाल से कुछ प्रश्न पूछे थे और छत्रसाल ने पत्रो द्वारा ही उनके उत्तर दिये थे। यह पद्यबद्ध प्रश्नोत्तर छत्रसाल ग्रथावली मे दिये गये है। अनन्य दतिया के राजा दलपतराय के पुत्र पृथ्वीसिह के आश्रय में सेहुंडा (दतिया) में रहते थे। उनमें उच्च कोटि की प्रतिभा थी और उनके आध्यात्मिक विचारो से तो स्थानीय लोग आज भी प्रभावित है।[10]

छत्रसाल के अन्य दरबारी कवियों में विजयाभिनन्दन, हरीचद, गुलाल सिंह बख्शी, केशवराज, हिम्मतसिंह कायस्थ और प्रतापसाह बदीजन आदि भी थे। इनमें से केवल कुछ के ही साधारण काव्यो के उल्लेख मिलते है। छत्रसाल के भतीजे पचमसिंह और पौत्र कुंवर मेदिनीमल्ल भी साधारण कविता कर लेते थे।[11] इन सभी कवियो ने छत्रसाल की कीर्ति मे वृद्धि की और अपनी-अपनी प्रतिभानुसार सम्मान प्राप्त किया।

---

९ बु० वै० पृ० ३९२-९४, शुक्ल० पृ० ३५२-५३।

१० बु० वै० पृ० ३२५-२६, ३३०-३३३, गोरे० पृ० २२६-२६; शुक्ल० पृ० ६१, छत्र० प्र० पृ० ७१-७३।

११ बु० वै० पृ० ४१६, ४६७, ४६६, ५०१, ४१०, ४०६; शिवसिंह सरोज पृ० ४४५।

परिशिष्ट 'अ'

छत्रसाल और भूषण की भेंट

बुंदेलखंडी लोकश्रुतियों के अनुसार छत्रसाल ने भूषण को पन्ना आने को आमन्त्रित किया था। इस आमंत्रण को स्वीकार कर भूषण अपने पौत्र सहित पन्ना के समीप आ पहुँचे। छत्रसाल अपने मंत्रियों और दरबारियों को लेकर उनकी अगवानी को आये। भूषण का पौत्र एक घोडे पर आगे चल रहा था और महाकवि स्वयं एक पालकी में उसके पीछे आ रहे थे। जब दोनों दल एक दूसरे के समीप आये, तब छत्रसाल ने शीघ्रता से अपने हाथी से उतर कर भूषण के पौत्र को उस पर आसीन कर दिया और स्वयं कवि की पालकी में कंधा लगाकर खडे हो गये। इस असाधारण सम्मान पर भूषण आत्म-विभोर हो उठे। वे तुरत पालकी से बाहर कूद पडे और उनके मुँह से बरबस यह छंद निकल पडा —

नाती को हाथी दियो, जा पै ढुरकत ढाल।
साहू के जस कलस पर, धुज बाँधी छत्रसाल॥
राजत अखंड तेज छाजत सुजस बडो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिय साल को॥
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हे,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को ?
और राव राजा एक मन में न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥

छत्रसाल ने इसी प्रकार एक बार अपने गुरु स्वामी प्राणनाथ की पालकी में भी कंधा लगाया था, जिससे इस असाधारण घटना के सत्य होने का अनुमान होता है।[12]

---

१२ वृत्तांत० पृ० ३५० चौ० २८-३१; लालदास बीतक पृ० ४६३; नवरंगदास बीतक पृ० १७४ प्रकरण १७।

परिशिष्ट 'ब'

छत्रप्रकाश की ऐतिहासिकता

छत्रप्रकाश की रचना लाल कवि ने छत्रसाल के आदेश पर की थी। इस तथ्य का समर्थन दो बातो मे होता है। एक तो स्वय लाल कवि छत्रप्रकाश (पृ० ६६) के निम्न-लिखित दोहे में इसका उल्लेख करते है —

धनि चपत कै औतरो, पचम श्री छत्रसाल।
जिनकी अज्ञा सीस धरि, कही कहानी लाल ॥१॥

दूसरे लाल कवि को छत्रसाल द्वारा दी गई एक सनद से तो यह पूर्णरूपेण निश्चित ही हो जाता है कि छत्रसाल ने इस ग्रथ को लिखवाया था। यह सनद आश्विन सुदि १३, सवत् १७६९ (अक्तूबर १, १७१२ ई०) की है। यह सनद लाल कवि के वशज श्रीराजाराम ब्रह्मभट्ट के पास है। वे पन्ना जिले में मढी नामक ग्राम में अमानगज के समीप रहते है। इस सनद की सही नकल मुझे पन्ना के राज्यकवि श्री कृष्ण कवि द्वारा प्राप्त हुई है। इस सनद में लाल कवि को कुछ गाँव दिये जाने का उल्लेख है और ग्रथ की समाप्ति पर विशेष रूप से पुरस्कृत किये जाने का आश्वासन दिया गया है।

छत्र प्रकाश बुंदेलो की सक्षिप्त वशावली से प्रारभ होता है और छत्रसाल एव उनके पिता चपतराय के चरित्रो पर विशेष प्रकाश डालता है।[13] छत्रसाल के प्रारभिक जीवन का वर्णन कर लाल कवि छत्रप्रकाश मे मुगलो से उनकी प्रारभिक मुठभेडो का उल्लेख करते है। स्वामी प्राणनाथ और छत्रसाल की भेंट का वर्णन भी इसमें है। पर छत्रप्रकाश सम्राट बहादुरशाह से छत्रसाल की सधि और उनके लोहागढ के घेरे (दिसबर १७१० ई०) में भाग लेने का वर्णन करके ही अचानक समाप्त हो जाता है। छत्रसाल की मृत्यु दिसबर ४, १७३१ ई० को हुई थी। अस्तु, यह स्पष्ट ही है कि छत्रप्रकाश उनकी पूर्ण जीवन-गाथा को प्रस्तुत नही करता। छत्रसाल के जीवन के अतिम २१ वर्षो की घटनाओ का समावेश इसमें नही हो पाया है। श्री राजाराम ब्रह्मभट्ट के अनुसार लाल कवि की मृत्यु सवत १७७१ अथवा १७१४ ई० में ही किसी युद्ध में हो गई थी। सभवत कवि की मृत्यु के कारण ही छत्रप्रकाश अपूर्ण रह गया है।

छत्र प्रकाश की ऐतिहासिकता इस तथ्य से सिद्ध हो जाती है कि उसमें वर्णित लगभग सभी महत्वपूर्ण घटनाओ की पुष्टि समकालीन मुसलमान इतिहासकारो के ग्रथो,

---

१३ कैप्टन पागसन ने 'हिस्ट्री आफ दी बुंदेलाज' में छत्रप्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद दिया है। कई स्थलो पर दोषपूर्ण होने पर भी यह अच्छा बन पडा है।

मुगल अखबारो और छत्रसाल के पत्रो से हो जाती हैं। ये मुख्य घटनायें निम्नलिखित हैं—

१ शाहजहाँ के राज्यकाल के प्रारभिक वर्षो में जुझारसिंह बुंदेला का विद्रोह और उसका दमन।

(छत्र० पृ० २८)

२ बहादुर खाँ और अब्दुल्ला खाँ का चपतराय के विरुद्ध भेजा जाना।

(वही पृ० ३२)

३ पहाडसिंह को ओरछा का राज्य दिया जाना और चपतराय की उससे सन्धि।

(वही पृ० ३४)

४ चपतराय का कधार के तीसरे आक्रमण में भाग लेना।

(वही पृ० ३७)

५ शाहजहाँ के चारो पुत्रो का और दाराशिकोह के प्रति सम्राट के विशेष प्रेम का उल्लेख। उनमें उत्तराधिकार का युद्ध तथा औरगजेब और मुराद का आपसी सहयोग।

(वही पृ० ४२-४३)

६ चपतराय का औरगजेब की सेनाओ को चबल नदी पार कराना और शामूगढ के युद्ध मे दारा के विरुद्ध युद्ध।

(वही पृ० ४४-४६)

७ दतिया के शुभकरण बुंदेला और चँदेरी के देवीसिंह बुंदेला को चपतराय के दमन को नियुक्त किया जाना।

(वही पृ० ५०-५२)

८ चपतराय की महरा में मृत्यु।

(वही पृ० ६३-६५)

९ छत्रसाल का जयसिंह की सेना में सम्मिलित होना।

(वही पृ० ७१-७२)

१० छत्रसाल और शिवाजी की भेंट।

(वही पृ० ७९-८०)

११ औरगजेब की मदिर विध्वस करने की नीति का विवरण।

(वही पृ० ८१-८२)

१२ दुर्गादास राठौर के नेतृत्व में राजपूतो का मुगलो से युद्ध। शाहजादा अकबर का राजपूतो के विरुद्ध भेजा जाना और उनका उनसे मिल जाना तथा बाद में दुर्गादास के साथ दक्षिण चले जाना।

(वही पृ० १०८)

१३ औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् बहादुरशाह का सिंहासनारूढ होना और उनसे संधि के पश्चात् छत्रसाल का लोहागढ के घेरे (दिसंबर १७१०) में भाग लेना।

(वही पृ० १६१-१६२)

औरगजेब के काल के अखबारो के अध्ययन से यह पाया गया है कि लगभग वे सभी मुगल फौजदार और सेनापति (रुहुल्ला खाँ या रणदूला खाँ, मुनव्वर खाँ, मुराद खाँ, सैयद लतीफ, शेर अफगन, सदरुद्दीन, शाहकुलीन आदि) जिनसे छत्रसाल के युद्धो का वर्णन छत्रप्रकाश और छत्रसाल के पत्रो मे दिया गया है, किसी न किसी समय बुंदेलखड में ही नियुक्त थे।[१४]

शिवाजी से छत्रसाल की भेंट के पश्चात् से लेकर लोहागढ के युद्ध तक हुई घटनाओ के जो वर्णन लाल कवि ने किये है उनका लगभग पूर्ण समर्थन छत्रसाल के जगतराज को लिखे गये पत्रो मे होना है। इन पत्रो और छत्रप्रकाश के वर्णनो मे यह जो समानता है उसका कारण यही है कि इन घटनाओ सबधी सूचना लाल कवि को स्वय छत्रसाल से प्राप्त हुई थी। इस प्रकार छत्रप्रकाश का ऐतिहासिक महत्त्व स्पष्ट ही बहुत अधिक है। लाल कवि ने वैसे दरबारी कवि होने के कारण अक्सर घटनाओ के वर्णन को अपने आश्रयदाता छत्रसाल के पक्ष मे अतिरजित कर दिया है, पर फिर भी उन्होने मूल सत्य को कभी नही छोडा और यहाँ तक कि शेर अफगन द्वारा छत्रसाल की पराजय का उल्लेख करने से भी वह नही चूके।[१५]

---

१४ इस ग्रंथ का तीसरा अध्याय देख।

१५ छप्र० पृ० १४७।

छत्रसाल का परिवार : ९ :

१ उनकी रानियाँ

छत्रसाल का परिवार बहुत बडा था। उनकी रानियाँ बहुत सी थी, परन्तु यह निश्चित नही हो सका है कि उनकी सख्या क्या थी। छत्रसाल का प्रथम विवाह पँवार कुमारी देवकुँवर से हुआ था। यही उनकी पटरानी थी। सहरा के धँधेरो ने भी छत्रसाल से पराजित होकर अपनी एक कन्या उन्हे व्याह दी थी। छत्रसाल का एक और विवाह सावर में सपन्न हुआ था। छत्रप्रकाश में उनके इन्ही तीन विवाहो का उल्लेख मिलता है।[1] श्री वियोगी हरि का कहना है कि छत्रसाल के केवल १३ रानियाँ थी। श्यामलाल ने पट्टियों और भाटो से प्राप्त सूचना के आधार पर छत्रसाल की विधिवत व्याही १६ रानियो के नामो की सूची अपने ग्रथ में दी है, जब कि गोरेलाल उनकी सख्या १७ निश्चित करते है।[2] इन रानियो में पिछडी जातियो की स्त्रियाँ और मुसलमान उपपत्नियाँ भी थी। कहा जाता है कि छत्रसाल की एक रानी गडेरिन थी, जिसके पुत्र मोहनसिंह को महोवा से १० मील दूर श्रीनगर की जागीर दी गई थी। एक मुसलमान उपपत्नी से भी छत्रसाल के शमशेर खाँ और खाँजहाँ नामक दो पुत्र और एक पुत्री थी। जनश्रुति है कि यही पुत्री पेशवा बाजीराव प्रथम को भेंट की जाने वाली प्रसिद्ध मस्तानी थी।[3]

यद्यपि छत्रसाल की पत्नियो के विषय में विशेष विश्वसनीय सूचना प्राप्त नही हो सकी है, तथापि जो उल्लेख यत्र तत्र मिलते है, उनसे इसी बात का समर्थन होता है कि उनके बहुत सी रानियाँ थी। छत्रसाल प्राय जिन विरोधियो को पराजित करते थे, उनकी पुत्रियो से विवाह कर लेते थे। उन्होंने इस प्रकार बुंदेलखड के कई छोटे-छोटे राजाओं और जागीरदारो से निकट सबध जोड लिये थे जिससे वे उनका सहयोग और सहायता प्राप्त करने में सफल हो सके थे। परन्तु यह बात भी नही है कि विवाहो द्वारा बरती जाने वाली उनकी यह राजनीति सदैव सफल ही हुई हो। उदाहरणार्थ बगश युद्ध (१७२९ ई०) के समय छत्रसाल का पुत्र हिरदेसाह रीवाँ राज्य को पादाक्रांत कर वहाँ की एक राजकन्या का डोला अपने

---

१. छत्र० पृ० ७०, ७५, ९५, १०६।

२ छत्र० ग्रं० पृ० ५, श्याम० २, पृ० ६१-६२, गोरे० पृ० २१६।

३. नाग० प्रचा० पत्रिका, जि० ६, पृ० १८२-८३।

अनुज जगतराज के लिए ले आया था।[४] उसके इस कार्य से बघेलखंडियो में जो अपमानजनित रोष उत्पन्न हुआ वह अभी तक बघेलखडियो और बुंदेलखडियो के पारस्परिक मनोमालिन्य के रूप मे चला आता है।

छत्रसाल की रानियो मे सबसे ज्येष्ठ देवकुँवर ही उनकी विशेष प्रेमपात्री थी। जब छत्रसाल मिर्जा राजा जयसिंह का साथ छोडकर शिवाजी से भेंट करने चल पडे थे तब इस सकटमय यात्रा मे देवकुँवर भी उनके साथ थी।[५] उस समय छत्रसाल की आयु लगभग १८ वर्ष की थी। देवकुँवर उनसे छोटी ही थी। पर इस छोटी आयु मे भी उन्होने जिस पतिनिष्ठा और दृढता का परिचय दिया, उससे छत्रसाल सहज ही उन पर मुग्ध हो उठे। देवकुँवर की मृत्यु सभवत छत्रसाल से बहुत पहले ही हो गई थी। उस समय उनका पुत्र हिरदेसाह शिशु ही था, जिसका सकेत हमें निम्नलिखित पद में मिलता है जो स्थानीय लोकश्रुतियो के अनुसार छत्रसाल ने बगश के आक्रमण के समय हिरदेसाह को लिख भेजा था

बारे ते पालो हतो, फोहन दूध पिलाय।
जगत अकेलो लडत है, जो दुख सहो न जाय॥

छत्रसाल ने देवकुँवर के स्मृति-चिह्न हिरदेसाह को बडे लाड-प्यार से पाला और योग्य अवस्था प्राप्त होने पर उसी को अपना मुख्य उत्तराधिकारी और पन्ना का शासक नियुक्त किया। जगतराज की माँ का स्थान रनिवास मे द्वितीय था। वे ईर्षालु प्रकृति की थी। छत्रसाल के राज्य के बँटवारे को लेकर उन्होने हिरदेसाह और जगतराज में बहुत कटुता उत्पन्न कर दी थी। इसलिए छत्रसाल उनसे प्रसन्न न थे। उनकी मृत्यु जैतपुर में मार्च १७३० के मध्य में हुई। पर छत्रसाल ने उनके दाह सस्कार मे स्वय भाग न लेकर केवल एक सात्वना का पत्र जगतराज को लिख दिया और एक लाख रुपया उनके अन्तिम सस्कारो के लिए भेज दिया।[६] छत्रसाल की अन्य रानियो के सबध मे कोई विशेष उल्लेखनीय सूचना प्राप्त नही हुई है।

२ छत्रसाल के पुत्र

छत्रसाल के पुत्र भी बहुत से थे। उनकी ठीक-ठीक सख्या भी रानियों की सख्या की तरह अनिश्चित ही है। श्यामलाल के कथनानुसार छत्रसाल के ६८ पुत्र थे, जिनमें से ५४ उनकी विवाहित पत्नियों से और १४ उनकी उपपत्नियो से उत्पन्न हुए थे। कुँवर कन्हैया जू ६४ पुत्रों का उल्लेख करते हैं, जिनमें से केवल ५२ को ही वे छत्रसाल के औरस पुत्र मानते है,

---

४ पन्ना० ३३। हिरदेसाह रीवाँ में अपनी विजय की स्मृति में एक बुंदेला दरवाजे का भी निर्माण करा आया था।

५ छत्र० पृ० ७८

६ पन्ना० ४२।

और शेप को दत्तक या मुंहवोले पुत्र समझते हैं। पाग्सन छत्रसाल के पुत्रो की सख्या १३ ही निश्चित करता है। पर उसी के कथनानुसार उनकी सख्या १७ होनी चाहिए। पाग्सन लिखता है कि "उनके १३ पुत्र थे, हिरदेसाह, जगतराज, पदम सिंह और भारतीचन्द ज्येष्ठ रानी से उत्पन्न थे और १३ पुत्र दूसरी पत्नियो तथा उपपत्नियो से थे।" लोकश्रुतियों के अनुसार छत्रसाल के ५२ पुत्र थे। मासिर-उल-उमरा में भी उनके वहुत से पुत्र होने का उल्लेख है।[७] निश्चित सूचना के अभाव में छत्रसाल के पुत्रो की वास्तविक सख्या के सवध में निश्चयात्मक रूप में कुछ भी कहना कठिन है, पर इतना अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि उनके पुत्रो की सख्या काफी वडी थी।

सामान्यत यह ही माना जाता है कि छत्रसाल के इन पुत्रो में हिरदेसाह, जगतराज, पदम सिंह और भारतीचन्द ये चार पटरानी से उत्पन्न हुए थे और हिरदेसाह इनमें ज्येष्ठ था क्योंकि छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् वही मुख्य गद्दी पन्ना का उत्तराधिकारी हुआ था।[८] परन्तु यह धारणा भ्रमात्मक है। ये चारो ही सौतेले भाई थे। पदम सिंह ही जिसे छत्रसाल का तृतीय पुत्र समझा जाता है, वास्तव में उनका प्रथम पुत्र था और छत्रसाल के एक पत्रानुसार जगतराज की आयु भी हिरदेसाह से २-३ माह अधिक ही थी। हिरदेसाह वास्तव में छत्रसाल का तृतीय पुत्र था। पर पदम सिंह और जगतराज ज्येष्ठ होते हुए भी पन्ना की गद्दी के उत्तराधिकारी न हो सके क्योंकि वे छोटी रानियों से उत्पन्न थे। हिरदेसाह पटरानी का पुत्र था और इसलिए छत्रसाल ने उसे राज्य के सबसे वडे भाग और पन्ना की गद्दी का उत्तराधिकारी वनाया।[९] जगतराज की मा छत्रसाल के इस दृष्टिकोण से सहमत न थी। उन्होंने

---

७ श्याम० २, पृ० ६२-६४, नाग० प्रचा० पत्रिका, जि ६, पृ० १८२-८३, गोरे० पृ० २३१; पाग्सन पृ० १०५; मा० उ० २ पृ० ५१२।

८ पाग्सन० पृ० १०५।

९. पन्ना० ८, ७०। छत्रसाल के यह दोनो पत्र जगतराज को लिखे गये हैं। पहिले पत्र में छत्रसाल लिखते है "राव पदम सिंह सबसे जेठे आयें चाहे कै हमारी बात हिरदेसाह से जादा हो जावे तो नहीं हो सकत। जिठाई में सोई विवरा होत है "

दूसरे पत्र में इस 'विवरा' को वे जगतराज को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "तुम सं वन सें (हिरदेसाह से) दो-तीन महीना की लुहराई-जिठाई है तुमारी वऊआ जू (माँ) वीहट में काहे को परी हैं कै हमारे कुँवर परना के राजा हू हैं तुमको ई कै मध्धै कंऊ वपत लिप चुकें कै वनकौ समझा देव अरु कहती हैं कै हमारे कुँवर पहिला भये हैं सो वेई परना के राजा हू हैं ताको जब दलेल से लड़ाई भई ऊ वपत पै तुमारी वऊआ जू ने ये ही बात कही हती कै सो वे रिसा कै रीमा को जात रहे हते अब फिर उसकारनी करती हैं हमारी मौजूदगी में काहू को कछू नहीं होत और परना के राजा होवे को हक हिरदेसाह को है जेठे वे आयें कछू तुम नहीं हो पहिला तुम्हारो जनम हो गयो है सो जेठे ना कहायो जेठे हिरदेसा

जगतराज को इस बँटवारे के विरुद्ध उकसाया और उसे पन्ना की गद्दी स्वय प्राप्त करने को उत्तेजित किया, जिसके फलस्वरूप जगतराज और हिरदेसाह में तो कटुता उत्पन्न हो ही गई, साथ ही छत्रसाल भी जगतराज और उसकी मा से अप्रसन्न हो गये। छत्रसाल उत्तराधिकार सबधी अपने निश्चयो पर अडिग रहे और अपने कई पत्रो में उन्होने जगतराज तथा उसकी माता की कुटुम्ब में फूट डालने वाली बातो की तीव्र भर्त्सना करते हुए उन्हे खूब ही फटकार बताई।[10]

परन्तु छत्रसाल बिल्कुल ही पक्षपात-रहित हो, सो बात भी नही थी। हिरदेसाह पर उनका सबसे अधिक प्रेम था। अपनी मृत्यु के पश्चात् राज्य के विभाजन मे उन्होने हिरदेसाह को सवाया और जगतराज को तीन चौथाई भाग मिलने की व्यवस्था की थी, और इसी अनुपात से सेना, तोपें, राज्य-कोप आदि भी बाँटने के आदेश अपने कर्मचारियो को दिये थे। पर छत्रसाल के एक छुपे हुए कोप में ६ करोड रुपये सचित थे जिनका किसी को कोई पता न था। यह कोप उन्होने केवल हिरदेसाह को बता दिया और जगतराज को इसमें से कुछ भी न मिल सका। किंतु जगतराज को इस कोप के हिरदेसाह को दिये जाने का समाचार किसी प्रकार मिल ही गया और उसने छत्रसाल को इस सबध मे एक पत्र भी लिखा। पर छत्रसाल ने ऐसे किसी कोप के होने की अफवाह तक का खडन करते हुए जगतराज को एक कडा पत्र लिख उसे चुप कर दिया। वे जगतराज को अयोग्य समझते थे और उसके ईर्षालु स्वभाव से भलीभाँति परिचित थे। इसलिए यह सोचकर कि उनकी मृत्यु के पश्चात् राज्य के अधिकाश भाग की रक्षा का भार हिरदेसाह के कधो पर पडेगा, उन्होने यह ६ करोड की रकम चुपचाप उसे दे दी। मृत्यु से दो ही दिन पूर्व, दिसम्बर २, १७३१ ई० के एक पत्र में उन्होने हिरदेसाह को यह रकम सँभाल कर केवल भयकर सकटो में जब मुगल या अन्य शत्रु आक्रमण करें, तभी खर्च करने की सलाह दी थी।[11]

राज्य के बँटवारे के सिवा छत्रसाल ने अन्य किसी बात में हिरदेसाह का विशेष पक्ष नही लिया। उनका वैसे सभी पुत्रो पर समान प्रेम था। जगतराज के अयोग्य होने और उसके हिरदेसाह से द्वेष रखने पर भी छत्रसाल का उस पर स्नेह था। जगतराज के जिज्ञासा प्रकट करने पर वे ८० वर्ष की वृद्धावस्था में भी घटो बैठकर अपने प्रारम्भिक जीवन और सघर्षो का वर्णन पत्रो द्वारा लिखवा कर उसे भिजवाया करते थे। अपने सबसे ज्येष्ठ पुत्र पदम सिंह पर भी उनका स्नेह कम न था। एक बार तो उन्होने मऊ से पन्ना तक की लगभग ५० मील

---

(६) कहावत हैं जो येक जनी के तुम दोऊ जने होते तो जेठे तुम कहावते हिरदेसा(ह) की मतारी जेठी आये और वे तुमसे पाछे भये तो वे तुमसे जेठे कहा हैं घर के उपदरे में कछू सार न पड़ हैं सो अपनी बऊआ जू को समझा दीजो।"

१० पन्ना० ७, ८, १३, २५, २६, २६, ५०, ७०

११ पन्ना० ४६, ५०, ५१, ५२, ६२, ८१, ७५, ८७।

पत्र की प्रतिलिपि

———o———

श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव कौ हुकम अेते दिमान जगतराज जू देव कौ आपर हम दिकदार रहत है ती सैं लिपी है कैं तुम वा हिरदेसाह मिल कैं रहौ हमारी मौजूदगी मै तुमारी सब वन परी जा तुमारौ इनकौ अेक मन रैहे तो कोऊ कछू नही कर सकत है वा फूटन हो जै है जौ चाहै राज वढा लेवै तीसैं दोऊ जनें मिल कैं रहौ व हिरदेसाह कौ बुलावो है वा तुम आऔ जो कछू तुम कौ कहने है मो दोऊ जनन ते कैहै या तुमारी वनकी अपने सामने बातचीत हो जावै

परचा हमने अपने हातन लिषौ है

अगहन सुदि १ संवत १७८८ मुकाम मऊ

शुक्रवार, १६ नवंबर १७३१ ई०

की यात्रा केवल पदम सिंह को मुग़ल सेना में मराठों के विरुद्ध प्रशंसनीय सेवा के उपलक्ष्य में बधाई देने के लिए ही की थी। छत्रसाल की हार्दिक इच्छा थी कि उनके पुत्र भी उनके समान ही कठिनाइयों का सामना करने योग्य बनें और उनके पश्चात् भी राज्य को यथावत् बनाये रखें। इसी उद्देश्य से वे अक्सर उन्हें प्रेरित करने के लिए अपने संघर्षों के बारे में उनसे चर्चा किया करते थे। अपने जीवनकाल में ही छत्रसाल ने राज्य के प्रदेशों को अपने पुत्रों में बाँट-कर उनके शासन का भार उन पर छोड़ दिया था, ताकि उन्हें उन प्रदेशों की शासनसंबंधी बातों का ज्ञान हो जाय। अपने पुत्रों में गृहयुद्ध की संभावना दूर करने के लिए उन्होंने राज्य के विभाजन संबंधी अपने इरादे उन्हें पहले से ही अवगत करा दिये थे। इतना ही नहीं, मृत्यु से कुछ दिन पहले छत्रसाल ने अपने चार मुख्य पुत्रों पदम सिंह, हिरदेसाह, जगतराज और भारतीचन्द को मऊ में अपने पास बुलाकर राज्य की सुरक्षा के लिए मिलजुल-कर रहने की प्रेरणा दी जिसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु के पश्चात् फिर कोई कटुता उनके आपसी संबंधों में दिखाई न पड़ी। यहाँ तक कि हिरदेसाह और जगतराज का विद्वेष भी लगभग समाप्त सा ही हो गया।[12] इस प्रकार अपने अन्तिम समय में छत्रसाल राज्य की चिन्ताओं से मुक्त हो गये और उन्हें यह संतोष हो गया कि मुग़ल साम्राज्य से निरन्तर संघर्ष करके उन्होंने जिस स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना की थी, वह महाराष्ट्र की हिन्दू पद-पादशाही की छाया में उनके पुत्रों के अधीन सुरक्षित बना रहेगा।

३. छत्रसाल के सहयोगी बंधु

छत्रसाल के चार भाई थे। इनमें से सबसे ज्येष्ठ सारवाहन की मृत्यु तो छत्रसाल के जन्म के पूर्व ही झाँसी के पास खैल्हार में मुग़लों से युद्ध करते हुए हो गई थी। उनके दो भाई अंगद और रतनशाह स्वतन्त्रता संग्राम में उनके साथ ही थे। ये दोनों भी छत्रसाल से आयु में बड़े थे। छत्रसाल के सबसे छोटे भाई गोपाल के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं मिलता।

छत्रसाल को अपने भाइयों एवं संबंधियों से भरपूर सहायता और सहयोग प्राप्त हुआ था। लाल कवि के अनुसार उनके सत्तर संबंधियों ने मुगल विरोधी संघर्षों में उनका साथ दिया था।[13] मुग़लों से प्रारम्भिक मुठभेड़ों में छत्रसाल के भाई निरन्तर उनके साथ रहे जैसा कि समकालीन मुग़ल अखबारों में बार-बार 'चंपत के पुत्रों' के उल्लेख आने से प्रतीत होता है। पर चंपत के पुत्रों के सम्बन्ध में ये उल्लेख १६७८ ई० और १६८५ ई० के बीच के ही अखबारों में उपलब्ध हैं। सन् १६८५ ई० के पश्चात् ऐसे उल्लेख न मिलने से

१२. यह पूर्ण विवरण पत्रा० १, ३, ६, २६, ५०, ८५, ८६, ८७, और १०० पर आधारित है।

१३ छत्र० पृ० १०२, १०३।

ऐसा अनुमान होता है कि या तो छत्रसाल के सिवा अन्य 'चपत के पुत्रों' की मृत्यु १७वी सदी के अन्तिम दशक में हो गई थी, अथवा छत्रसाल का महत्त्व अधिक बढ जाने से शाही समाचार देने वालो ने फिर उनका उल्लेख ही नही किया। चपतराय के पुत्रो में छत्रसाल ही सबसे अधिक प्रतिभाशाली सिद्ध हुए और उनकी सफलताओ ने उन्हे जो यश प्रदान किया उसके समक्ष जन साधारण उनके अन्य भाइयो को भूल से गये। इस भाव को लाल कवि ने बडी ही कुशलता से निम्नलिखित पद में व्यक्त किया है —

जदपि नदी पानी भरी, अपने अपने ठाँउ।
पै गगा में मिलत ही, गगा ही को नाँउ ॥

(छत्र० पृ० १८)

छत्रसाल का शासन : १० :

१. राज्य का विस्तार

छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रों और पेशवा बाजीराव प्रथम को जो प्रदेश मिले, अगर उनसे छत्रसाल के राज्य की सीमाओं को निर्धारित किया जाय, तो उनके राज्य का विस्तार उत्तर में यमुना तट पर कालपी से दक्षिण में सिरोज और सागर तक और पश्चिम में ओरछा, दतिया तथा ग्वालियर की सीमाओं से लेकर पूर्व में बघेलखंड के जसो, मैहर और बीरसिंहपुर के इलाकों तक था। इस विस्तृत भूखंड में उत्तरप्रदेश के झांसी जिले का कुछ भाग, जालौन, बांदा, और हमीरपुर के जिले, आधुनिक मध्यप्रदेश में विलीन हुई अजयगढ़, चरखारी, पन्ना, बिजावर, शाहगढ़, छतरपुर, सरीला, अलीपुर आदि रियासतें और सागर तथा सिरोज भी शामिल थे।[१] छत्रसाल के राज्य का विस्तार पूर्वी और उत्तरी बुंदेलखंड में ही अधिक था। यह प्रदेश घने जंगलों, गहरी घाटियों और पर्वतश्रेणियों से आवृत्त होने के कारण 'डंगैया' राज्य कहा जाता था।[२]

छत्रसाल के लूट का क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत था। उन्होंने कई बार सूबा मालवा तक छापा मारे और भेलसा से चौथ वसूल की। नरवर और चंदेरी को भी कई बार लूटा। बघेलखंड में रीवां तक के प्रदेश को हिरदेसाह ने बंगश युद्ध के समय १७२९ ई० में जीत ही लिया था। पर तुरन्त ही छत्रसाल के आदेशानुसार हिरदेसाह विजित प्रदेश को पुन रीवां के शासक को लौटा कर बंगश का मुकाबला करने जैतपुर चला आया था। छत्रसाल की सैनिक टुकड़िया ग्वालियर तक जा पहुँचती थी और निकटवर्ती गांवों को लूट डालती थी। अपने सीमाप्रान्त के शाही प्रदेशों पर छापा मारकर छत्रसाल शिवाजी की तरह अपने युद्धों को आर्थिक रूप से उपयोगी बनाते थे। उनके इन आक्रमणों को चौथ देकर टाला जा सकता था।

---

१. पारसन० (पृ० १०५,१०७) के अनुसार छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् पेशवा के भाग में कालपी, हट्टा, सागर, झांसी, सिरोंज, कोंच, गढाकोटा और हिरदेनगर आदि आये थे। हिरदेसाह को पन्ना, कालिंजर, मऊ, एरछ, धामोनी आदि के प्रदेश मिले थे और जगतराज के हिस्से में जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, भूरागढ़, बांदा आदि पड़े थे।

देसाई० २, पृ० १०८ और गोरे० पृ० २३२ भी देखें।

२. 'डंगैया' शब्द 'डांग' से बना है। बुंदेलखंडी में डांग घने जंगल को कहते हैं।

जिन प्रदेश पर आक्रमण किया जाता था, उसकी मालगुजारी के चौथाई भाग को चौथ कह कर वसूल किया जाता था।[३]

छत्रसाल साधारणत अपने पडोस के ओरछा, दतिया, चंदेरी आदि के बुंदेला राज्यो पर कभी आक्रमण नही करते थे। वे व्यर्थ में ही उनसे शत्रुता मोल लेना नही चाहते थे। पर जब इन राज्यो के शासक मुगलो से मिलकर छत्रसाल के दमन को कटिबद्ध हो जाते तो फिर छत्रसाल उन्हे भी सबक सिखाने मे नही चूकते थे।

२ शासन प्रबंध

छत्रसाल का राज्य ४० परगनो म बँटा हुआ था।[४] पर यह परगने मुगल महालो मे भी छोटे होते थे और अक्सर एक मुग़ल महाल के कई छोटे-छोटे भागो में विभाजित हो जाने से बने थे।[५] इन परगनो के शासन के सम्बन्ध में बहुत ही कम जानकारी प्राप्त है। उस अशान्तिपूर्ण युग में किसी स्थायी शासन व्यवस्था का निर्माण करना कठिन था। मराठो की भाँति छत्रसाल को भी अपने राज्य की रक्षा के लिए निरन्तर युद्धो में लगे रहना पडता था, जिसके फलस्वरूप शासन की समस्याओं की ओर वे विशेष ध्यान नही दे सके। और फिर उनमे शिवाजी जैसी शासकीय प्रतिभा भी नही थी। इसलिए उन्होंने उस समय अन्य बुंदेला राज्यो में प्रचलित शासन प्रणाली को ही, जो बहुत अशो में मुगल शासन व्यवस्था के अनुरूप थी, अपना लिया।

छत्रसाल की शासन व्यवस्था मूलत सामतवादी ही थी। राज्य के प्रदेशो को दो भागो में बाँट दिया गया था। मुगलो के 'खालसा' प्रदेशो की तरह कुछ प्रदेशो का शासन सीधे दरबार से ही होता था और शेष प्रदेशो को जागीरो के रूप में जागीरदार, सैमारदार और पदरथियो आदि को दे दिया जाता था।[६] जागीरदारो और सैमारदारो को एक निश्चित संख्या में सैनिक रखने पडते थे, जिन्हे साथ लेकर वे छत्रसाल के युद्धो में भाग लेते थे। जागीरदारो में अधिकाश राज घराने के लोग और सबधी ही होते थे। सैमारदार वे लोग होते थे, जिन्हे उनकी सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप भूमि प्रदान की जाती थी। सैमारदार जागीरदारो से नीची श्रेणी के होते थे और अपनी भूमि पर साधारण-सा कर भी देते थे। पदरथियो

---

३ पत्रा० ७८।

४ पत्रा० ४६।

५ कोटरा, सैयदनगर, मऊ, महोनी आदि परगने जिनके उल्लेख पुराने कागजातो में मिलते हैं, प्राय सभी बुंदेलों के काल में बनाये गये थे।

जालौन गजे० पृ० १२८।

६ पत्रा० ३६, ६२ और ८२। सैमारदार और जागीरदारो का उल्लेख छत्रसाल के इन पत्रों में आया है।

को दान दी गई भूमि या जागीर पर कोई कर नहीं देना पडता था। वे सामन्ती कर्तव्यों से भी मुक्त रहते थे। पदस्वी अधिकतर ब्राह्मण होते थे। उनको केवल समय समय पर धार्मिक अवसरों और अन्य उत्सवों पर उपस्थित होना पडता था। मन्दिरों के व्यय के लिए भी भूमि और जागीरें दी जाती थीं।[७]

भूमि की मालगुजारी दो प्रकार की होती थी। एक को 'मनियावन'[८] कहते थे और दूसरी 'कनकूति'[९] कहलाती थी। मनियावन में मालगुजारी की एक निश्चित रकम मुग़लों के समय से चली आयी फसल की अनुमानित उपज या बोये गये बीज के मूल्य के आधार पर निर्धारित की जाती थी। कनकूति व्यवस्था में खडी हुई फसल का मूल्यांकन पटवारी और गाँव का मुखिया करते थे। इस मूल्यांकन में फसल के चौथाई भाग को किसान के खर्च की पूर्ति के लिए छोड दिया जाता था और शेष का चौथाई या छठवाँ भाग राज्य को मालगुजारी के रूप में ले लिया जाता था।[१०]

परगनों में चौधरी और कानूनगो मालगुजारी सम्बन्धी मुख्य अधिकारी होते थे। पन्ना के राजा किशोरसिंह (१७९८-१८३४) को १८०७ और १८११ ई० में अंग्रेजों द्वारा दी गई सनदों में इन दोनों अधिकारियों का विशेष उल्लेख होने से स्पष्ट है कि स्थानीय शासन में इनका महत्त्व बहुत अधिक था।[११]

अपने एक पत्र में छत्रसाल प्रत्येक परगना में एक मुनद्दी के नियुक्त होने का उल्लेख करते हैं। यह पत्र पन्ना के फौजदार को लिखा गया है जिससे प्रतीत होता है कि परगनों का एक अन्य विशेष पदाधिकारी फौजदार भी होता था।[१२] मुनद्दी हिसाब-किताब सम्बन्धी बातों और अन्य व्यय का लेखा जोखा रखता था। फौजदार का मुख्य कार्य परगनों में शान्ति

---

७. पन्ना० गजे० पृ० २६, ३०, ८४-६७।

८ 'मनियावन' शब्द मनि से बना है। एक मनि का वजन लगभग ७ मन होता था।

९ 'कनकूति' या खनकूति की उत्पत्ति खनरी से हुई है जिसका वजन लगभग १ मन १० सेर होता था।

१०. पन्ना० गजे० पृ० २९। पन्ना गजेटियर में अंग्रेजों के पूर्व की जिस मालगुजारी व्यवस्था का वर्णन है सम्भवतः वह छत्रसाल के समय से ही चली आ रही थी। मुग़लों के समय में बुंदेला राज्यों में जो मालगुजारी व्यवस्था अपनाई गई थी वह १९वीं सदी के प्रारम्भ तक यथावत चालू रही, तत्पश्चात् अंग्रेज शासकों ने अपने हितों को ध्यान में रखकर उसमें कुछ हेर फेर कर दिये।

११. पन्ना० गजे० पृ० ४१-४३। यह सनदें इन शब्दों से प्रारम्भ होती हैं —
Be it known to the chowdries Canoongoes etc .

१२. पन्ना० ४६।

बनाये रखना था। वह अन्य सेना संबंधी कर्तव्यों का भी पालन करता था। उसके कार्य शेरशाह के शासन में शिकदर और मुगलों के फौजदार के ही समान थे।

अन्य प्रशासकीय विभागों के कर्मचारियों में किताबी, बुतायती, बख्शी, दफ्तरी, और खास कलम आदि के विशेष उल्लेख प्राप्त हुए हैं। किताबी सरकारी कागजातों को सभालकर सिलसिलेवार रखता था, जिससे आवश्यकता पडने पर उन्हें शीघ्र प्रस्तुत किया जा सके। बुतायती सभवत मुगल शासन के दीवाने बयुतात का अपभ्रंश है। बुतायती पर राजकीय व्यय का हिसाब रखने और राज महलों में आवश्यक वस्तुएं पहुँचाने का भार था। शायद उसके कार्य मुगल शासन के खान-इ-समान के अनुरूप ही होते थे।[13] बख्शी आय-व्यय का ब्यौरा रखता था और अन्य विभागों की आय-व्यय के जो ब्यौरे तैयार किये जाते थे, उनकी जाच करता था। इन विभिन्न विभागों में काम करने वाले मुंशियों को दफ्तरी कहा जाता था। राजा के व्यक्तिगत सचिवों को खास कलम कहते थे। इन्ही के द्वारा राजा का व्यक्तिगत और गुप्त पत्र व्यवहार होता था। राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण मामलों की जानकारी इन्हें होती थी। इसलिए इस पद पर बहुत ही विश्वासपात्र लोगों को रखा जाता था। खास कलम के पास ही राज्य की मुहरें रहती थी। छत्रसाल की मुहर में एक विशेषता थी। उनकी मुहर पर 'नही' अंकित रहता था, पर जिसका तात्पर्य एकदम उल्टा होता था, अर्थात् 'नही' का अर्थ 'सही' समझा जाता था। छत्रसाल के पत्रों के सिरनामों पर निम्नलिखित चेतावनी भी होती थी —

जान है सो मान है,
ना मान है सो जान है।

उपर्युक्त पदों पर साधारणत कायस्थ, ब्राह्मणों और ठाकुरों को ही नियुक्त किया जाता था। छत्रसाल उनकी नियुक्ति स्वयं करते थे और कभी-कभी अपने पुत्रों से इन पदों पर नियुक्ति के लिए उपयुक्त लोगों के नामों की सूची भी मँगवा लेते थे।[14] राज्य में डाक चौकी की भी व्यवस्था थी और हरकारों तथा सांडनी सवारों द्वारा समाचारों का आदान प्रदान शीघ्रता से होता था। एक हरकारा एक दिन में ४० मील तक के समाचार ले आता था।[15]

३ आय और राज्य कोष

छत्रसाल के राज्य की वार्षिक आय लगभग डेढ करोड रुपये थी।[16] फ्रैंकलिन के अनुसार छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् हिरदेसाह और जगतराज को जो प्रदेश मिले थे, उनकी

---

१३ सरकार कृत 'मुग़ल एडमिनिस्ट्रेशन' पृ० ४४, ४५।

१४ पन्ना० ८१।

१५ वही, २५, ४८, ६८।

आय क्रमश रु ३८,४६,१२३ आ १३ पा १० और रु ३०,७६,९५३ आ १ पा १ थी। पेशवा वाजीराव प्रथम के भाग मे जो राज्य आया था, उसकी आमदनी भी जगतराज के राज्य के वरावर रु ३०,७६,९५३ आ १ पा १ थी।[१७] इस वटवारे में लगभग ५० लाख की आय के प्रदेशो को छोड दिया गया था क्योंकि छत्रसाल ने पेशवा को अपने राज्य की कुल आमदनी केवल एक ही करोड वतलाई थी। उपर्युक्त विभाजन के अतिरिक्त छत्रसाल ने २३ लाख मे ३५ लाख तक की आय के प्रदेशो को अपने जागीरदारो और मैमारदारो में वांट दिया था। उनके ज्येष्ठ पुत्र पदम सिह को एक वार ३½ लाख की जिगनी की जागीर और चौथे पुत्र भारतीचन्द को २½ लाख की कुटरो की जागीरें दी जाने के भी उल्लेख मिलते हैं। जगतराज की रानी जेत कुँवर को भी वगश से युद्ध करने के उपलक्ष्य में जलालपुर और दरमेंडा के दो परगने दिये गये थे। जिनकी आय छ लाख थी। कुछ और भी छोटी-छोटी जागीरो का अन्य लोगो को दिया जाना सभव है। इन सव वातो को ध्यान में रखते हुए यह ठीक ही जान पडता है कि छत्रसाल के राज्य की आय डेढ करोड थी।[१८]

राज्य की मालगुजारी के अतिरिक्त पन्ना की हीरे की खानो, चौथ और लूटपाट आदि से भी कम आय न थी। छत्रमाल के राज्यकोप भरे थ। पन्ना, महेवा, और जैतपुर के कोपो में कुल मिलाकर ५ करोड रुपये सचित थे। नौ करोड रुपये और वहुत-सी स्वर्ण मुहरो का एक अलग कोप केवल छत्रमाल की जानकारी में था, जिमका पता अपनी मृत्यु मे कुछ दिन पहले वे हिरदेसाह को दे गये थे। चौदह करोड की इम धनराशि के अतिरिक्त मोना, चांदी और रत्नजडित आभूपण भी प्रचुर मात्रा में थे।[१९]

४ सैन्य सगठन

छत्रमाल की स्थायी सेना में ४१-४२ हजार पैदल और १२ हजार घुडसवार थे। छोटी-वडी ३०० तोपो का एक लश्कर अलग था। यह सेना और तोपें परगनो में उनकी आव-

---

१७ पागसन० पृ० १०५, १०७। छत्रसाल के राज्य का यह वटवारा उनके निर्देशनो के अनुसार हुआ नहीं जान पडता। छत्रसाल ने अपने राज्य का सवाया (१¼) भाग हिरदेसाह को और तीन चौथाई (¾) भाग जगतराज को तथा इन दोनो भागो का एक तिहाई (⅓) भाग पेशवा को देने के आदेश दिये थे। (पन्ना० ६२)। इन आदेशो को पालन करने पर जगतराज का भाग और कम होता और पेशवा का भाग जगतराज के भाग के वरावर न होकर उससे अधिक होता।

इस विभाजन सवंधी जो सूचना अन्य ग्रथो में मिलती है, वह भी विश्वसनीय नहीं है। (गोरे० पृ० २३२ और श्याम० २, पृ० ६४-६६ भी देखें।)

१८ पन्ना० १, ३, २२, ३६, ६२।

१९ वही, ४६, ५१, ८७, ८८।

श्यकतानुसार बँटी हुई थी। हर परगने में दो सौ से लेकर पाच सौ सैनिक और एक या दो तोपें होती थी। इन सैनिको और उनके नायको का वेतन उसी परगने की आय से दिया जाता था। सात हजार सैनिक २० तोपो सहित हर समय पन्ना की रक्षा के लिए सनद्ध रहते थे। तीन हजार सैनिक और २०-२५ तोपें जैतपुर में थी, और छत्रसाल के पास २० हजार सेना और १०० तोपो का एक तोपखाना अलग था। घुडसवार सेना के वितरण सबधी सूचना उपलब्ध नही है। केवल घुडसवारो को राज्य की ओर से घोडे दिये जाने का उल्लेख मिलता है। पर बहुत सभव है कि पैदल सैनिको और तोपो की तरह घुडसवारो की टुकडियाँ भी हर परगने में बँटी हुई हो। इस स्थायी सेना के अलावा जागीरदार और मँमार-दार भी छोटी-छोटी सेनायें रखते थे, जिन्हें आवश्यकता पडने पर बुलाया जा सकता था। छत्रसाल की सेना में ऊँटो की सेना और हाथी भी थे।[२०]

सैनिको को भरती करने में किन्ही विशेष नियमो का पालन नही किया जाता था और न किसी जाति या वर्ग विशेष को ही महत्त्व दिया जाता था। केवल छत्रसाल के झडो के नीचे लडने की आकाक्षा और शस्त्र सचालन मे निपुणता ही योग्यता की कसौटी थी। छत्रसाल के सैनिक सभी वर्गो के थे। उनमे बुंदेले, सेंगर, परिहार, धँधेरे और पँवार आदि क्षत्रियो के अतिरिक्त गोड, ब्राह्मण, वैश्य और निम्न जातियो के सैनिक भी बहुत बडी सख्या में थे। उनकी सेना में मुसलमान भी थे और हारी हुई मुगल सेनाओ के सैनिको तक को भरती कर लिया जाता था। छत्रप्रकाश और छत्रसाल के पत्रो मे ऐसे अनेक सैनिको और सेना नायको के नामो के उल्लेख मिलते हैं। उदाहरणार्थ छत्रसाल की सेना में हरीकृष्ण मिश्र, माधाता चौबे, दलसाह मिश्र, लच्छे रावत आदि ब्राह्मण, गगाराम चौदा, और हरजू मल्ल गहोई वैश्य, और निम्न जातियो के पवल धीमर, नदन छिपी और राममणि दौवा (अहीर) आदि तथा फोजे मियाँ, नाहर खाँ, अली खाँ और ईसफ खाँ आदि मुसलमान सभी शामिल थे।[२१]

५ शेष विचार

पहले कहा जा चुका है कि छत्रसाल के राज्य का विस्तार पूर्वी बुंदेलखड में ही अधिक था। उस प्रदेश की भूमि पहाडी और ककडीली होने के कारण खेती के योग्य न थी। उस काल में लगभग हर समय युद्ध होते रहते थे या उनके होने की निकट सभावना से लोग त्रस्त रहा करते थे। ऐसी स्थिति में कृषि और व्यापार की उन्नति होना असभव था। केवल तल-

---

२० वही, ४६। जैतपुर के समीप बुदेलो से एक मुठभेड के वर्णन में मुहम्मद खाँ बगश ने छत्रसाल की ऊँटो की सेना की टुकडियो का उल्लेख किया है। इर्विन० २,पृ० २३५।

२१ पत्रा० ४७, ४६, ७६ और ७८, छत्र० पृ० ८६, ११२, १२६, १३२, १३३।

वार का पेशा ही ऐसा था जिसमें लाभ की कुछ निश्चित सी सभावना थी। यही कारण है कि ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र तक सैनिक वन गये थे। छत्रसाल के लूटपाट के अभियानो में विशेष लाभ देख कर ही ये लोग भारी सख्या में उनकी सेना में भरती होने को तैयार हो गये थे, जिससे छत्रसाल सुगमतापूर्वक शीघ्र ही कम खर्च में एक वडी सेना सगठित करने में सफल हो सके।

छत्रसाल शिवाजी की तरह उदार निरकुश शासक थे। शासन के सभी भागो पर उनका व्यक्तिगत नियत्रण रहता था। उनके मत्रिगण केवल उन्हे सलाह देने के अतिरिक्त उनकी नीतियो पर विशेष प्रभाव न डाल सकते थे। ग्राम पचायतो और विभिन्न जातियो के पचो के निर्णयो को मान्यता देकर छत्रसाल उनके अधिकारो में वहुत ही कम हस्तक्षेप करते थे और वे प्रजा की भलाई के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे, जिससे जन साधारण को उनकी निरकुशता अखरती नही थी। सामतवादी व्यवस्था उस युग की विशिष्टता थी। छत्रसाल ने भी उसे अपनाया। पर शिवाजी की तरह सामतो को नक्द वेतन न देकर छत्रसाल ने अपने सामतो और सरदारो को पीढी दर पीढी के लिए जागीरें दे दी थी। फल यह हुआ कि उनके निर्वल उत्तराधिकारियो के समय में जैसे ही इन जागीरदारो पर नियत्रण ढीला पडा नही कि उन्होने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के प्रयत्न करना आरम्भ कर दिये और धीरे-धीरे छत्रसाली राज्य कई स्वतन्त्र छोटे छोटे राज्यो में विभक्त हो गया।

छत्रसाल की शासन सवधी जो उपर्युक्त सूचना उनके कुछ पत्रो और अग्रेजी गजेटियरो से उपलब्ध हुई है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि छत्रसाल ने मुगल शासन के मुख्य अगो को ही अपनाया और उसमें स्थानीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण वातो का समावेश करके अपनी शासन व्यवस्था का निर्माण किया। इस व्यवस्था में भले ही मौलिकता न हो, पर प्रजा के हितो की दृष्टि से वह वहुत उपयोगी सिद्ध हुई और आज भी जिस भक्ति एव श्रद्धा से वुंदेलखडी लोग छत्रसाल को स्मरण करते है, उससे सहज ही उनका जनप्रिय शासक होना प्रमाणित हो जाता है।

छत्रसाल का चारित्र्य, नीति और महत्व : ११ :

१ देहावसान (दिसवर ४, १७३१)

वगश युद्ध (जनवरी १७२६-अगस्त १७२९) के पश्चात् छत्रसाल दो वर्ष और जीवित रहे। इन वर्षों में वे राज्य के कर्मचारियो और अपने पुत्रो को इस सबध में निर्देशन देने मे कि उनकी मृत्यु के पश्चात् राज्य का बँटवारा किस प्रकार हो, और मुख्यत जगतराज को अपने प्रारम्भिक सघर्षों के बारे मे लिखने में व्यस्त रहे। जगतराज से वे उसकी राज्यकार्य के प्रति उपेक्षा और हिरदेसाह से मनोमालिन्य रखने के कारण बहुत असतुष्ट थे। जगतराज उनके इस असतोष से परिचित था। वृद्धावस्था में अपने कार्य कलापो को कुछ बढा-चढा कर वर्णन करने की प्रवृत्ति मनुष्यो में स्वभावत होती ही है। छत्रसाल में भी यह प्रवृत्तियाँ कुछ अधिक मात्रा मे ही थी। जगतराज ने इससे लाभ उठाकर उन्हे प्रसन्न करना चाहा। उसने छत्रसाल को अत्यन्त नम्रतापूर्ण पत्र लिखकर उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओ के प्रति जिज्ञासा प्रकट की। वृद्ध छत्रसाल अपने अयोग्य पुत्र में सुबुद्धि आती देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पत्रो द्वारा इन घटनाओ का विवरण लिखवा कर उसे भेजने लगे। यही कारण है कि छत्रसाल के जिन पत्रो में उनके प्रारम्भिक सघर्षों के विवरण उपलब्ध है, वे सभी जगतराज को ही लिखे गये है।[1]

छत्रसाल के अन्तिम दो वर्ष के शातिपूर्ण जीवन मे केवल एक ही व्याघात यह था कि पन्ना की मुख्य गद्दी के उत्तराधिकार को लेकर जगतराज और हिरदेसाह मे कटुता बहुत बढ गई थी। छत्रसाल इससे बहुत चिन्तित थे। पहिले उन्होने पत्रो द्वारा जगतराज को समझाने की निष्फल चेष्टा की। तब अपने अन्तिम समय में उन्होने दोनो पुत्रो को अपने पास मऊ बुला कर समझाया और बडी कठिनाई से उनका पारस्परिक द्वेष दूर करने में वे सफल हुए।[2] इसके तुरन्त ही पश्चात् शनिवार, दिसम्बर ४, १७३१ ई० को ८१ वर्ष और ७ माह की आयु में उनकी मृत्यु हो गई।[3]

---

१ पत्रा० ६८, १००।

२ वही, ८६, ८७।

३ तारीख-इ-मुहम्मदी (पृ० ७०६ बी) में छत्रसाल की मृत्यु की तिथि जमादिसानी १५, ११४४ हिजरी (शनिवार, दिसम्बर ४, १७३१) दी गई है। सर देसाई (भाग २, पृ० १०८) और इर्विन (भाग २, पृ० २४१) द्वारा दी गई तिथि दिसम्बर, १४, १७३१

२ छत्रसाल की सैनिक प्रतिभा

इसमें संदेह नहीं कि छत्रसाल को जो बुंदेलखंड में अभूतपूर्व सफलतायें प्राप्त हुई, वे इस कारण ही संभव हो सकीं कि औरंगजेब पहिले राजपूताने में और तत्पश्चात् दक्षिण में अधिक व्यस्त रहा। परन्तु यह तो मानना ही पडेगा कि ये सफलतायें उनके कुशल नेतृत्व की भी परिचायक थीं। निस्सदेह छत्रसाल की सैनिक प्रतिभा शिवाजी की टक्कर की न थी, परन्तु यह भी सत्य है कि बुंदेलखंड में छत्रसाल जैसी सैनिक प्रतिभा के दर्शन कम ही हुए थे। छत्रसाल में बुंदेलों की स्वाभाविक युद्धप्रियता थी। उनका कद ऊँचा, वक्ष चौडा और शरीर सुगठित था।[४] अस्त्र संचालन में वे अत्यन्त निपुण थे। खतरों का सामना करना उनके लिए खिलवाड था और असीम साहस और शीघ्रबुद्धि की भी उनमें कमी न थी। जब वे केवल १६-१७ वर्ष के थे, तब उन्होंने पुरन्दर के घेरे (१६६५ ई०) और बीजापुर के आक्रमण (१६६६ ई०) में असाधारण वीरता का परिचय दिया था। उनकी इस वीरता और सैनिक प्रतिभा से प्रसन्न होकर ही मिर्जा राजा जयसिंह ने उन्हे शाही सेना में मनसब दिये जाने की सिफारिश की थी। सन् १६७१ से १७०७ के बीच में मुगलों से हुए प्रारम्भिक संघर्षों में छत्रसाल स्वयं अपने सैनिकों का नेतृत्व करते थे और युद्ध में हमेशा सबसे आगे शत्रु से टक्कर लेते थे। बांसा के प्रसिद्ध योद्धा केशवराय दांगी की चुनौती स्वीकार कर उसे यमलोक भेज देना छत्रसाल जसे वीर के लिए ही सभव था।

साठ साल की आयु मे छत्रसाल ने लोहागढ के घेरे (दिसम्बर १७१०) मे मुनीम खाँ खानखाना के हरावली दस्ते की कमान संभाल कर असाधारण शौर्य का प्रदर्शन किया था। इस घेरे के पाँच साल बाद ही मालवा में वे फिर अफगान बागियों को दबाने और मराठा आक्रमणों को रोकने में सवाई जयसिंह के साथ लगभग तीन वर्ष तक सक्रिय सहयोग करते रहे थे। उनका शौर्य और युद्धोत्साह वृद्धावस्था में भी तनिक भी क्षीण या मन्द नहीं पडा और अस्सी वर्ष की आयु में भी वे मुहम्मद खाँ बगश के विरुद्ध मैदान में आये बिना न रह सके। छत्रसाल के इसी अदम्य साहस और दुर्धर्ष वीरता से उत्साहित होकर उनके सैनिक द्विगुणित उत्साह से शत्रु पर जा टूटते थे और अद्भुत वीरता का प्रदर्शन करते थे।

छत्रसाल केवल एक असाधारण योद्धा ही नहीं, बल्कि कुशल सेनापति भी थे। उनमें

ई० नई गणना शैली से निकाली गई है। नई और पुरानी पद्धति से निकाली गई तिथियों में १०-११ दिन का अन्तर पडता है। (इस अध्याय के परिशिष्ट को भी देखें)।

४ छत्रसाल के जामे के निम्नलिखित नापों से उनके विशालकाय शरीर का अनुमान हो सकता है :—

कुल लम्बाई ५' ८" कधों से कमर तक २' २½"; बाँहें २' ६", वक्ष ४४"। जामा घुटनों के कुछ नीचे तक होता था और कलाई तथा वक्ष पर चुस्त रहता था। जामा की लम्बाई देखते हुए छत्रसाल की अनुमानत ऊँचाई छ फीट से अधिक होनी चाहिए।

स्यिति को ममझ लेने की अपूर्व क्षमता थी और इमीलिए वे इतने दीर्घ काल तक मुगलो से टक्कर ले मके। शिवाजी की ही तरह अपने थोडे से साधनो का वहुत ही उचित उपयोग करने तया उनमे अधिकतम सभव फल प्राप्त करने की योग्यता उनमें थी। मुगलो के साधन असीम थे। उनकी तुलना में छत्रसाल के पास सैनिक सख्या और युद्ध सामग्री नगण्य ही थी। इसीलिए समय-समय पर जब उनके युद्ध साधनो में कमी हो जाती थी, या स्थानीय मुगल फौजदारो और सेनापतियो की शक्ति अधिक बढ जाती थी, तो वे विरोध त्याग कर तुरन्त मुगल अधीनता भी स्वीकार कर लेते थे। पर जैसे ही उन्हे अवसर मिलता वे तुरन्त फिर युद्ध छेड देते थे।

छत्रसाल की रणनीति मुगलो से खुले मैदान में युद्ध करने की न थी। ऐसा वे बहुत कम करते थे और अधिकतर छापामार युद्ध का ही सहारा लेते थे। इस प्रकार की युद्ध प्रणाली बुंदेलखंड जैसे पहाडो और घने जगलो से आच्छादित घाटियो वाले प्रदेश के लिए वहुत ही उपयुक्त थी। उनके बुंदेले सैनिक भी इसमे बडे अभ्यस्त थे। युद्ध ही छत्रसाल की आय और उनके सैनिकों की जीविका के साधन थे। वे मुगल प्रदेशो को लूटकर और उनके थानेदारो तथा फौजदारो से चौथ और मुक्तिधन वसूल कर अपने युद्ध-साधनो मे वृद्धि करते थे। शत्रु के प्रदेशो पर उनके इस प्रकार के आक्रमण महीने में दो-तीन बार होते थे। हर आक्रमण के पश्चात् छत्रसाल अपने सैनिको को दस पन्द्रह दिन का विश्राम देते थे। उनका व्यवहार अपने सैनिको से बहुत ही सहृदयतापूर्ण था। उन्हे सतुष्ट और प्रसन्न रखना वे राज्य की सुरक्षा के लिए वहुत ही आवश्यक समझते थे।[५]

---

५ पन्ना० ६६।

स्वरचित निम्नलिखित पदो में छत्रसाल शासको को सलाह देते है —

चाहौ धन, धाम, भूमि, भूपन, भलाई, भूरि,
सुजस सहूरजुत रैयत को लालियौ।
तोडादार घोडादार बीरनि सो प्रीति करि,
साहस सो जीति जग, खेत तें न चालियौ॥
सालियो उदडनि को, दडिन को दीनौ दड,
करिकै घमड घाव दीन पै न घालियौ।
विन्ती छत्रसाल करै होय जो नरेस देस,
रहै न कलेस लेस, मेरो कह्यो पालियौ॥१॥
(छत्र० ग्र० पृ० ७४)

रैयत सब राजी रहै, ताजी रहै सिपाहि।
छत्रसाल तेहि राज को, वार न बाँको जाहि॥२२॥
(वही, पृ० ८१-८२)

३ उदार और जनप्रिय शासक

यह स्पष्ट है कि छत्रसाल शेरशाह या शिवाजी की तरह विशेष प्रतिभासपन्न शासक न थे और उन्होंने मुगल शासन पद्धति को ही अपना कर उनमें कुछ स्थानीय बातो का समावेश कर उसे अपनी परिस्थितियों के लिए विशेष उपयोगी बना लिया था।[6] परन्तु उनकी व्यक्तिगत देख-रेख इतनी सच्ची और त्रुटिहीन थी कि राज्य के कर्मचारी मनमानी नही कर पाते थे। विशेष सकटकालीन स्थितियो को छोड कर वे राजाज्ञा के बिना कुछ भी नही कर सकते थे। छत्रसाल अपने राज्य कर्मचारियों को अधिक अधिकार देने के विरुद्ध थे। उनके विचार मे यह प्रजा और शासक दोनो के लिए ही घातक था। अतएव राज्य कर्मचारियो पर वे कडा नियत्रण रखते थे। हिरदेसाह को भी उन्होंने कर्मचारियो के सहारे न रह कर शासन के हर भाग पर स्वय ही ध्यान देने की सलाह दी थी।[7]

छत्रसाल का शासन एक प्रकार का सैनिक शासन ही था, परन्तु सैनिक शासन में जो बुराइयाँ स्वभावत ही आ जाती है, वे उनकी व्यक्तिगत कडी देखभाल से कभी पनपने नही पाती थी। अपनी प्रजा की भलाई के लिए छत्रसाल सदैव तत्पर रहते थे और उसके सुख और सतोष को ही अपने राज्य का दृढतर आधार समझते थे। निर्धन और दुखी लोगो का उन्हे विशेष ध्यान रहता था और उनकी सहायता करना वे पुण्य कार्य मानते थे।[8] छत्रसाल की इसी प्रजा वत्सलता के कारण सवा दो सौ वर्ष पश्चात् आज भी बुंदेलखडियो के हृदय में उनके उदार शासन की स्मृतियाँ शेष है और बुंदेलखड में उनका नाम आदर और सम्मान से लिया जाता है। अभी भी यहाँ लोग छत्रसाल पर इतनी श्रद्धा करते है कि अपने दैनिक कार्यों और व्यवसायो को "छत्रसाल महाबली, करियो भली भली" कह कर ही प्रारम्भ करते हैं।

४ अन्य बुंदेला राज्यो के प्रति छत्रसाल की नीति

छत्रसाल की हार्दिक इच्छा थी कि वे बुंदेलखड के अन्य बुंदेला शासको को एकता के सूत्र में पिरोकर देश को मुगल दासता से मुक्त बनाये रखें। ये बुंदेले शासक उनके कुटुम्बी

---

६ अध्याय १० को देखें।

७ पन्ना० ८८।

८ छत्रसाल अपने इन्हीं विचारो को निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त करते हैं :—

छत्रसाल जन पालिबो, अर्राह घालिबो दोय।
र्नाह बिसारियो, धारियो, धरा-धरन कोउ होय ॥२०॥
बालक लौं पार्लाह प्रजा, प्रजापाल, छत्रसाल।
ज्यो सिसु हित अर्नाहत सुहित, करत पिता प्रतिपाल ॥२१॥
(छत्र० प्र० पृ० ८१)

जन ही थे। इसीलिए छत्रसाल बुंदेलो की एकता और कौटुम्बिक हितो की दृष्टि से जहाँ तक बन पडे, उनसे संघर्ष बचाते ही रहते थे। अधिकांश छोटे-छोटे बुंदेला सरदार और जागीरदार तो उनमे आकर मिल ही गये थे। पर उनमें से प्रमुख ओरछा, दतिया और चँदेरी के राजा कट्टर मुगल समर्थक ही बने रहे। वे छत्रसाल के विरुद्ध समय-समय पर शाही सेनापतियो को सैनिक सहायता देते रहे और स्वय भी छत्रसाल के विरुद्ध सैनिक अभियानो मे भाग लेते रहे। उनके इन कार्यो से छत्रसाल भी कभी-कभी प्रतिशोध की भावना के वशीभूत होकर उनके प्रदेशो पर आक्रमण कर बैठते थे।[९] पर क्रोध ठडा होते ही वे अपनी सेनाएँ लौटा लेते थे। अगर वे चाहते तो इन राज्यो के प्रदेश सहज ही अपने राज्य में मिला लेते। पर एक ही कुटुम्ब के होने के कारण यह उन्हे उचित न जान पडा।[१०]

छत्रसाल को ऐसे अवसर भी मिले, जब वे ओरछा और दतिया की आतरिक डाँवाडोल स्थिति मे लाभ उठा सकते थे, पर वे निस्पृह रहे। उदाहरणार्थ ओरछा के राजा जसवन्तसिह की मृत्यु औरगजेब के राज्यकाल के तीसवें वर्ष (१२ जुलाई, १६८६-३० जून १६८७) में हो गई। उसका पुत्र भगवतसिह भी केवल एक ही वर्ष में चल बसा। तब जसवन्तसिह की माता रानी अमर कुँवर ने उदोतसिह को गोद लिया। छत्रसाल के लिए यह सुनहरा अवसर था। पर उन्होंने ओरछा पर कोई आक्रमण नही किया। ओरछा की यह निर्बल स्थिति कुछ और वर्षो तक ज्यो की त्यो रही और १६९९ ई० में रानी अमर कुँवर ने छत्रसाल को एक रक्षात्मक और अनाक्रमणात्मक सधि का प्रस्ताव लिख भेजा, जिसे सभवत छत्रसाल ने स्वीकार कर लिया।[११] इसी प्रकार औरगजेब के राज्य के अन्तिम वर्षो में दतिया के राजा दलपतराव का पुत्र रामचन्द्र अपने पिता से अप्रसन्न होकर विद्रोही हो गया। वह छत्रसाल से मिला। उसकी इच्छा थी कि छत्रसाल की सहायता से दतिया राज्य का स्वामी बन बैठे। परन्तु छत्रसाल ने केवल शरण देने के अतिरिक्त रामचन्द्र की कोई और सहायता न की। इसलिए कुछ समय पश्चात वह इटावा और एरच के फौजदार सैरन्देश खाँ से मिलकर दलपतराव के विरुद्ध षड्यन्त्र में लिप्त हो गया।[१२]

छत्रसाल बुंदेलो की आपसी एकता के लिए कितने उत्सुक थे, इसका अनुमान इस बात से हो सकता है कि वे दतिया, ओरछा और चँदेरी के राजाओ द्वारा अपना बार-बार

---

९ इस ग्रथ का तृतीय अध्याय देखें।

१० पन्ना० ६२। इस पत्र में छत्रसाल पन्ना के अधिकारियो को ओरछा के राजाओं की दुरभिसधियो के प्रति सचेत रहने की चेतावनी देते हुए लिखते हैं, "हम में इतनो पराक्रम रहो है कै बनको बस मेट देते वा ओडछे की रियासत सब लै लेते रही हमने घर मान कै कौन ह बात नही करी वे छलई करत रहे है　　"

११ पन्ना० ७ (अमर कुँवर का छत्रसाल को पत्र अगस्त ३०, १६९९)।

१२ भीम० २, पृ० ११८, १२५।

अहित होने पर भी उनसे रक्षात्मक और सहयोगात्मक सन्धियाँ करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। जब भी इन राजाओं ने ऐसी सन्धियों के प्रस्ताव भेजे, उन्होंने तुरन्त उन्हें स्वीकार कर लिया।[१३] पर ओरछे से छत्रसाल हमेशा सशंक रहते थे। ओरछे के पहाड़सिंह, सुजानसिंह, जसवन्तसिंह और उदोतसिंह आदि सभी राजाओं ने उनके पिता चंपतराय और स्वयं उनके सर्वनाश की चेष्टायें भरसक की थी। छत्रसाल इन बातों को भूला नहीं सके थे और इसलिए ओरछे से औपचारिक संबंध बनाये रखने पर भी वे उनकी कुचेष्टाओं के प्रति सदैव सतर्क रहते थे।[१४] अपने पुत्रों और कर्मचारियों को भी वे बराबर ओरछा के राजाओं की ओर से सावधान रहने के निर्देश देते रहते थे।[१५]

---

१३ पन्ना० २, ४, ५, १५, १६। ये पत्र संधि पत्रों के रूप में हैं। पत्र २ ओरछा की रानी अमर कुँवर द्वारा भेजा गया था। इसका उल्लेख पहले ही आ चुका है। शेष चार पत्रों में ओरछा, दतिया और चंदेरी के राजाओं (उदोतसिंह, रामचन्द्र, और दुर्जनसिंह) ने छत्रसाल के राज्य का विस्तार पूर्व में धसान नदी तक मान कर उनसे सहयोग करना स्वीकार किया है। ये पत्र निकटवर्ती प्रदेशों की सम्मिलित लूट में प्रत्येक का बराबर भाग भी निश्चित करते हैं। स्मरण रहे कि ये संधियां इन राजाओं ने १७०९ और १७२१ ई० के बीच में की थीं, जब छत्रसाल की स्थिति दृढ़ हो चुकी थी और उनकी शक्ति भी बहुत बढ़ गई थी। संभवत: उनकी शक्ति के भय से ही ये लोग उनसे संधि करने पर विवश हुए थे।

१४ पन्ना० ७ और ८। इन पत्रों में जगतराज और हिरदेसाह का उदोतसिंह के पुत्र के विवाह के अवसर पर ओरछा जाने का उल्लेख है।

१५ पन्ना० ३९ और ६२। दूसरे पत्र (६२) में छत्रसाल पन्ना के अपने विश्वस्त अधिकारियों को लिखते हैं :—

"बननें (ओरछा के राजाओं ने) हमारे कक्का जू (पिता) वा हमकों बडे-बडे छल करे, वा मारवे में कौनहू फरक नहीं लगावो सो परमेसुर की जब मेहरबानगी है तब का हो सकत है कुँवरन कों चाहिए कै ओडछेवालन के कहूँ स्वहूँ न आहे जब बनको मौका पर जहँ तबै पराव बात के अच्छी बात ना कर है . . ."

लोहागढ़ के युद्ध के पश्चात् एक घटना को लेकर छत्रसाल उदोतसिंह से विशेष अप्रसन्न थे। लोहागढ़ विजय के उपरान्त सम्राट बहादुरशाह छत्रसाल को उनकी वीरता के उपलक्ष में कुछ जागीरें और महेन्द्र की उपाधि देना चाहता था। उदोतसिंह ने छत्रसाल को बहका दिया कि सम्राट उन्हें पकड़ कर बन्दी बनाना चाहता है। उदोतसिंह ने उन्हें तुरन्त ही शाही खेमों से बच निकलने की मन्त्रणा दी। छत्रसाल उनका विश्वास कर रात में ही वहाँ से भाग निकले। दूसरे दिन उदोतसिंह ने सम्राट को उनके भाग जाने का समाचार देकर उनकी ओर से उसे अप्रसन्न कर दिया और अपने आपको छत्रसाल के वंश का ही बताकर महेन्द्र की उपाधि प्राप्त कर ली। छत्रसाल जीवन पर्यन्त इस बात को नहीं भूल सके। जगतराज को लिखे अपने

यह सब होते हुए भी छत्रसाल की हार्दिक आकाक्षा यही थी कि वे सभी बुंदेला राज्यो का सहयोग प्राप्त कर अपने मुगल विरोधी सघर्ष को सही अर्थो में बुंदेला स्वातत्र्य युद्ध का रूप दे सके। बुंदेलो की इस आपसी एकता के लिए वे सदैव ही प्रयत्नशील रहे, पर अभाग्य-वश उन्हे कभी भी पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी।[१६]

५ धार्मिक दृष्टिकोण

छत्रसाल के स्वरचित पद्यो और उनके पत्रो से तो यह स्पष्ट है कि वे सनातन पौरा-णिक धर्म के ही अनुगामी थे। स्वामी प्राणनाथ के सपर्क में आने से उनकी रूढिवादिता अवश्य कम हो गई थी, लेकिन फिर भी पौराणिक देवी देवताओ पर उनकी श्रद्धा ज्यो की त्यो बनी रही जैसा कि कृष्ण, राधिका, रामचन्द्र, हनुमान, गणेश, नृसिह आदि पर रचित उनके पद्यो मे प्रकट होता है। प्रणामी सम्प्रदाय के प्रति शायद छत्रसाल का आकर्षण अधिक नही था। यही कारण है कि उनके पत्रो या रचनाओ में कही भी इस धर्म के सिद्धातो का उल्लेख नही मिलता। छत्रसाल प्रचलित धार्मिक अन्ध विश्वासो से भी प्रभावित थे। जादू टोनो पर उनका विश्वास था। उन्हे स्वप्नो में प्राय देवी के दर्शन होते थे और उन्हे प्रसन्न करने के लिए वे बलि भी चढाते थे।[१७]

परमात्मा पर छत्रसाल का अगाध विश्वास था। वे प्राणनाथ को दैवी शक्तियो से युक्त महान सत मानते थे और उन पर बहुत श्रद्धा भी रखते थे। पर परमात्मा पर तो उनकी श्रद्धा अपार थी। उनका विश्वास था कि हर बात भगवान की इच्छा से ही होती है और प्राण-नाथ से उनका सपर्क भी भगवान की कृपा से ही हुआ था।[१८]

दो पत्रो (पत्रा० ४१, ६३) में जिस कटुता से वे इस घटना का उल्लेख करते है, उससे इसका घटित होना सत्य प्रतीत होता है।

१६ शिवाजी से भेंट के पश्चात् बुंदेलखड लौटने के पूर्व छत्रसाल ने दतिया के शुभकरण बुदेला और ओरछा के सुजानसिह बुंदेला से मिलकर उनकी सहायता और सहानु-भूति प्राप्त करने के प्रयत्न किये थे। इन दोनो ही ने चपतराय का सर्वनाश करने में कुछ उठा नहीं रखा था, पर तब भी छत्रसाल ने बुदेलो को मुग़लो के विरुद्ध एक करने की लालसा से प्रेरित हो अपने पिता के प्रति उनका वह गर्हित व्यवहार तक भुलाकर उनसे भेंट की थी। (पत्रा० ६०, ६१)

मुहम्मद खां बगश के चेले दिलेर खां के विरुद्ध ही ओरछा, दतिया और चंदेरी के राजाओ ने सवाई जयसिह के प्रभाव में आकर छत्रसाल से केवल कुछ समय तक सहयोग किया था।

१७ पत्रा० ८०, ६१, ७२, ७५।

१८ पत्रा० ५०। छत्रसाल इस पत्र में जगतराज को लिखते है, "हमें वरदान प्राप्त-

छत्रसाल का धार्मिक दृष्टिकोण बहुत ही उदार था। स्वामी प्राणनाथ के सम्पर्क में उनकी इन उदार प्रवृत्तियों को बल ही मिला था। यही कारण है कि अन्य मतावलम्बियों पर उन्होंने कभी किसी प्रकार का अत्याचार नही किया। उनके आक्रमणो से भयभीत होकर मुसलमान शेख और मौलवियों के गाँव छोड कर भाग जाने के उल्लेख मिले है, परन्तु उनमे यह अनुमान करना कि छत्रसाल के अत्याचार के भय से वे भाग निकले थे, न्याय सगत न होगा। वे ऐसा आतंकित होकर ही करते थे। कही भी इन आक्रमणो के दौरान में छत्रसाल द्वारा मसजिदो या मुसलमानो के धर्मग्रथो के अपवित्र किये जाने अथवा मौलवियो को अपमानित करने के कोई भी उल्लेख प्राप्त नही हुए है। उनकी सेना में मुसलमान सैनिक भी थे। इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। छत्रसाल अपने मुसलमान प्रतिस्पर्धियो की धार्मिक भावनाओं का इतना ध्यान रखते थे कि युद्ध में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी कब्र बनवाना भी नही भूलते थे। उनके पुत्र हिरदेसाह द्वारा शेर अफगन नामक एक मुग़ल सेनानायक की कब्र पन्ना की घाटी में बनवायी जाने का उल्लेख उनके एक पत्र में मिलता है।[१६]

छत्रसाल में वैसे हिन्दुओ की धार्मिक उदारता और सहनशीलता कुछ अधिक मात्रा में ही थी, पर फिर भी वे मुसलमानो पर पूर्ण विश्वास कभी नही कर सके और सदैव ही उन्हे

नाथ जू की हो गओ हतो और ईसुर की मरजी जो उनकी मरजी ना होती तो कैसे प्राननाथ कह देते सो सब उनकी मरजी सें फरै करो। . . ."

कहा जाता है कि छत्रसाल के राज्याभिषेक होने पर किसी ने उन्हें लिख भेजा था कि,

ओरछा के राजा, दतिया के राई।
छत्रसाल अपने मुह, बने धनावाई ॥

छत्रसाल ने इसके प्रत्युत्तर में लिखा —

सुदामा तन हेरे तौ रक हू ते राव कीनो,
विदुर तन हेरे तौ राजा कियौ चेरे तें।
कूबरी तन हेरे तौ सुन्दर स्वरूप दियौ,
द्रोपदी तन हेरे तौ चीर बढ्यौ टेरे तें॥
कहै छत्रसाल प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी,
हिर्नाकुस मार्यो नैंक नजर के फेरे तें।
ऐरे अभिमानी नर ! ज्ञानी भऐ कहा भयौ !
नामी नर होत गरुड गामी के हेरे तें ॥१७॥

(छत्र० ग्र० पृ० ७, ८)

१६ पन्ना० ८२।

अविश्वास की दृष्टि से ही देखते रहे। प्राणनाथ के शिष्य होते हुए भी छत्रसाल उनके उपदेशो में निहित सभी धर्मों की मौलिक एकता से सहमत न थे और इस्लाम तथा परम्परागत पौराणिक धर्म को परस्पर विरोधी धर्म ही समझते रहे।[२०]

६ उपसहार

छत्रसाल की प्रतिभा बहुमुखी थी। तलवार और कलम वे दोनो के ही धनी थे और दोनो का ही प्रयोग वे दक्षता से कर सकते थे। सगठन करने और सैनिको में आत्म विश्वास उत्पन्न कर उन्हे उच्च आदर्शो से प्रेरित करने की उनमें असाधारण क्षमता थी। अपने इन्ही गुणो के कारण वे ओरछा के साधारण जागीरदार के पुत्र की साधारण स्थिति से ऊँचे उठ कर एक स्वतन्त्र राज्य के सस्थापक बनने में समर्थ हो सके थे। उनका राज्य सपूर्ण पूर्वी बुंदेलखड में फैला हुआ था और उसका विस्तार ओरछा, दतिया तथा चंदेरी के अन्य बुंदेला राज्यो से भी अधिक था।

छत्रसाल ने जब २१ वर्ष की आयु मे बुंदेलखड को मुगल सत्ता से मुक्त करान का व्रत लिया था, तब उनके साथ केवल ५ घुडसवार और २५ पैदल सैनिक थे। युद्ध सामग्री के पूर्ण अभाव की तो बात ही अलग, स्वदेश में उनके पास एक चप्पा भूमि भी अपनी कहने को न थी। पर अपनी मृत्यु के समय वे एक बडे राज्य के अधिपति थे, उनके सैनिको की सख्या सहस्रो थी, उनके कोषो मे अपार धन था और उनके राज्य की आय करोडो में कूंती जाती थी। इस ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए छत्रसाल ने लगभग आधी सदी तक घोर सघर्ष किया था। कभी भाग्य उनके अनुकूल होता था और कभी प्रतिकूल। पर छत्रसाल ने कभी हिम्मत न हारी। उनके अडिग दृढ निश्चय ने अन्त में सब कठिनाइयो पर विजय पाई और अन्तिम श्वास लेते समय उन्हे यह सतोष था कि मुगल सत्ता को स्वदेश मे उखाड फेंकने का जो व्रत उन्होने साठ वर्ष पहले लिया था, उसको पूर्ण होते वह देख सके।

छत्रसाल को सौभाग्य से युवावस्था के प्रारम्भ में ही मिर्ज़ा राजा जयसिह और शिवाजी के सपर्क में आने का अवसर मिला था। शिवाजी की अभूतपूर्व सफलताओ और

---

२० वे हिन्दू राजाओ को चेतावनी देते हुए कहते हैं —

अपुनो मन-भायो कियौ, गहि गोरी सुलतान।
सात बार छांड्यो नृपति, कुमति करी चहुवान॥
कुमति करी चहुवान, ताहि निन्दत सब कोऊ।
असुर बैर इक बार पकरि काढे दृग दोऊ॥
दोउ दीन को बैर, आदि अर्ताहि चलि आयो।
यहि नृप छता, विचारि कियौ अपुनो मन-भायो॥७॥

(छत्र० ग्र० पृ० ७६)

उनके उच्च आदर्शों से छत्रसाल बहुत ही प्रभावित हुए थे। शिवाजी और छत्रसाल की भेंट बुंदेलखंड के इतिहास की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना है। इस भेंट ने बुंदेलखंडियो को छत्रसाल ऐसा वीर दिया जिसका स्मरण कर आज भी उनके मस्तक गर्व से ऊँचे हो जाते हैं।

छत्रसाल और शिवाजी के चरित्र में बहुत साम्य भी था। दोनो ही साधारण जागीरदारो के पुत्र थे और अपनी योग्यताओ से ऊँचे उठ सके थे। दोनो को मुगल सत्ता से संघर्ष करना पडा था और इसमें दोनो को ही औरंगजेब की प्रतिक्रियावादी धार्मिक नीति के कारण उत्तेजित हिन्दू प्रजा का सहयोग मिला था। अगर उधर शिवाजी समर्थ गुरु रामदास से प्रेरणा पाते थे, तो इधर स्वामी प्राणनाथ भी छत्रसाल की सहायता के लिए कटिबद्ध थे। निस्सदेह शिवाजी छत्रसाल से अधिक प्रतिभासम्पन्न थे। उनमें जो कुशल सेनानायक और शासक के गुण थे वे निश्चय ही छत्रसाल में उतनी मात्रा में न थे। यही कारण है कि शिवाजी की सफलताएँ छत्रसाल की सफलताओ से अधिक स्थायी और महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुई। वास्तव में शिवाजी ने ही छत्रसाल को बुंदेलखंड में स्वातन्त्र्य युद्ध छेडने को प्रेरित किया था और छत्रसाल ने राजनीति तथा रणनीति के प्रथम पाठ उनके चरणो में बैठ कर ही सीखे थे। छत्रसाल की आकाक्षा थी कि वे बुंदेलखंड में शिवाजी की सफलताओ की पुनरावृत्ति करके एक और हिन्दू राज्य स्थापित करें। इसमें यद्यपि उन्हे शिवाजी जैसी सफलता प्राप्त नही हुई, पर आधारभूत प्रेरणाएँ दोनो की ही समान थी।

यह सच है कि छत्रसाल सदैव ही मुगल विरोधी न रहे। अपने संघर्षों के बीच बीच में उन्हे कई बार मुगल अधीनता स्वीकार करनी पडी। पर इससे उनके कार्यो का महत्व कम नही हो जाता। छत्रसाल में दूरदर्शिता की कमी न थी। वे जानते थे कि मुगलो को सारे साम्राज्य के साधन सुलभ हैं, जबकि उनके साधन केवल बुंदेलखंड के एक भाग तक ही सीमित हैं और वह भाग भी अधिक उपजाऊ नही है। फिर दतिया, ओरछा और चंदेरी के बुंदेला राजाओ की दुरभिसंधियो का भी उनको पूरा पूरा ध्यान था। छत्रसाल समझते थे कि अपने गृह-शत्रुओ और मुगलो के अपार युद्ध साधनो के सामने वे अधिक समय तक लम्बे युद्धो में टिक न सकेंगे। उन्हे वस्तुस्थिति भाँपने में देर नही लगती थी। इसीलिए जब भी वे शत्रु की शक्ति अधिक आकते या अपनी सैनिक व्यवस्था में कोई लम्बी दरार महसूस करते तो तुरन्त ही कुछ समय के लिए मुगल अधीनता स्वीकार कर शत्रु को अपनी ओर से निश्चिन्त कर देते थे, ताकि वे पुन शक्ति संग्रहीत न कर सकें। मुगलो की अधीनता वे विवशता की स्थिति में ही स्वीकार करते थे। मुगल सेना मे कोई उच्च मनसब प्राप्त करने के लिए वे लालायित न थे। यही कारण है कि जैसे ही उन्हे अवसर मिलता वे तुरन्त शाही छावनियो से बच निकलते और फिर अपना संघर्ष आरम्भ कर देते थे। इसमें वे शिवाजी का ही अनुकरण करते थे। शिवाजी को भी मिर्जा राजा जयसिंह के कुशल सेनापतित्व के आगे झुकने को बाध्य होना पडा था जो नीति की दृष्टि से उचित ही था। जिस प्रकार शिवाजी की विवशता का सहारा लेकर उनके कार्यों की महानता पर छीटे नही उडाये जा सकते, उसी

प्रकार छत्रसाल के कार्यों के महत्व को भी यह कह कर कम नही किया जा सकता कि उन्होने समय समय पर मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

छत्रसाल के जीवन की सर्वप्रमुख आकाक्षा यही थी कि वे बुंदेलखड को मुगल दासता से मुक्त होते देख सकें। अपनी इस पुनीत आकाक्षा की पूर्ति के लिए उन्होने जो कुछ किया उसका कुछ अनुमान इस विवेचन से हो ही जाता है। छत्रसाल के उद्देश्यो की महत्ता अब सभी अगीकार करते है और उन्हे मुगलो के विरुद्ध जो सफलता प्राप्त हुई उसे मुगलकालीन भारत के महान् इतिहासकार डा यदुनाथ सरकार तक इन शब्दो में स्वीकार करते है कि "उनका ८१ वर्ष का दीर्घ जीवन मुगल सत्ता के बुंदेलखड में पूर्णत विनष्ट होने के साथ ही १७३१ ई० में समाप्त हो गया।"[२१]

बुंदेलखड मे जन साधारण के हृदय में छत्रसाल के प्रति अभी भी जो गहरी श्रद्धा है वही उनके कार्यो के मूल्याकन की सही कसौटी है। यहाँ उन्हे देवी प्रेरणा से युक्त एक महान् पुरुष समझा जाता है जो देश को मुगलों के अत्याचारो से मुक्त कराने एव धर्म की रक्षा करने के लिए अवतरित हुए थे और मऊ सहानियाँ में धुबेला ताल के किनारे बनी उनकी समाधि के दर्शन करने बुंदेलखड के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागो से बहुत से यात्री प्रति वर्ष वहाँ आते है।[२२]

---

२१ औरग० ५, पृ० ३६१।

२२ बुंदेलखड के बाहर से आने वाले यात्री अधिकतर प्रणामी सम्प्रदाय के अनुयायी ही होते है। इस सम्प्रदाय में श्री देवचन्द्र और स्वामी प्राणनाथ के साथ ही छत्रसाल को भी अवतार माना जाता है। बुंदेलखड में निम्नलिखित पद अक्सर ही सुनने में आता है —

कृष्ण, मुहम्मद, देवचन्द, प्राणनाथ, छत्रसाल।
इन पचन को जो भजे, दुख हरे तत्काल॥

अध्याय ११वे का परिशिष्ट

छ साल की मृत्यु तिथि

तारीख-इ-मुहम्मदी मे दी गई छत्रसाल की मृत्यु तिथि १५ जमादिलाखर, ११४४ हि० (शनिवार, दिसबर ४, १७३१ ई०) और बुंदेलखड में प्रचलित उनकी मृत्यु तिथि पूस वदी ३, सवत १७८८ (रविवार, दिसबर ५, १७३१ ई०) में विशेष अतर नही है। जनश्रुतियो के अनुसार पूस वदी ३, सवत १७८८ को शुक्रवार था जो गणना में ठीक नही आता। कहा जाता है पूस वदी ३ की सध्या को छत्रसाल मऊ (महानियाँ) में अपने बाग मे टहलते-टहलते 'अतरध्यान' हो गये। उनका जामा वही एक चबूतरे पर पडा पाया गया, किन्तु उनके शरीर का कही पता नही चला। जनसाधारण में प्रचलित उनकी मृत्यु की तिथि ३ पूस वदी सभवत 'दाग तिथि' होगी। साधारणतया अगर मृत्यु बहुत सध्या हो जाने पर अथवा बहुत रात गये होती है तो फिर शव की अन्त्येष्टि क्रिया दूसरे दिन की जाती है। इसलिए यह सभव हो सकता है कि छत्रसाल की मृत्यु दिसबर ४ (१५ जमादिलाखर) की सध्या को हुई हो और उनके शरीर की बहुत रात्रि तक खोज करने के पश्चात दूसरे दिन अर्थात् दिसबर ५ (पूस वदी, ३) को उन्हे मृत समझकर दाग दे दिया गया हो। इस प्रकार तारीख-इ-मुहम्मदी मे दी गई तिथि और बुंदेलखड में प्रचलित छत्रसाल की मृत्यु तिथि के एक दिन के अतर का समाधान हो जाता है।[२३] छत्रसाल की मृत्यु की तारीख-इ-मुहम्मदी में दी गई उपर्युक्त तिथि (दिसबर ४, १७३१ ई०) के अपनाने में केवल एक कठिनाई यह है कि छत्रसाल द्वारा हिरदेसाह को लिखवाये एक पत्र (पन्ना० ८८) के लिखे जाने की तिथि पूस वदी १४, सवत १७८८ (दिसबर, १६, १७३१) है। अगर यह पत्र छत्रसाल ने ही लिखवाया था तो फिर उनकी मृत्यु दिसबर ४, को कैसे हो सकती है? जगतराज के दिसबर ३०, १७३१ (पूस सुदी १३ सवत १७८८) को हिरदेसाह को लिखे एक पत्र (पन्ना० ८९) में अपरोक्ष-रूप मे छत्रसाल की मृत्यु का उल्लेख इन शब्दो में किया गया है, "अपर हम अरु अपन दोउ भइया राजा कहाये"। दिसबर १६ के छत्रसाल के पत्र और दिसबर ३१ के जगतराज के इस पत्र से यह अनुमान होता है कि छत्रसाल की मृत्यु दिसबर १६ और दिसबर ३१ के बीच में ही कभी हुई होगी। किन्तु यहा तारीख-इ-मुहम्मदी में दी गई छत्रसाल की मृत्यु तिथि को ही ठीक समझा गया है। इस तिथि की लगभग पूर्ण

---

२३ पन्ना गजे०(पृ० ११) में छत्रसाल की मृत्यु भादो सुदी ३, सवत १७८८ के दिन होने का उल्लेख है, जब कि गोरे० (पृ० २२१) में उनकी मृत्यु तिथि जेठ वदी ३, संवत १७८८ दी गई है। यह दोनो ही तिथिया गलत है।

पुष्टि बुंदेलखड में प्रचलित तिथि से हो ही जाती है। यह हो सकता है कि छत्रसाल के दिमवर १६, १७३१ वाले पत्र में आगे की तिथि डाल दी गई हो। यह भी सभव है कि तिथि ही गलत पडी हो जो कि उनके कुछ पत्रो में पाई गई गलत तिथियो से असभव नहीं जान पडता।

कुछ महत्वपूर्ण कागज पत्र

(लाल कवि को दी गई छत्रसाल की सनद)

वुद्धवार, अक्तूबर १, १७१२

श्री राधाकृस्नजू

जगद्वित मुन्द्रा
सासना जा समुद्रा
सगाय जय २ इह
छत्रसालो नरिन्द्र

नही

श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री छत्रसाल ज देव येते गव लाल कवि साहि-नाटक जन्म भूमि ग्राम पदारघ दयौ प्रगना पावड तापै छीपा को सैनिम ढिज १ सो व कराग स्याये पाये जाय जब ग्रथ की पूर्ति होगी तव वहुत सो स्याल करो जै है अबै बरोबरी की वैठक वकसी जात है महिर गुवान माफिक अमुन सुदी १३ सवन १७६९ की साल लिखी गई मुकाम परना।

(छत्रसाल और ओरछा, चंदेरी तथा दतिया के बुंदेला राजाओ के बीच हुई एक संधि)

वृहस्पतिवार, अप्रैल २५, १७२१ ई०।

॥ श्रीराम ॥

राधाकृस्न

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा उदोतसिंघ जू देव श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा दुर्जनसिंघ जू देव श्री महाराज श्री राउ रामचद्र जू देव अपर हम आपस मैं पोतु सगार वयौं एक इनफाक भये हीर पीर सब एक रै है एव जागा की हितु वा नु सब जागा की हितु वा अरु जू एक जागा की दुस्मनु सु सब को दुस्मनु देस सुहीम एक इनफाक रहै कोऊ काहू की लटी न चाहै न लटी करै एक ठाकुर पर पाम परै तहाँ सब पहुँचै पोऊ काहू की दोषु न देषे जागीर परगनै जे वने है ते अपने अपने पाइ कोऊ काहू की दन्द न मजियावै जग पात साही जागा पै वदनामी होइ सु न करै ता सिवाई भूमियन की जागा नैहि या नगद पावै सु इहि हिसाव वमूजिव बाँटि लैइ हैना ४

श्री महाराजा छत्र-साल जू को हिसा	श्री महाराज उदोत-सिंघ जू देव को	श्री महाराज दुर्जन-सिघ जू देव को	श्री राव रामचद्रजू देव को हिसा एक ता मै
१	हिसा एक	हिसा एक	अपने भैयनि कुवरनि दे लै
१	१	१	१

सु अपनै अपनै इस निमैते अपनै अपनै कुवरनि को दै लै इहि मै कोउ और की और न करै जो करै मु पांच परमेसुर ज को दोषी ताके बीच श्री जू वैसाप सुदी ६ सवत १७७८ मुकाम वनअली।

(छत्रसाल और स्वामी प्राणनाथ जी की भेंटसबधी पत्र)

मगलवार, अप्रैल २१, १७३०।

श्री

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव के बाचने येते श्री महाराज कामार श्री दिमान जगतराज जू देव को आपर हम लडाई करके महेवा मऊ से आवत जात रहत हते दस पांच रोज रहे तो येक दिन सिकार षेलवे को गये डाँग मे येक आदमी लँगोटी लगाये वैठो हतो हमने समझी कै जो भेष बनाये हमारे मारवे को आव है हम ने ऊपै गठी कै तै को है कहा आवो ना बोलो तलवार हमने ऊ को ऊजेई बोलो कै बच्चा ना मार मै तुमारे अच्छे के लाने आवो हूं हम वैठ गये बोलो कै बच्चा तुमारो नाम छत्रसाल है हम ने कही कै हा बोलो कै बच्चा तै बडा प्राकरमी है और बडो परतावी भयो है हम और तै येक ही है ऊ जनम येक सग रहे है विन्द्रवासिनी मै बहुत दिन तपस्या करी है उतै हमारो धूनी के नेगर चमीटा गडो है सात हात के नीचे जो तोको विसवास ना होवे तो चमीटा उषार मगवा हमने कही कै मोको का चमीटा को करने है मोरे पास न धन आये लडकन के लाने रियासत को उपाय करन फिरत हो जो कछू न्याव लडाई करै मिल जै है तो अछी है फिर कही कै बच्चा हम प्राननाथ है तोरे पास ऐसो धन है कै काहू के पास ना कउ है हमने कही कै महाराज मोरे पास कछु धन न्हो आये लूट मार में जो कुछ मिलो सो फौज को पवासन हो तब बोले कै तै पन्ना को चल हम तोको धन बताइये उनके कहे से हम पन्ना को आये और प्राननाथ सोऊ आये पन्ना मैं गोंड राजा हते पन्ना के गियोटे आये हमने कही कै महाराज इहा रहने है तब बोले पन्ना मे दषन तरफ हम को रहने है ऊ जागा पै आये बोले कै बच्चा हम ई जागा पै रहत है और कही कै जा जागा पै जगा करवे कही जाये ये ही जागा पै तुम टारहे तो बीरा उठाइयो तोरी फते हु है और चल मै तोको धन बतावो सो पन्ना से दो कोस लो ग्रुस गये बोले कै यहा खोद तो वहा सुफेत कंकर मिलो सोला हमने

कही कै महाराज जो का आये तब बोले यही धन है जो हीरा है पन्ना मैं सात आठ कोस लो की लबाई चोडाई में हीरा है हमने वनके पांव छुये पन्ना में गोड राजा हते वनको अपने वन में करो उनको कछु जागीर लगा दई पन्ना में दषल करो हमने कही कै महाराजा हुकुम होये तो मै मऊ को जावो कही कै मै राजा नही होत ना मोरे पिता राजा भये हैं ना मै हू हो सो कही कै तोरे भाग में राज वदो है तै कैसे राजा ना हू है तोरी उमर सो वरस के नीचे की है पनी देष लै हैं तब हमने कही कै महाराज कुवर तो तो है नही आये पनी नानी की को चलावे कही कै तोरे ऐसे कुवर हू है कै काहू कै ना भये हू हैं और येक से येक बढ़ के कुँवर हू हैं वा नाती पनी हू हैं सबतु सतरा सै बत्तीस की साल मै महाराज प्रिाननाथ ज पेजरा मैं रए वा वो ही साल हम पन्ना के राजा भये ऊ बषत पै हम ने पत्तीस लाष की जागा कमाई हती जितने होग सिलत गये महाराज प्रिाननाथ ज सब सासान वनवावत गये वनने हुकुम दवो कै बच्चा बहुत सामान हो गयो है फिर सवत सतरा सो पैतीस की साल मैं मदिर महाराज को बनवावो हमने विनती करी कै महाराज अेक जाद तला आप के नाम को बन जाये सो कही कै बच्चा तला न बने चल हम जागा बनाउत है चोतरा बन जाये ऊ जगा पै गये सो कही कै खुदन कर हमने खुदन चौपरा को करो और कही कै यहा षदवावो यहा धन है षुदवावो तो एक बडो भारी बटुआ पीतर को कडो ऊ मै मुहरें रई व येक हडा तोहे को तो मैं सवा लाष रुपैया कडे ईतरा का हाल महाराज प्राननाथ ज ने करो हतो बैसाष सुदी १५ सवत १७८७ मुकाम महेवा ।

पन्ना के अधिकारियो को छत्रसाल के राज्य विभाजन-संबंधी दो पत्र

सोमवार, मई ११, १९३०

श्री

हुकुम श्री महाराजधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव को ऐसे पन्ना पै श्री फौजदार मानखाना व श्री राव गरीबदास जू व श्री दिमान देवसिंह जू आगे ऐसे हुकुम आगे हीरा सर्व पठवा दयो हुं और हम चाहत हैं कै जो फौज हमारी है या तौरे है तौरो रखावो हीरा हिरदेसाह पावें या पांच हीरा जगतराज पावें चालीस परगने हमने अपने परगनन में बसाये उन परगनन में जौन जैसे परगने हैं उन हों सिपाही चाकरन के नाते हैं कौनउ परगने में दोसौ सिपाही कोउ परगने में तीन सौ इह पांच सौ लों सिपाही परगनन में हैं अन्दाजन नौ दस हजार सिपाही हुं हैं सब अकसान के या पुरा एरा नाका परगने राय के हैं परगनन में उनको तनखा मिलती है और सात हजार सिपाही पन्ना के चाकरन पै हैं व पांच हजार फौज हमारे साथ में है तीन हजार फौज जैतपुर में है ऐसी पच्चीस विसातीस हजार फौज

है जब जादा काम पर जात इकट्ठी फौज बुला लई जात है तीन सै कै अनदाजन हल्की बडी तोपे हू है सी तोप हमारे सग मैं है पचास तोप परना मे बीस पचीस तोप जैतपुर में है यें ही तरा सवावो पौन हीसा तोपन कौ होजाय बारह हजार सवार तिनके साथ मै येक येक घोडो सवार पोछू है तो सवावो पौन हीसा के हिसाब से बाट दयो जावै और पाच किरोड रुपैया परना महेवा मऊ जैतपुर के खजाने में जमा है तीन किरोड हिरदेसाह पावै दो किरोड जगतराज पावे फुटकर सामान सोनो चादी जवाहिरात हीरा वगैरा दोई जनन को बाट दयो गयो है जो जो हमने लिख दयो है सो हमारे लिखै माफक बाट पावै जेठ सुदी ५ सवत १७८७ मुकाम महेवा।

बुद्धवार, नवम्बर ११, १७३०।

जान है सो मान है
मान है सो जान है

श्री।

हुकुम श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसालजू देव को येते राज्य पन्ना के करतन जोग्य आपर एक किरोड तिरपन लाख की जावा कमाल मैं हमनै अपने पराक्रम से कमाई है तोमें तेइस लाख की जावा हमने कुवरावल व नाते ते जागीरदार सैमारन को दई बाकी रही येक किरोड तीस लाख की और हमारो आसीर बपत आवो तीसिट् लिपें देत है कै सवावो हीसा श्री श्री दिमान हिरदेसाहजू देव पावै वा पौन हीसा श्री श्री दिमान जगतराजजू देव पावै वा व जूरा पेसवा कौ जो लडका कहकर हमने मानो है काय सें कै हमने बडे बडे भारी जुध बादसाहन सें करे और हारे नही आये हारे तो आषीर पै जीत भई जैतपुर मै मुहम्मद षा वगस चढ आवो वा जगतराज मैं जुद्ध भयो जगतराज हारे तीपे पेसवा को हमने षबर दई पेसवा स्य फौज के आये वगस मैं लडाई भई वगस हारो जगतराज की फतै भई जो पेसवा ना आवते तो हमारी वडी भारी बुडापे मै बदनामी होती तीं षर्गे सैं हमसे पेसवा को तीसरो हीसा देन कहो सो ईतरा पेसवा को हीसा दवो जायें कै जो हिरदेसाह को सवावो हीसा बैठो ऊ मैं से तीसरो हीसा पेसवा को दवे वा पौन हीसा जगतराज को बैठे ऊ मैं से तीसरो हीसा पेसवा को देवे ईतरा दोई जने पेसवा को हीसा बाट देवे और जो श्री श्री ववरा जू साहब राव चपतरायजू को ओडछे में जागीर लगी हती वा जागीर हमने उनकी सौप दई जब हमनें अपने पराक्रम मैं जाघा पाई व जीती तो जागीर को नाम बाहे को लग जावे बाहे को उनके दबकैल वने पुसी के साथ स्य मनष के जागीर ओडछेवारन को सौप दई जावे आगे पीछे कौनहू बात को फिसाद न होवे ओरछेवालन

से आये तौ हमारो हक ठीक रही अेमान वन कौ नही चाहत है वन ने हमारे कक्काजू कौ वा हमकौ वडे वडे छल करे वा मारवे में कौन हू फरक नहीं लगावो सो पनमेसुर की जव मिहरवानगी है तव का हो सकत है कुवरन को चाहिये कै ओडछेत्रालन के कहै कवहू न आहै जव वन को मौका पर जै ह तवे पराव वात के अच्छी वात ना कर है हम मै इतनो पराक्रम रहो है कै वन को वस मेट देते वा ओडछे की रियासत सव ले लेते रही हमने घर मान कै कौनहू वात नही करी वे छलई करत रहे ह हमने जवानी वातें दाउ जनन सै सव कह दई है और करतन को चाहिये कै सव वातें वन मै पूरी पूरी लपा दे है और धामोनी वा सिमौनी की वडी मुसकिल मै फतै पाई है सो जे परगने हिरदेसाही की हीसा मे वाटे जावै और हमारे लिये माफक हीसा तीन हू जनन को कर देवे वा जो कागद परना के दफ्तर में रहै मिती कातिक सुदी १३ सवत १७८७ मुकाम मऊ।

जगतराज को राज्य विभाजन-संबंधी छत्रसाल का एक अन्य पत्र

रविवार, नवम्बर १५, १७३०।

छाप

श्री।

श्री महाराजधिराजा श्री महाराजा श्री राजा छत्रसालजू देव येते श्री श्री दिमान जगतराजजू देव को आपर परना के राज के करतन को हुकम पठआ चुके है जो रियासत हमारी है व नगदी सामान फौज तोप वगैरा मो सवायी हीसा हिरदेसाह पावैं वा पौन हीसा जगतराज पावैं जो रियासत है ऊ मै से सवायो पौन हीसा दोउ जनै कौ वाट दव जावैं ऊ सवा पौन हीसा मैं सैं पेसवा को तीसरो दोउ जने अपनी अपनी रियासत से देवे ईतरा परना को हुकम पठवा दवो है सो वो ही माफक तुम करीयो ओरछेत्रारेन से हर हमेस वचे रहीयो ये ही तरा हिरदेसाह कौ सिपावन पहुच गवो है वन ने हमारे ऊपर वडी वेईमानी करी है वहादुरसाह वादसाह हमको मनसव वा महेन्द्री देत हने वा पन्ना लाय की जागीर लोहागढ के फतै मवै वनने हमसे लवरी झूठी आनकर कही के तुम डिल्ली से भगो नातर वादसाह तुमै पकरन चाहत है सो हम वहा से भगे फिर महेन्द्री ओरछावारन ने लई ईतरा वनने वेईमानी करी सो उनसै सव वचे रहीयो अगहन वदी २, सवत १७८७ मुकाम मऊ।

(पेशवा वाजीराव प्रथम का छत्रसाल की मृत्यु पर सवेदना पत्र)

शनिवार, सितवर २३, १७३२ ई०।

श्री

श्री महाराजधिराजा श्री महाराजा श्री राजा हिरदेसाह जू देव येते वाजीराव के

असीस पहुँचे आपर आप की पेम कुसल परमातमा से हर हमेस चाहत रहत हैं यहा की कुशलता आपकी मिहरवानगी मैं अचछी है पत्र आप को आवो रहै हाल मालूम भयो श्री श्री श्री महाराज ककाजू साहिव को वैकुठवास हो गयो वडी भारी रज भई हम निषटके हते कै हमारे जेठे पिता की तौर पर वने हैं कौनहू फिकर ना हती अव ईसुर ने तीनहू जने को सोच मे कर दवो सो परमातमा से कछ जोर नहि आय आप दोनो जने निपटके राज को सभालिए ककाजू नही हैं तो आप के लाने वनो हो जो काम परे मोको पवर लगे सव काम छोड के आप के पास हाजिर होवे ई मैं सन्देह न समझो जावै महाराज ने हम कौ लडका करकै मानो हैं सो मैं वही तरा आप को अपनी भाई समझे हो जव काम परे हाजर होके तामील करो और सिहरा महाराज ने कह दयो रहै ऊ को पयाल आप को चाहिये हम को कछू नही कहनै है आप पुद समझदार हैं अस्वन वदि १ सवत १७८९ मुकाम पूना ।

छत्रसाली राज्य में तिहाई भाग की माग करते हुये पेशवा बाजीराव प्रथम का हिरदेसाह को एक पत्र

मगलवार, फरवरी १२, १७३४।

श्री ।

श्री महाराजाधिराजा श्री महाराजा श्री राजा भइया हिरदेसाहजू देव येते वाजूराय की असीस आपके सुभ समाचार कुसल ईसुर के सदा हम भलाई चाहत है यहा की कुसल परमातमा की किरपा मे अच्छी है ऐक पत्र आगे आपको भेजो रहै असा साल भर को भवो पत्र का जुवाव कछू नही आयो काकाजू साहव (छत्रसाल) हते तव साल भर मे एक वपत कुसल की पवर देत हते आप अपनी कुसल प्रसनता की पवर तक नही लिपत जो आगे पत्र लिपो रहै तो मैं तिहरा के हीसा सबै लिपी रहै ऊ की जवाव कछू ना देवो गयो आप उठी समझत होवे कै सिहरा महाराज (छत्रसाल) ने नही कहो वजनस असल पातरी महाराज की वरनी मसदो की लिषी भरे सही मुहर के यहा मे पठवाई है नजर हाजर भेज दव और आप न पठवा ना कछू हरज नहीं है जो वात सव कोऊ जानत है कै वगस की लडाई मे सगरा था। महाराज छत्रसाल ने अपने राज मै तीसरो हीसा देन कहो है चाहिये कै सिरी पै आपका पयाल करा चाहिये माह वदी ५, सवत १७९० मुकाम पूना ।

[पेशवा बाजीराव और हिरदेसाह के बीच हुई संधि। इस संधि की मराठी प्रतिलिपि रायबहादुर चीमाजी वाड द्वारा सकलित 'ट्रीटीज़, एग्रीमेंट्स ऐंड सनद्स' में (पृ० ९-१०) दी गई है।]

वृद्धवार, जुलाई १२, १७३८ ई०।

श्री रामचन्द्र जू

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा हिरदेसाहिजू देव कौ श्री राउ वाजीराउ मुष्य प्रधान नै दये कौलनामा आगै तुम्हारो हमारो कौल करार भयो जू कछू तुम्हारी व्यौहार वडाई मरातीव है ता मैं कौनुहु तरह कवहु कमी ना करै दिन पै दिन व्यौहार वडाई मरातीव करै तुम्हारे वाप की राजभरे की हाल अमली जागा है तामैं येक गाउ कौ आस्त्रो कवहु न करै धामोनि कि किले की व धामोनि की जागा की रद वदल कवहु न करै और तुम्हारे भैया भतिजै कुवर ठाकुर चाकर वागैरह जिमीदार कोउ तुमसो वेराजी होकर हमल वाचा पैता कौ न रापै जाय कर तुम्हारे हवाला करै और हमारी फौज सो तुम्हारी जागा मैं उजारु अठावा न करै और वाजै काम कूक जात तुम्हारे मुलुक में होय हमारी फौज गयौ चाहे तो अपने गाठ को रोज मुरा पात जाय तुम्हारे मुलुक में उजार न करै और दपन की फौज कोउ तुम्हारे मुलुक पर आइवो विचारै तिनकु ताकीद कर कै मना करै और ज्यो पातसाहि फौजें तुम्हारे ऊपर चढि आवें तो हम भलि भात मदत को पौंहचे जैसे सतारा व पूना की रछा करै तैंमी तुम्हारै जागा की रछा करै और हमारे पर मुगल की फौज आये तो तुम हमारी मदत कर्‌यौ और पातसाहि मै राह अपने वावै तद तुम्हारी वावै येका न सत्र येका न मित्रयो करार हमारो तुम्हारो पुस्त दर पुस्त सापिन लौ निभियौ जाय और चामिल और जमुना के पार भदावर के राज सिवाय तुम्हारी हमारी फौज सामिल हो करि जाय जो मुलुक वाकये या कमाउन मै पैदा होय मिले सो अपनि अपनि फौज माफक वाँट करि समज लीये तुम्हारी फौज माफक तुमकू दैये अपनि फौज माफिक हम लैये तुम हमें जागीर दयी आगे की सवा दो लाप कि वा हाल पौने तीन लाप की दौ मिल कर लाप ५,०० ०००) पाच लाप की सो दोउ महाराज सवाय कै हिसाव मोजिव भर देउ एह सिवाए कवहू कौनहुस मै तुमसी गाउ की व रुपैया की रद वदल न करै ये ही करार माफक हरि हमेस चले जाय जो तुम्हारे निकाई की होय सोउ करै येन वातन में तफावत कवहू न करै ताकी सौगद श्री सदासिव जी वा वेलपत्र वा तुलसी दल की है और एहि वात के दरम्यानै श्री चिमाजी आपा व श्री नाना और श्री पीलाजी जावौराव व मल्लार जी होलकर व रानोजी सिंधे व येसवत राउ पवार व जानोजी ढमडरै कर दिये सो येहि मैं फैर न परै जहा हम को हिन्दुस्तान में काम पडै ताहा तुम क वुलावे लौं जाइगा मै तुम आई सामिल होना और हमारे ई तले सिवाई मुगल मै सलुप नि किजौ सामिल न होना मुगल की भारी

फौज आई तो तुम दो महिना लराई किज्यौ दो महिना मैं हमारी फौज तुम्हारे मदत कौ न आई तो मतलबी सला किजौ तिनकौ लटो हम तुम सो न मानै हमारी फौज आये पहुचे पर तुम हमारी फौज में सामिल होना तुम हम मिल कर मुगल की फौज डुबाए देनो मीती थासाड सुद ७ मवत १७९५ ।

इस ग्रंथ में प्रयुक्त ऐतिहासिक सामग्री

१. नवीन प्राप्त

पन्ना पत्र सग्रह और शाही फरमान—इस शीर्षक से निर्दिष्ट सभी कागज़-पत्र पन्ना महाराज के व्यक्तिगत सग्रहालय में सुरक्षित हैं, केवल लाल कवि को दी गई छत्रसाल की सनद की नकल मुझे पन्ना के राज कवि श्री कृष्ण कवि से प्राप्त हुई है। इस सग्रह में सवसे अधिक सख्या छत्रसाल के पत्रो की है। केवल कुछ ही पत्र हिरदेसाह और पन्ना के अधिकारियो के नाम हैं। वाकी सभी पत्र मुख्यत जगतराज को ही लिखे गये हैं। इन पत्रो से छत्रसाल के प्रारभिक जीवन सवधी जानकारी प्राप्त होती है, साथ ही उनके शासन एव औरगज़ेव के उत्तराधिकारियो तथा मराठो से सवधो पर भी समुचित प्रकाश पडता है। छत्रसाल के जिन पत्रो में उनके जीवन की प्रारभिक घटनाओ का उल्लेख है, वे प्राय उन घटनाओ के कोई ५०-६० वर्ष पश्चात लिखे गये हैं। इसलिए उनमें घटनाओ के तथ्यो और उनके घटित होने के समय सवधी कई भूलें स्वभावत हो गई है। छत्रसाल ने ये पत्र जगतराज के आग्रह पर वृद्धावस्था मे लिखवाये थे और तव इन घटनाओ सवधी उनकी स्मृति क्षीण हो चली थी। इन पत्रो में घटनाओ का अतिशयोक्ति पूर्ण विवरण भी है। इनमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओ की जानकारी को समकालीन मुगल अखवारो और अन्य फारसी ग्रथो से प्राप्त विवरण की सहायता से जाँचा जा कर उसकी वास्तविक सत्यता को निर्धारित किया जा सकता है।

छत्रसाल के पुत्रो द्वारा लिखे केवल १३ पत्र ही इस सग्रह में उपलव्ध हैं। दो पत्र पदम सिंह और भारतीचद के लिखे हुये हैं जिन में जागीरें मिलने पर उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित की है। शेप ११ पत्र जगतराज द्वारा हिरदेसाह और उसके पुत्र सभासिंह को लिखे गये थे। ये पत्र छत्रसाल के राज्य के विभाजन और आपसी सहयोग के समझौतो के सवध में हैं।

इस सकलन के कुछ पत्रो में पेशवा वाजीराव और छत्रसाल के पुत्रो (हिरदेसाह और जगतराज) के वीच हुई सधियाँ हैं। इन्ही में वाजीराव का एक वह पत्र भी है जिसमें उन्होंने छत्रसाल की मृत्यु पर सवेदना प्रगट करते हुए अपने तीसरे भाग की माग की है।

मुगल फरमानो में शाहजादा मुअज्जम के केवल एक पत्र (१६७९ ई०) को छोड कर शेप सव औरगज़ेव की मृत्यु के वाद उसके उत्तराधिकारियो, वहादुरशाह, फर्रुखसियर और मुहम्मदशाह द्वारा प्रेपित किये गये थे। इन शाही फरमानो और हुक्मो से इन सम्राटो के साथ छत्रसाल के सवधो पर प्रकाश पडता है।

प्रणामी ग्रथ—प्रणामी धर्म ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियाँ पन्ना के मुख्य धामी मदिर

में उपलब्ध है। इनकी पुरानी प्रतियो से समय-समय पर नई प्रतिलिपियाँ की जाती रही है। धर्मग्रंथ होने के कारण ये नई प्रतिलिपियाँ करते समय किसी भी ग्रथ के मूल रूप में किंचित मात्र भी हेर फेर नही किया गया है। मुख्य प्रणामी धर्मग्रथ निम्नलिखित है —

१ कुलजम—कुलजम-स्वरूप प्रणामियो का मुख्य धर्म ग्रथ है, जो स्वामी प्राणनाथ जी की वाणियो और उपदेशो का वृहत् सकलन है। इसमें १४ छोटे-छोटे ग्रथ है जिन की भाषा अरबी, फारसी मिश्रित गुजराती, हिन्दी और सिन्धी है।

कुलजम के १४ ग्रथो के नाम	भाषा
१ रास	गुजराती
२ प्रकाश/प्रकाश	गुजराती/हिन्दी
३ षटऋतु	गुजराती
४ कलस/कलस	गुजराती/हिन्दी
५-११ सनध, किरतन, खुलासा बिलवत, परकरमा, सागर, सिंगार।	हिन्दी
१२ सिन्धी	सिन्धी
१३-१४ मारफत सागर, कयामतनामा	हिन्दी

'प्रकाश' और 'कलस' नामक ग्रथ पहिले गुजराती में लिखे गये थे, तत्पश्चात स्वामी प्राणनाथ द्वारा ही फिर उनका रूपान्तर हिन्दी में किया गया।

'कुलजम' की एक प्रति अमीरुद्दौला पब्लिक लायब्रेरी लखनऊ मे भी प्राप्य है। एफ० एस० ग्राउज को मथुरा के एक प्रणामी काकरदास से सभवत 'कुलज़म' की ही एक प्रति प्राप्त हुई थी जिस पर आधारित उनका एक लेख जर्नल आफ एशियाटिक बगाल के १८७९ वाले अक (पृ० १७१-८०) में 'दी सेक्ट आफ प्राननाथीज़' शीर्षक से छपा था। नागरी प्रचारिणी पत्रिका की प्राचीन हस्तलिखित ग्रथो की त्रैमासिक रिपोर्ट (जि० ८, पृ० ४७४-७५) मे रायबहादुर हीरालाल ने भी एक प्रणामी ग्रथ 'अजीर रास' का उल्लेख किया है जिसमे कुलजम के ११ ग्रथ है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका भाग ४१, सख्या १ (पृ० १-१६) मे प्रकाशित प्रणामी साहित्य पर श्री माताबदल जायसवाल का लेख बहुत ही महत्तापूर्ण है।

कुलजम के सिवा अन्य महत्वपूर्ण ग्रथो को बीतक अर्थात् इतिहास कहा जाता है। इन सभी बीतको मे श्री देवचद्र और प्राणनाथ जी की जीवन लीलाओ का वर्णन करते हुए प्रणामी सम्प्रदाय के सिद्धान्तो की व्याख्या की गई है। कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियो (जैसे औरगजेब, राणा राजसिंह, जसवतसिंह राठौर और छत्रसाल आदि) के उल्लेख और कुछ ऐतिहासिक घटनाओ (जैसे राजपूताने पर औरगजेब के आक्रमण और छत्रसाल के साथ फौजदारो से प्रारंभिक सघर्षो) के विवरण भी इन बीतको में यत्र तत्र मिलते है। इन बीतको में केवल 'वृत्तान्त मुक्तावली' ही प्रकाशित हुआ है, शेष सब हस्तलिखित ही है।

लालदास बीतक—यह ग्रथ प्राणनाथ जी के प्रिय शिष्य लालदास द्वारा लिखा गया है। उनका वास्तविक नाम लक्ष्मण था। लालदास का जन्म पोरबदर (काठियावाड) में हुआ था। धाम मदिर में प्राप्य प्रतिलिपि मनोहर दास द्वारा सवत् १९४८ (सन् १८९१ ई०) में की गई थी।

हमराज बीतक अथवा मेहराज चरित्र—इसके लेखक हमराज थे जिन्हे छत्रसाल के पुत्र हिरदेसाह ने बख्शी बना दिया था। उन्होने यह ग्रथ सवत् १८०३ (१७४६ ई०) में लिखना प्रारभ किया था। प्राप्य प्रतिलिपि गुँसाई परदौनदास द्वारा पन्ना के महाराज के पास उपलब्ध एक प्रति से सवत् १८०८ (१७५१ ई०) में की गई थी।

ब्रजभूषण बीतक—(वृत्तात मुक्तावली) कहा जाता है यह ग्रथ सवत् १७५५ (१६९८ ई) के लगभग लिखा गया था। इसके लेखक ब्रजभूषण छत्रसाल के शिष्य थे।

नौरग अथवा मुकुन्ददास की वाणी—मुकुन्ददास भी प्राणनाथ जी के शिष्य थे। प्राणनाथ मदिर में प्राप्य इस ग्रथ की प्रतिलिपि सवत् १८६२ (१८०५ ई०) मे प्रद्युम्न दास द्वारा गढाकोटा में की गई थी। इसमें उपलब्ध विवरण उपर्युक्त बीतको जैसा ही है। पन्ना के धाम मदिर के कामदार श्री चेतनदास शर्मा के कथनानुसार नौरग स्वामी के एक शिष्य बहुरग ने भी एक बीतक लिखा था किन्तु वह उपलब्ध नही हो सका।

मस्ताना पंचक—मस्ताना स्वामी प्राणनाथ के एक मुसलमान शिष्य थे। प्राणनाथ जी की वाणियो का हिन्दी रूपान्तर ही इस पचक में है। मस्ताना पचक का कुछ भाग 'पचक प्रकाश' के नाम से प्रकाशित भी हो चुका है।

जयपुर हिन्दी रिकार्ड्स (सीतामऊ)—इन लेख सग्रहो की दूसरी, तीसरी और पाचवी जिल्दो में बुंदेलखड के राजाओ द्वारा सवाई जयसिह को भेजे गये कुछ पत्र है। ये पत्र छत्रसाल, हिरदेसाह, ओरछा के उदोतसिह और दतिया के रामचद्र के हैं और बगश-बुंदेला युद्धो की प्रारंभिक घटनाओ (१७२१-२५ ई०) पर प्रकाश डालते है। बुंदेलखड के इन राजाओ पर भी सवाई जयसिह का कितना अधिक प्रभाव था यह इन पत्रो से स्पष्ट हो जाता है।

२ पूर्वोपलब्ध सामग्री

(अ) समकालीन

फारसी

अकबरनामा—(बेवरिज द्वारा अंग्रेजी में अनूदित) अबुलफजल कृत अकबरनामा और अबुलफजल की मृत्यु के पश्चात् इनायतउल्ला द्वारा लिखा 'ताकमिल-इ-अकबर-नामा' दोनो मिलकर अकबर के राज्यकाल का पूर्ण प्रामाणिक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करते है। इसमें मधुकरशाह के विद्रोहो, अबुलफजल के वध और वीरसिंह देव का शाही सेनाओं द्वारा पीछा किये जाने आदि के विवरण है।

आइने-अकबरी—अबुलफजल कृत (ब्लाकमन और जैरेट कृत अंग्रेजी का द्वितीय संशोधित संस्करण)—यह ग्रंथ मुगल शासन और तत्कालीन आर्थिक एवं भौगोलिक विवरणों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

तुजुक-ए-जहांगीरी—सम्राट् जहांगीर कृत (बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद)—इसमें जहांगीर ने अबुलफजल और वीरसिंह देव बुंदेला के संबंध में जो विचार प्रकट किये हैं वे बहुत ही मनोरंजक हैं।

पादशाहनामा—ले० अब्दुल हमीद लाहोरी। यह सम्राट शाहजहां के राज्यकाल की प्रथम २० वर्षों का मुख्य इतिहास है। इसमें जुझारसिंह बुंदेला और चंपतराय के विद्रोहों संबंधी विस्तृत सूचना उपलब्ध है।

अखबारात-दरबार-इ-मुअल्ला (सीतामऊ)—यह औरंगजेब, बहादुरशाह, जहांदारशाह, फर्रुखसियर और मुहम्मदशाह के राज्यकालीन अखबारों, शाही हुक्मों (हस्व-उल-हुक्म) और वाकिआ समाचारों की प्रतिलिपियां हैं जो श्री रघुबीर लायब्रेरी सीतामऊ के लिए जयपुर के संग्रहालय में प्राप्य कागज पत्रों तथा रायल एशियाटिक सोसायटी (लंदन) में की डा० यदुनाथ सरकार के संग्रह में प्राप्य प्रतिलिपियों से की गई हैं। इन सहस्रों अखबारों में मुगल साम्राज्य के सुदूरतम कोनों में होने वाली छोटी बड़ी घटनाओं के उल्लेख मिलते हैं। इस ग्रंथ के तीसरे और चौथे अध्याय में इन अखबारों में उपलब्ध सूचना का भरपूर उपयोग किया गया है।

आलमगीरनामा—यह मिर्जा मुहम्मद काजिम द्वारा १६८८ ई० में लिखा गया था। यह औरंगजेब के राज्यकाल के प्रथम १० वर्षों का इतिहास है। इसमें चंपतराय के दमन और उनकी मृत्यु संबंधी सामकीय विवरण मिलता है।

मासिर-इ-आलमगीरी—ले० मुहम्मद साकी मुस्ताद खां (सरकार द्वारा अंग्रेजी अनुवाद) औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् १७१० ई० में यह ग्रंथ लिखा गया था। इसमें औरंगजेब के राज्यकाल का संक्षिप्त इतिहास है जो सरकारी कागज-पत्रों एवं तत्कालीन ग्रंथों की सूचना पर आधारित है। यह औरंगजेब के राज्यकाल की मुख्य घटनाओं की साधारण सूचनाओं के लिए विशेष उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

तारीख-इ-दिलकशा (सीतामऊ)—ले० भीमसेन। ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ है। भीमसेन दतिया के दलपतराय का आश्रित था। इस ग्रंथ में छत्रसाल, उदोतसिंह, दलपतराय, रामचन्द्र आदि समकालीन बुंदेले अधिपतियों के संबंध में कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं। सरकार कृत 'स्टडीज इन औरंगजेब्स रेन' (पृ० २५१-२६१) भी देखें।

फतूहात-इ-आलमगीरी (सीतामऊ)—ले० ईश्वरदास। यह औरंगजेब के ही समय का एक उपयोगी ग्रंथ है। इसमें पहाड़सिंह गौड़ और छत्रसाल के मालवा तथा बुंदेलखंड में [illegible]

हफ़्त अन्जुमन (सीतामऊ)—मिर्ज़ा राजा जयसिंह के मुशी उदयराज उर्फ ताल-यार कृत जयसिंह और दूसरो के पत्रो का सग्रह। मिर्ज़ा राजा जयसिंह की सेवा में छत्रसाल के रहने का उल्लेख इस ग्रथ मे ही मिलता है। सरकार कृत 'स्टडीज इन औरगज़ेब्स रेन' (पृ० २६६) और 'हाउस आफ शिवाजी' (पृ० १२९-३१) देखें।

रुक्क़ात-इ-हमीदुद्दीन (सीतामऊ)—यह हमीदुद्दीन खाँ के पत्रो का सग्रह है। हमीदुद्दीन ने मालवा में फौजदार तथा अन्य पदो पर कार्य किया था। इन पत्रो में मुख्यत मालवा में होने वाली घटनाओ का उल्लेख है। इन्ही में छत्रसाल के उपद्रवो के भी एक-दो उल्लेख मिल जाते हैं।

तज़्किरा-उस-सलातीन-इ-चग़ताई (सीतामऊ)—ले० मुहम्मद हादी कामवर खाँ। यह चग़ताई (मुग़ल) सम्राटो का दो भागो में इतिहास है। इसका दूसरा भाग अधिक महत्वपूर्ण है जिसमें जहाँगीर की मृत्यु (१६२७ ई) से लेकर सम्राट् मुहम्मदशाह के राज्यकाल के छठवें वर्ष (१७२४) तक का इतिहास दिया गया है। इस भाग में वहादुर-शाह और फर्रुखसियर के शासन काल में छत्रसाल के शाही सेवा में रहकर पदोन्नति करने के कुछ महत्वपूर्ण उल्लेख है।

मुनव्वर-इ-कलाम (सीतामऊ)—ले० शिवदास लखनवी। यह फर्रुखसियर के राज्यकाल और मुहम्मदशाह के प्रथम चार वर्षों का इतिहास है। इसमे छत्रसाल और दिलेर खाँ के युद्ध (१७२१ ई०) का सक्षिप्त उल्लेख है।

मीरात्-उल-वारिदात (सीतामऊ)—यह ग्रथ 'तारीख-इ-चगताई' और 'तारीख-इ-मुहम्मदशाही' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका लेखक मुहम्मद शफी तेहरानी था, जिसका एक उपनाम 'वरीद' भी था। वावर से लेकर नादिरशाह के भारत से लौटने (१७३९) तक का इतिहास इस ग्रथ में लिखा गया है। छत्रसाल और मुहम्मद खाँ वगश के युद्धो के अतिम भाग सबंधी कुछ जानकारी इस ग्रथ में उपलब्ध है।

खुजिस्ता कलाम (सीतामऊ)—मुहम्मद खाँ वगश द्वारा और उसको लिखे गये पत्रो का सकलन है जिसे उसके मुशी साहिवराय ने किया था। ये पत्र १७२७ और १७४३ ई के वीच में लिखे गये थे। १७२७ और १७२९ ई के बीच में लिखे गये पत्रो में वगश-बुंदेला युद्धो की विस्तृत जानकारी मिलती है। इर्विन ने 'वगश नवाव्स आफ फर्रुखावाद' नामक अपने प्रसिद्ध लेख में इन पत्रो का पूर्ण उपयोग किया है।

तारीख-इ-मुहम्मदी (सीतामऊ)—ले० मिर्ज़ा मुहम्मद। लेखक ने यह ग्रथ १७१२-१३ में प्रारभ किया था और अपने जीवन के अतिम दिनों तक वह इसे लिखता रहा। उसकी मृत्यु के पश्चात् भी उन वाद के वर्षों की कई महत्वपूर्ण वातें उसमें जोड दी गई थी, महादजी सिंधिया की मृत्यु (१४ फरवरी १७९४) इसमें वर्णित अतिम घटना है। इसके दूसरे भाग में १२०४ ई० से लेकर १७९४ ई० तक की घटनाओ की सूची है। इसी में छत्रसाल की मृत्यु तिथि (१५ जमादिलाखर, ११४४ हिजरी) दी गई है।

मासिर-उल-उमरा—लेखक शाहनवाज खाँ समसामुद्दौला और उसका पुत्र अब्दुल हक। बाबर से लेकर १८वी सदी (१७८०) तक के सभी प्रमुख अमीरों और मनसबदारों की जीवनियो का बहुत ही उपयोगी एव महत्वपूर्ण सग्रह है। यह जानकारी समकालीन अखबारो और प्राप्य ऐतिहासिक ग्रथो आदि से इकट्ठी की गई है। बाबू ब्रजरत्न दास कृत इसका हिन्दी अनुवाद काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है।

सियार-उल-मुताखेरीन—लेखक गुलाम हुसैन अली खाँ (अग्रेजी अनुवाद)। यह १७०० से १७८६ ई० तक का भारतीय इतिहास है।

हिन्दी

वीरसिंह देव चरित्र—इसके रचयिता प्रसिद्ध कवि केशवदास मिश्र बीरसिंह देव बुंदेला के अनुज कछौवा पिछोर के जागीरदार इन्द्रजीतसिंह के आश्रित कवि थे। वे बीरसिंह देव के भी कृपापात्र थे। इसमे बुंदेलो की वशावली सक्षिप्त मे देकर बीरसिंह देव के कार्य-कलापो और अबुलफजल के वध का भी वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रथ विशेष महत्वपूर्ण नही है।

छत्र प्रकाश—गोरे लाल 'लाल कवि' द्वारा रचित यह बहुत ही ऐतिहासिक महत्व का काव्य ग्रथ है। लाल कवि छत्रसाल के दरबारी कवि थे और उन्ही के आदेशानुसार लाल कवि ने इस ग्रथ की रचना की थी। यह नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित हो चुका है। पाग्सन ने अपने ग्रथ 'हिस्ट्री आफ दी बुदेलाज' में छत्र प्रकाश का कुछ त्रुटिपूर्ण अनुवाद दिया है।

(अध्याय ८ के परिशिष्ट 'ब' को देखें)

छत्रसाल ग्रथावली—छत्रसाल की कविताओ का यह सग्रह श्री वियोगी हरि द्वारा सपादित किया गया है और छत्रसाल स्मारक समिति पन्ना ने इसे प्रकाशित किया है।

छत्रसाल दशक—प्रसिद्ध कवि भूषण के छत्रसाल सबधी छदो का सग्रह। इसमें केवल दस छद है।

अंग्रेजी (अनूदित)।

युआन च्वाग ट्रैव्हल्स इन इडिया—वाटर्स।

अलवरूनी—साचौ।

निकोलाई मनुची की स्टोरिया डो मोगोर—विलियम इर्विन।

इब्नबतूता—एच० ए० आर गिब्स।

बर्नियरस् ट्रैव्हल्स इन हिंदोस्तान—हेनरी ओल्डनवरा।

(ब) पश्चात्कालीन

अंग्रेजी

१ एनल्स एड ऐंटिक्विटीज़ आफ राजस्थान (जि० १)—टाड।

२ हिस्ट्री आफ इडिया एज़ टोल्ड वाई इट्स हिस्टोरियन्स (जि० १, ६, ७, ८)—इलियट एड डासन।

३ हिस्ट्री आफ दी बुंदेलाज़—डब्ल्यू० आर० पाग्सन।

४ चंदेलाज़—डा० एन० एस० वोस।

५ शेरशाह—डा० कालिकारजन कानूनगो।

६ हिस्ट्री आफ जहागीर—डा० वेनी प्रसाद।

७ हिस्ट्री आफ शाहजहा आफ दिल्ली—डा० वनारसी प्रसाद।

८ हिस्ट्री आफ औरगजेव (५ भाग)—सर यदुनाथ सरकार।

९ स्टडीज़ इन औरगज़ेब्स रेन— ,,

१० हाउस आफ शिवाजी— ,,

११ शिवाजी एड हिज़ टाइम्स— ,,

१२ मुग़ल एडमिनिस्ट्रेशन— ,,

१३ लेटर मोग़ल्स (२ भाग)—विलियम इर्विन।

१४ आर्मी आफ दी इंडियन मुगल्स— ,,

१५ मालवा इन ट्रान्ज़ीशन—डा० रघुवीरसिंह।

१६ हिस्ट्री आफ दी मराठाज़ (भाग १)—ग्राट डफ

१७ हिस्ट्री आफ दी मराठा पीपुल—किनसेड एव पारसनीस।

१८ न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज़ (भाग १-२)—डा० गोविन्द सखाराम सरदेसाई।

१९ पेशवा बाजीराव फर्स्ट एड मराठा एक्सपेंशन—डा० वी० जी० दिघे।

२० दी फर्स्ट टू नवाब्स आफ अवध—डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव।

२१ आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स—जि० १०, २१।

२२ एपिग्राफिया इडिका—जि० १।

अग्रेजी स्फुट लेख

१ मराठाज़ इन मालवा—ले० महाराज कुमार डा० रघुवीरसिंह। सरदेसाई कमेमोरेशन व्होल्यूम १९३८ में प्रकाशित।

२ मराठाज़ इन दी लैंड आफ ग्रेव बुदेलाज़—ले० महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार। हिस्टोरिकल एड इकनामिक स्टडीज़ के फर्ग्युसन कालेज पूना के जरनल में प्रकाशित।

हिन्दी

१ चँदेल और उनका राजत्व काल—केशवचद्र शर्मा
२ बुंदेलखड का इतिहास—गोरे लाल तिवारी
३ बुंदेलखड का इतिहास (भाग १)—प्रतिपाल सिंह
४ बुंदेल वैभव (भाग १-२)—गौरी शकर द्विवेदी
५ मिश्रबधु विनोद (भाग १-२)—मिश्रबधु
६ शिवसिंह सरोज—शिवसिंह
७ हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचद्र शुक्ल
८ भूषण विमर्ष—भागीरथ प्रसाद दीक्षित
९ वीर काव्य—डा० उदय नारायण तिवारी
१० नाथूराम प्रेमी अभिनदन ग्रथ—अक्तूबर १९४६ मे प्रेमी अभिनदन ग्रथ समिति टीकमगढ द्वारा प्रकाशित।

मराठी

१ शककर्ता शिवाजी—डा० जी० एस० सरदेसाई
२ पुण्य श्लोक शाहू मराठी रियासत, ५—डा० सरदेसाई
३ मराठ्याचे पराक्रम (बुंदेलखड प्रकरण)—पारसनीस
४ ब्रह्मेन्द्र स्वामीचे चरित्र—पारसनीस
५ श्रीमत बाजीराव बळाळ—एन० वी वापट
६ इतिहास सग्रह—पारसनीस द्वारा सपादित

उर्दू

तारीख-ए-बुंदेलखड—मुशी श्यामलाल

पत्रिकाएँ

१ जनरल आफ एशियाटिक सोसायटी, बगाल

२. इडियन ऐंटिक्वेरी ।
३ नागरी प्रचारिणी पत्रिका ।
४ हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिका ।
५ इतिहास मशोधक मडल क्वार्टरली (त्रैमासिक) ।

गजेटियर

१ बुंदेलखड गज़ेटियर ।
२ झाँसी—(उत्तर प्रदेश) ।
३ बाँदा—(उत्तर प्रदेश) ।
४. हमीरपुर—(उत्तर प्रदेश) ।
५ जालौन—(उत्तर प्रदेश) ।
६ सागर—मध्य प्रदेश ।
७ ओरछा—राज्य ।
८ पन्ना—राज्य ।
९ दतिया—राज्य ।

मानचित्र

सर्वे आफ इडिया (१"=४ मील) के मान चित्र, जिनके नवर निम्नलिखित है —

एन एफ ४४, एन जी ४४, जी ५४, एच ५४, जे ५४, के ५४, एल ५४, एन ५४, ओ ५४, पी ५४, ई ५५, आई ५५, सी ६३, डी ६३, एच ६३, ए ६४, ई ६४।

अनुक्रमणिका

क

फ

ब

य

र